हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
Agrisearch with a human touch

स्वच्छ भारत, समृद्ध भारत
स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

उद्यान रश्मि

राजभाषा पत्रिका

(अप्रैल–सितंबर 2017)
वर्ष 16 अंक 1

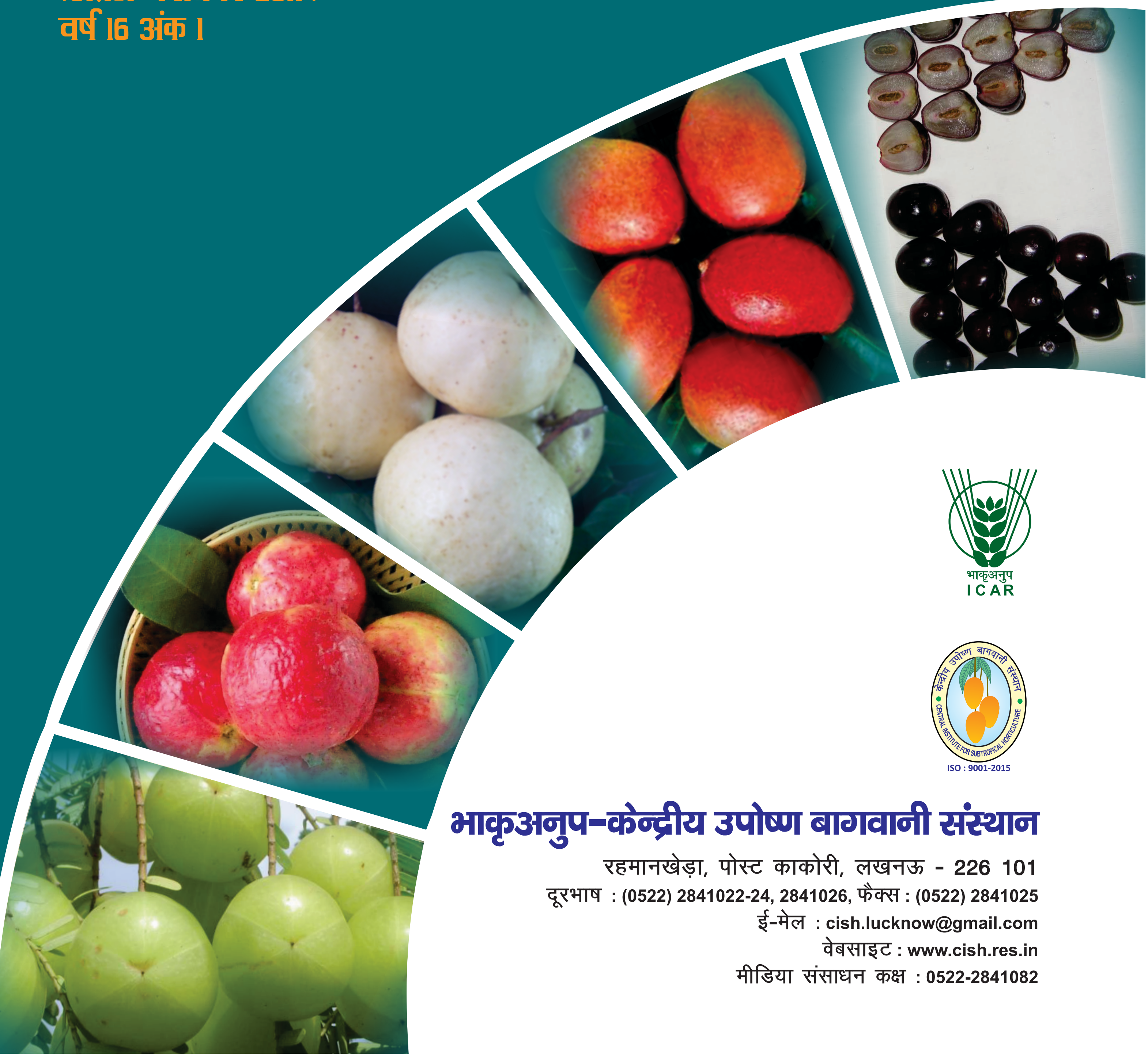

भाकृअनुप
ICAR

ISO : 9001-2015

भाकृअनुप–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान
रहमानखेड़ा, पोस्ट काकोरी, लखनऊ - 226 101
दूरभाष : (0522) 2841022-24, 2841026, फैक्स : (0522) 2841025
ई-मेल : cish.lucknow@gmail.com
वेबसाइट : www.cish.res.in
मीडिया संसाधन कक्ष : 0522-2841082

हिन्दी से संबंधित गतिविधियाँ

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
Agrisearch with a human touch

स्वच्छ भारत, समृद्ध भारत
स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

उद्यान रश्मि

राजभाषा पत्रिका

(अप्रैल–सितंबर 2017)
वर्ष 16 अंक 1

भाकृअनुप–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान
रहमानखेड़ा, पोस्ट काकोरी, लखनऊ - 226 101
दूरभाष : (0522) 2841022-24, 2841026, फैक्स : (0522) 2841025
ई-मेल : cish.lucknow@gmail.com
वेबसाइट : www.cish.res.in
मीडिया संसाधन कक्ष : 0522-2841082

भाकृअनुप
ICAR

केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान
CENTRAL INSTITUTE FOR SUBTROPICAL HORTICULTURE
ISO : 9001-2015

राजभाषा पत्रिका
(अप्रैल-सितंबर, 2017)
वर्ष 16, अंक 1

© भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान
रहमानखेड़ा, लखनऊ

संरक्षक एवं प्रकाशक
शैलेन्द्र राजन
निदेशक
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान
रहमानखेड़ा, लखनऊ-226101, उ.प्र.

संपादन मंडल
मनीष मिश्र
धीरज शर्मा

सहयोग
ए.के. भट्टाचार्जी
कंचन कुमार श्रीवास्तव
पी.के. शुक्ल
पवन सिंह गुर्जर

डिजाइनिंग
सुभाष पाण्डेय

अस्वीकरण

इस पत्रिका में प्रकाशित तथ्यात्मक लेखों के लिए लेखक ही उत्तरदायी हैं न कि भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, रहमानखेड़ा, लखनऊ, इसके प्रकाशक, संरक्षक या संपादन मंडल। उपयोगकर्ताओं को यह सलाह दी जाती है कि पत्रिका में दी गयी जानकारियों को उपयोग में लाने से पहले किसी विशेषज्ञ से विचार-विमर्श करें/सलाह लें।

प्रकाशक एवं सम्पर्क सूत्र
निदेशक
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, रहमानखेड़ा, लखनऊ-226101
फोन : 0522-2841022-24, फैक्स : 0522-2841025
मीडिया संसाधन कक्ष नं : 0522-2841082
ई-मेल : cish.lucknow@gmail.com
वेबसाइट : www.cish.res.in

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का गीत

जय जय कृषि परिषद भारत की,
सुखद प्रतीक हरित भारत की,
कृषिधन, पशुधन मानव जीवन,
दुग्ध, मत्स्य, फल, यंत्र सुवर्धन,
वैज्ञानिक विधि नव तकनीकी,
पारिस्थितिकी का संरक्षण,
सस्य-श्यामला छवि भारत की,
जय जय कृषि परिषद भारत की।

हिम प्रदेश से सागर तट तक,
मरु धरती से पूर्वोत्तर तक,
हर पथ पर है, मित्र कृषक की,
शिक्षा, शोध, प्रसार सकल तक,
आशा स्वावलंबित भारत की,
जय जय कृषि परिषद भारत की।
जय जय कृषि परिषद भारत की।।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
हिन्दी चेतना मास, 2017

संदेश

संविधान सभा द्वारा 14 सितंबर, 1949 को हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया था क्योंकि यह देश के अधिकांश वर्ग द्वारा बोली व समझी जाती है। इसके साथ भारत की धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक परंपराये भी जुड़ी हुई हैं। यह ऐतिहासिक निर्णय 14 सितंबर, 1949 को लिया गया था, इसलिए प्रत्येक वर्ष 14 सितंबर को हम हिन्दी दिवस के रूप में मनाते हैं। किसी भी देश की संस्कृति को एकता के सूत्र में पिरोने के लिए एक राष्ट्रभाषा का होना अत्यंत आवश्यक होता है। महात्मा गाँधी ने भारत के लिए राष्ट्रभाषा के महत्वपूर्ण लक्षण गिनाए थे। उन्होंने स्वतंत्रता के महासमर में भारत की संपर्क भाषा के लिए जो आह्वान किया था उसके अनुसार वह ऐसी भाषा हो जो धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक बोलचाल को सहज व सरल बनाए रख सके और जिसे ज्यादातर लोग बोलते हों। गाँधी जी ने यह अनुभव किया था कि अंगेजी के कारण ही भारत के शासक आम लोगों से दूर नजर आते हैं। हिन्दी एक अत्यंत सरल, समृद्ध एवं सशक्त भाषा है और भारत की राष्ट्रीय सांस्कृतिक एकता की महत्वपूर्ण कड़ी है। उसके मूल में विश्व की प्राचीनतम समृद्ध एवं सशक्त भाषा है और भारत की राष्ट्रीय सांस्कृतिक एकता की महत्वपूर्ण कड़ी है। उसके मूल में विश्व की प्राचीनतम समृद्ध भाषा संस्कृत है और साथ में तमाम भारतीय भाषाएँ उसकी ताकत हैं। हिन्दी और सभी भारतीय भाषाएं कभी भी अँग्रेजी की अनुचरी नहीं हो सकतीं। उन्हें तो आपस में ही संवाद करना होगा। यह भरोसा किया गया कि हिन्दी के राजभाषा होने का मतलब यही है कि राज्य के तंत्र में हिन्दी के साथ सभी भाषाएं एक गहन भारतीय संवाद का माध्यम बन सकें।

देश में आम बोल चाल की भाषा के रूप में हिन्दी का प्रयोग काफी बढ़ा है। सरकारी कार्यालयों में काम-काज में भी हिन्दी का प्रयोग किया जा रहा है। पहले की अपेक्षा सरकारी कार्यों में हिन्दी का प्रयोग ज्यादा हो रहा है। इसे और बढ़ाने की आवश्यकता है। यह जरूरी है कि समस्त विभागों में सरकारी कार्य मूल रूप से हिन्दी में हो। इसके लिए शुरूआत हमें, स्वयं से करनी होगी। यदि हम हिन्दी का सही मायने में सम्मान करें तो नई पीढ़ी को भी अपनी भाषा के सम्मान का संस्कार दे पाएंगे।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद देश का शीर्षस्थ कृषि अनुसंधान संगठन है। कृषि विज्ञान के क्षेत्र में इसके 250 से अधिक शोध संस्थान/केन्द्र देश भर में कृषि की अलग-अलग विधाओं में कार्य कर रहे हैं। इन शोध उपलब्धियों तथा अनेक पहलों जैसे फार्मर्स फर्स्ट, स्टूडेंट रेडी, आर्या आदि की लोकप्रियता संबंधित हितधारकों के बीच तभी बढ़ेगी जब इनका प्रचार-प्रसार हिन्दी तथा स्थानीय भाषाओं में किया जायेगा।

मैं मानता हूँ कि प्रशासनिक स्तर पर हिन्दी में कार्य करने का वातावरण परिषद व इसके संस्थानों में बन चुका है। वैज्ञानिक संगोष्ठियों/सम्मेलनों में भी हिन्दी का प्रयोग पहले की अपेक्षा काफी बढ़ा है। परन्तु जिस स्तर पर हिन्दी का प्रयोग होना चाहिए अभी वह वातावरण नहीं बन पाया है। हम पत्र-व्यवहार में हिन्दी का प्रयोग करने में हिचकिचाते हैं। अपने ही उच्च अधिकारियों को टिप्पणियाँ लिखने के लिए अँग्रेजी का प्रयोग करते हैं। आज भी इस अपार क्षमता वाली भाषा हिन्दी को कविता, कहानी, चुटकुले और पहेलियों की भाषा ही समझते हैं। अपनी भाषा का प्रयोग करते समय हम दूसरों की ओर देखते हैं या अनुवाद का सहारा लेते हैं। स्वयं हिन्दी का प्रयोग करने से बचते हैं। किसी भी अभिव्यक्ति को मूल रूप से स्वयं व्यक्त किया जाए तो उसका सम्प्रेषण कुछ और होता है जबकि अँग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद की गई भाषा का मूल भाव या अभिव्यक्ति कुछ और होती है।

इसके लिए मैं, आप सबका आह्वान करता हूँ कि आइए हम सब हिन्दी को उस स्थान पर पहुंचाने का संकल्प लें जिसकी वह हकदार है, जिससे यह संपूर्ण देश की पहचान बन सके। इसके लिए हम सभी को एक साथ यह संकल्प लेना होगा कि हम अनुवाद की बैसाखी का सहारा लिए बिना ही अपना समस्त कार्य बिना किसी संकोच के अधिक-से-अधिक हिन्दी में ही करें।

प्रत्येक वर्ष की तरह इस वर्ष भी परिषद व इसके संस्थानों में हिन्दी सप्ताह/पखवाड़ा/हिन्दी चेतना मास मनाया जा रहा है। मैं इस अवसर पर समस्त कर्मचारियों/अधिकारियों का आह्वान करता हूँ कि वे अपना समस्त कार्य हिन्दी में करें और यह सुनिश्चित करें कि हिन्दी के सतत् विकास हेतु उनके पूर्ण योगदान से राजभाषा को विश्व फलक पर सर्वोच्च स्थान व सम्मान मिल सके।

हिन्दी दिवस पर मेरी हार्दिक शुभकामनाएं।

(राधा मोहन सिंह)
कृषि एवं किसान कल्याण मंत्री, भारत सरकार

प्राक्कथन

भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, रहमानखेड़ा, लखनऊ की राजभाषा पत्रिका 'उद्यान रश्मि' का नवीनतम संस्करण पाठकों के समक्ष बागवानी संबंधी नूतन जानकारियों के साथ एक बार पुनः प्रस्तुत है। कृषि विज्ञान विषयक जानकारियों को राजभाषा (हिन्दी) में सभी सहभागियों तक पहुँचाने में 'उद्यान रश्मि' की महती भूमिका रही है। वर्तमान वैज्ञानिक युग में भाषाओं की भूमिका और भी बढ़ गयी है जब उन्हें अपने लक्षित समूह तक विज्ञान की नवीनतम जानकारियों/प्रौद्योगिकियों को पहुँचाकर जनजागरण का कार्य करना पड़ रहा है। भारत जैसे बहुभाषिक देश को एक सूत्र में पिरोने का जो अप्रतिम कार्य हिन्दी ने किया है वह तो वर्णननातीत है ही, हिन्दी ने व्यक्ति, समाज एवं देश को दिशा प्रदान करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। अब तो हिन्दी विज्ञान के आदान-प्रदान में भी सहायक सिद्ध हो रही है जिसका 'उद्यान रश्मि' एक सशक्त एवं ज्वलंत उदाहरण है। 'उद्यान रश्मि' कृषि संबंधी लेखों के द्वारा उन्नत कृषि तकनीकों को सभी सहभागियों तक पहुँचाना एक अनूठा प्रयास है।

संस्थान अपने स्थापना के समय से ही आम, अमरूद, बेल, आँवला, पपीता आदि अधिदेशित उपोष्ण फल फसलों के साथ-साथ जामुन, खिरनी, करौंदा, लसोढा, शरीफा, फालसा, शहतूत, अंबार आदि गौड़ फल फसलों पर अनुसंधान का कार्य करता रहा है। संस्थान उपोष्ण उद्यानिक फसलों पर भी शोध का कार्य कर रहा है। संस्थान में किये गये अनुसंधान को किसानों एवं बागवानों तक पहुँचाने के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की महत्वकाँक्षी योजना 'मेरा गाँव मेरा गौरव' के अंतर्गत संस्थान द्वारा आसपास के 40 से अधिक गाँवों को अंगीकृत किया गया है जहाँ के हजारों किसानों को फलों की तुड़ाई पूर्व प्रबंधन से लेकर आम के समेकित प्रबंधन प्रणाली तक की जानकारी दी जा रही है। संस्थान में ही फार्मर्स फर्स्ट परियोजना के अंतर्गत कसमंडीकला, मोहम्मदनगर तालुकेदारी, मीठे नगर एवं नबी पनाह आदि गाँवों के 1100 किसानों को अंगीकृत किया गया है जिनकी आमदनी को आने वाले 4 वर्षों में दोगुनी करने के लिये संस्थान प्रयासरत है। संस्थान उत्पादकता में वृद्धि, गुणवत्ता में सुधार, तुड़ाई/कटाई उपरांत होने वाली क्षति को कम करना, बुद्धिमत्तापूर्ण विपणन के साथ-साथ फल उत्पादन आधारित फसल पद्धति के विकास पर कार्य कर रहा है। किसानों को यह भी बताया जा रहा है कि आम और अमरूद की कौन-कौन सी प्रजातियाँ अधिक उत्पादन, नियमित फलन और उच्च गुणवत्ता वाली हैं तथा फलों के उत्पादन द्वारा कृषकों की आय बढ़ाने की क्षमता रखती हैं।

बागवानी के विस्तार में कृषि भूमि की सीमितता और अन्य खाद्य फसलों से प्रतियोगिता प्रमुख समस्या है। आम और अमरूद की सघन बागवानी में सीमित क्षेत्र में अधिक संख्या में वृक्षारोपण द्वारा प्रारंभिक वर्षों में ही अधिक लाभकारी उत्पादन संभव हुआ है। वृक्ष छत्र विन्यास प्रबंधन तकनीकी से अधिक उत्पादन और उच्च गुणवत्ता प्राप्त करना संभव हुआ है। कटाई-छँटाई की तकनीकी से वृक्षों का आकार सीमित रखने से फसल सुरक्षा व्यय में कटौती और अधिक प्रभाविकता के साथ-साथ तुड़ाई कार्य भी सुरक्षित और आसान है। जीर्णोद्धरित बागों में अंतः फसलोत्पादन भी आमदनी बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुआ है। इस प्रकार के बागों में रोग एवं कीट संबंधी समस्याओं का निराकरण समेकित नियंत्रण में नवीनतम प्रभावी प्रबंधन तकनीकी के समावेश से प्राप्त किया जा सकता है। शहरी क्षेत्रों में उर्ध्वाधर खेती और बड़े गमले में बागवानी अपना स्थान बना रही है। परिवहन और भंडारण के दौरान होने वाली हानि को कम करने हेतु तकनीकी उपलब्ध करायी गयी है। अधिक उत्पादन और बाजार में फलों की भरमार की स्थिति से निपटने हेतु मूल्य वर्धित उत्पाद बनाने की तकनीकी भी विकसित की गयी है। आम और अमरूद के उत्पादकों की आय में बढ़ोत्तरी से क्षेत्र के फल उत्पादकों की आर्थिक स्थिति एवं जीवन स्तर में महत्वपूर्ण सुधार संभावित है।

मैं 'उद्यान रश्मि' के नवीन संस्करण के लिये संपादन मंडल को हार्दिक बधाई देता हूँ। धन्यवाद के पात्र सभी लेखक भी हैं जिसके सहयोग से ही यह पत्रिका अपने प्रस्तुत स्वरूप को प्राप्त कर पायी है। आशा करता हूँ कि भविष्य में भी वैज्ञानिकगण अपने उत्तम एवं अद्यतन लेखों के माध्यम से अपना सहयोग देते रहेंगे।

(शैलेन्द्र राजन)
निदेशक

संपादकीय

संस्थान की राजभाषा पत्रिका 'उद्यान रश्मि' के वर्ष 2017 का प्रथम संस्करण (अप्रैल से सितंबर, 2017) नूतन एवं अद्यतन जानकारियों के साथ प्रकाशित किया गया है। 'उद्यान रश्मि' के उद्देश्य के मद्देनजर इस अंक में भी किसानोपयोगी कृषि विज्ञान सम्मत लेखों के माध्यम से बागवानी एवं संबद्ध विषयों की जानकारी उपलब्ध करायी गयी है। वैज्ञानिक लेखों को हिन्दी में पिरोना हमेशा से ही एक चुनौतीपूर्ण कार्य कर रहा है और यह कार्य सरल हिन्दी में संपादित करना और भी चुनौतिपूर्ण है।

हिन्दी दुनिया की तीसरी सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा है। संस्कृत की ही भांति हिन्दी वैज्ञानिक एवं ध्वन्यात्मक भाषा है। ध्वन्यात्मक भाषा होने के कारण हिन्दी में जैसा लिखा जाता है, वैसा ही बोला जाता है। अन्य भारतीय भाषाओं की तुलना में हिन्दी की और अधिक महत्ता है क्योंकि भारत में अधिकांश लोगों की मातृभाषा होने के साथ-साथ यह प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अधिकतर लोगों के लिए सूचनाओं एवं जानकारियों की संवाहिका रही है। भारत संघ की एक राजभाषा होने के कारण हिन्दी का महत्व और भी ज्यादा है क्योंकि समस्त सरकारी कार्यों का कार्यान्वयन हिन्दी में ही होता है। संपर्क भाषा के कारण हिन्दी की और भी विशेष भूमिका है।

हिन्दी के बढ़ते हुए प्रभाव को ध्यान में रखकर हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बनाने का प्रयास किया जा रहा है। इस प्रयास में फिजी और नेपाल भी सहयोगी राष्ट्र के रूप में ही मुखर हुए हैं। यदि हिन्दी संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बन जाती है तो इसके प्रसार में गति आयेगी। सोशल मीडिया विशेषकर फेसबुक, वाट्सअप एवं ट्वीटर के कारण भी हिन्दी के प्रसार में तेजी आयी है।

राजभाषा पत्रिका के प्रकाशन का प्रमुख उद्देश्य है कि इसमें लिखित अनुभवी लेखों का लाभ किसान, बागवान, प्रसंस्करण उद्योग से जुड़े व्यापारी, जनसामान्य सभी को प्राप्त हो। इसमें संस्थान के अधिदेशित फलों, गौड़ फलों, सब्जियों, संरक्षित खेती, जैव प्रौद्योगिकी, तुड़ाई उपरान्त प्रबंधन, कृषि प्रौद्योगिकी, तकनीकों एवं सूचनाओं के माध्यम से एक इंद्रधनुषी रंग में पाठकों के लिये प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। पाठकों के प्रश्नों एवं वैज्ञानिक लेखों के प्रति उनकी उत्सुकता से इसकी लोकप्रियता ज्ञात होती है। फिर भी इस पत्रिका में उत्तरोत्तर सुधार के लिये आपके सुझाव सर्वदा आमंत्रित किये जाते हैं।

इस पत्रिका प्रकाशन के लिये मैं संस्थान राजभाषा कार्यान्वयन समिति के सभी सदस्यों, संपादन मंडल के सदस्यों तथा लेख उपलब्ध कराने वाले सभी लेखकों का आभारी हूँ। मैं पाठकों द्वारा प्रेषित सुझावों एवं सराहना के लिये भी उनका आभारी हूँ क्योंकि उनके सहयोग के बिना यह प्रयास सफल नहीं हो सकता था। आशा है कि यह पत्रिका सभी पाठकों के लिये ज्ञानवर्धक सिद्ध होगी।

(धीरज शर्मा)
सहायक निदेशक
(राजभाषा)

विषय-वस्तु

1. **फार्मर फर्स्ट परियोजना-किसानों की आय बढ़ाने का एक अभिनव प्रयास** 1
मनीष मिश्रा, राम अवध राम, सुशील कुमार शुक्ल, श्याम राज सिंह, अनिल कुमार वर्मा, प्रभात कुमार शुक्ल, अशोक कुमार, गुंडप्पा, पवन सिंह गुर्जर एवं शैलेन्द्र राजन

2. **फलों की सघन बागवानी अपनायें, कम क्षेत्रफल में अधिक उत्पादन पायें** 9
धीरू कुमार तिवारी, देवेन्द्र पाण्डेय, अवनीश पाण्डेय एवं शिल्पा सिंह

3. **आम उत्पादकों की आमदनी दोगुनी करने के लिये छत्र प्रबंधन एवं अन्तरासस्यन** 12
सुशील कुमार शुक्ल

4. **आम आधारित कुक्कुट पालन कृषि प्रणाली : प्रतिदिन आय का स्रोत** 15
राम अवध राम, सुभाष यादव एवं मनीष मिश्रा

5. **पराजीनी तकनीक से फल वृक्षों में सुधार** 17
स्वाति कुमारी, सुभाष चंद्र यादव, मानसी राय शर्मा एवं मनीष मिश्रा

6. **आम में दैहिक व्याधियाँ एवं प्रबंधन** 20
शैलेन्द्र राजन, वी.के. सिंह, रमेश कुमार सिंह, प्रणव कुमार मिश्रा, कुमार आदित्य एवं वैभव श्रीवास्तव

7. **अमरूद में एकीकृत नाशीकीट प्रबंधन** 24
गुण्डप्पा एवं पी.के. शुक्ल

8. **जामुन की बागवानी एवं उसका आर्थिक महत्व** 29
ए. के. सिंह एवं कृष्ण कुमार मिश्र

9. **समस्याग्रस्त क्षेत्रों में फलोत्पादन के द्वारा अतिरिक्त आय का सृजन** 32
देवेन्द्र पाण्डेय, अवनीश पाण्डेय, धीरु कुमार तिवारी, शिल्पा सिंह एवं निकिता नेहाल

10. **बागवानी एवं उद्यमिता विकास** 34
जितेन्द्र कुमार

11. **मशरूम उत्पादन विविधीकरण : आवश्यकता एवं महत्व** 37
प्रभात कुमार शुक्ल

12. **मसाला वर्गीय फसलों के प्रमुख कीट तथा उनका प्रबंधन** 42
घनानन्द तिवारी, बी.पी. शाही एवं अशोक कुमार

13. **किन्नो के प्रमुख कीट एवं उनका प्रबन्धन** 48
दीपक कुमार जैन, ए.एस.जोधा एवं हेमन्त स्वामी

14. **सहिजन : एक बहुपयोगी पौधा** 52
आभा सिंह एवं पवन सिंह गुर्जर

15. **देशी गाय और भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था** 54
राम अवध राम

16. **गोभी वर्गीय सब्जियों के दैहिक विकार एवं उनका निदान** 59
श्याम राज सिंह, दिनेश कुमार एवं जे. एन. तिवारी

17. **लहसुन के औषधीय उपयोग एवं उत्पादन तकनीकी** 63
जे.एन. तिवारी एवं श्याम राज सिंह

18. **लौकी की वैज्ञानिक खेती** 66
वी.के. सिंह, मनोज कुमार सोनी एवं अनिल कुमार यादव

19. **जंक फूड/फास्ट फूड स्वास्थ्य पर प्रभाव** 70
भारती किल्लाड़ी, जोतिर्मयी लेंका, रेखा चौरसिया, पवन सिंह गुर्जर एवं डी.के. शुक्ला

20. **आमदनी एवं सेहत के लिए बादाम** 72
दिनेश कुमार, कंचन कुमार श्रीवास्तव, श्याम राज सिंह एवं घनश्याम पाण्डेय

21. **कैल्सियम कार्बाइड से फल पकाने के दुष्प्रभाव एवं सुरक्षित तरीके** 75
पवन सिंह गुर्जर, ए.के. वर्मा, गोपाल कारपेंटर, जे. लेंका एवं आभा सिंह

22. **माइक्रो-आरएनए द्वारा जीन विनियमन का आणविक तंत्र** 78
इसरार अहमद, मुथ्थुकुमार एम., उमेश एच. एवं देवेन्द्र पाण्डेय

23. **बिहार में केला की उन्नत बागवानी** 80
संजय कुमार सिंह, विनोद कुमार एवं स्वाति शर्मा

24. **सब्जियों के प्रोबॉयोटिक उत्पाद** 86
नीलिमा गर्ग एवं संजय कुमार

25. **भारत संघ की राजभाषा संबंधी अनुच्छेद एवं नियम** 88

26. **विविध** 91-100

फार्मर फर्स्ट परियोजना-किसानों की आय बढ़ाने का एक अभिनव प्रयास

मनीष मिश्रा[1], राम अवध राम[2], सुशील कुमार शुक्ल[3], श्याम राज सिंह[4], अनिल कुमार वर्मा[5], प्रभात कुमार शुक्ल[6]
अशोक कुमार[7], गुंडप्पा[8], पवन सिंह गुर्जर[9] एवं शैलेन्द्र राजन[10]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

उद्देश्य

फार्मर फर्स्ट परियोजना भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा देश के विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रो में चलायी जा रही है। इसका उद्देश्य किसानों को तकनीकी जानकारी प्रदान करना, कृषि की नयी एवं विविध तकनीकों को किसानों तक ले जाना है जिससे उनकी आजीविका में सुधार हो सके। केंद्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ ने इस परियोजना को मलिहाबाद की प्रसिद्ध फल पट्टी के तीन गाँव-नबी पनाह, मीठेनगर एवं मोहम्मद नगर तालुकेदारी में प्रारंभ किया है। इस परियोजना के तहत किसानों को विभिन्न उद्यान आधारित तकनीकों का प्रशिक्षण दिया जा रहा है और साथ ही विभिन्न प्रकार के निवेश भी मुफ्त में दिये जा रहे है। किसानों को आम आधारित कुक्कुट पालन, मशरूम उत्पादन, पोषण वाटिका, आम की तुड़ाई एवं सुरक्षित पकवन, आम के बागों में अंतर-सस्य फसलें, आम के बागों में कीटनाशी का विवेकपूर्ण प्रयोग, बेमौसमी सब्जियों की नर्सरी सहित अमचूर उत्पादन जैसे तकनीकों से जोड़ा गया है जिससे की किसानों की आय में सुधार हो सके। ग्रामीण युवा विशेषकर महिलायें इस परियोजना से जुड़ रही हैं। किसानों को भारतीय कृषि कौशल विकास के माध्यम से नर्सरी प्रबंधन में भी प्रशिक्षित किया जा रहा है। दो गैर सरकारी संस्थाएँ 'अवध आम उत्पादक, बागवानी समिति', नबी पनाह तथा 'सोसाइटी फॉर कन्ज़र्वेशन आफ मैंगो डाइवर्सिटी', मोहम्मदनगर तालुकेदारी इस परियोजना में किसानों एवं वैज्ञानिकों के मध्य सेतु का कार्य कर रही हैं।

पोषण सुरक्षा की ओर एक कदम - पोषण वाटिका

यद्यपि हरित क्रांति ने खाद्य सुरक्षा उपलब्ध करा दी है किन्तु छोटे एवं सीमान्त किसानों तथा श्रमिकों में कुपोषण संबंधी बीमारियाँ, संक्रमण, बच्चों का विकास न हो पाना, वयस्कों की शारीरिक विकास में कमी इत्यादि सामान्यतः देखी जा सकती है। विश्व के चालीस प्रतिशत कुपोषित बच्चे भारत में रहते हैं जो चिंता का विषय है। फल एवं सब्जियाँ विटामिन एवं खनिज से भरपूर होते हैं एवं इनसे पर्याप्त पोषण मिल जाता है। भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद के अनुसार प्रति व्यक्ति को 300 ग्राम सब्जी प्रति दिन (125 ग्राम पत्तीदार, 100 ग्राम जड़ वाली एवं 75 ग्राम अन्य सब्जियाँ) सेवन करना चाहिए किन्तु सामान्यतः सब्जियों की उपलब्धता केवल 210 ग्राम प्रति व्यक्ति प्रतिदिन ही है। किसान चाहे छोटे या भूमिहीन हों अथवा श्रमिक कार्य में रत हो, सबके पास एक पोषण वाटिका अवश्य होनी चाहिए। इसका उद्देश्य है कि प्रत्येक परिवार के पास पूरे वर्ष मौसमी फल एवं सब्जियों की उपलब्धता बनी रहे। इससे न केवल पोषण सुरक्षा मिलेगी बल्कि फल एवं सब्जियों पर खर्च हो रहे धन को भी संचित किया जा सकता है। फार्मर फर्स्ट परियोजना के तहत मीठेनगर, मोहम्मद नगर तालुकेदारी एवं नबी पनाह के 1100 किसान परिवारों को सब्जी के बीज एवं फल के पौधे मुफ्त दिये जा रहे हैं जिससे इन गावों में रहने वाले लोगों को समुचित पोषण सुरक्षा प्राप्त हो सके।

कैसे तैयार करें वाटिका?

वाटिका को इस प्रकार तैयार करें कि इसके भीतर सस्य क्रियाएँ आसानी से की जा सके। इसका आकार इस बात पर निर्भर करता है कि भूमि की उपलब्धता क्या है और परिवार में कुल कितने सदस्य है। चार सदस्यों वाले परिवार के लिए 250 मी^{2} आकर की वाटिका होनी चाहिये।

- जमीन को छोटे-छोटे 7 प्लाट, संकरे रास्ते एवं सिंचाईं नाली में काट लें (जैसा कि चित्र में दर्शाया गया है)।
- कम समय में फल देने वाले वृक्ष जैसे पपीता, केला, अनार, अमरूद एवं नीबू को यथासंभव उत्तर दिशा में लगायें।
- लता वाली सब्जियाँ जैसे कद्दू वर्गीय सब्जियाँ, ऊपर बढ़ने वाले टमाटर एवं मटर को बाड़े के ऊपर फैलायें।
- पूरे वर्ष सब्जी उत्पादन हेतु कम अंतराल में एक के बाद दूसरी सब्जी बोयें।
- मेड़ों पर मूली, गाजर, चुकंदर, शलजम इत्यादि बोयें।
- जल्दी तैयार होने वाली फसलों को देर से तैयार होने फसलों के साथ बोयें।
- वाटिका के दो सिरों पर दो गड्ढे बनायें जिसमें वाटिका एवं रसोई के कचड़े को डाल कर खाद बनायें। इन गड्ढों के ऊपर छाँह हेतु बीन्स के पौधे लगायें।

[1,2,3,4]प्रधान वैज्ञानिक, [5]वै.(व.वे.) [6,7]वरिष्ठ वैज्ञानिक, [8,9]वैज्ञानिक एवं [10]निदेशक

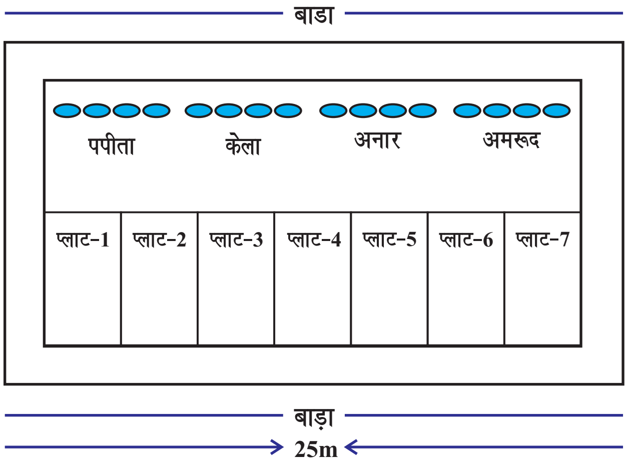

पोषण वाटिका के लिए फसलें

यद्यपि फसलों का चयन परिवार की पसंद और जलवायु के आधार पर करना चाहिए किन्तु किस्मों का चुनाव करते समय मौसम और बोआई के समय का ध्यान अवश्य रखें।

जायद	खरीफ	रबी
भिंडी	चौलाई	टमाटर
पालक	भिंडी	मटर
लोबिया	बैंगन	मिर्च
लौकी	लोबिया	पात गोभी
करेला	कद्दू	बैंगन
खीरा	नेनुआ	गोभी सरसों/पालक
मूली	डोलिकोस बीन्स	चुकंदर
		गाजर
		मूली

आम आधारित मुर्गी पालन

भारत में आम का उत्पादन 2.2 लाख हेक्टेयर में किया जाता है। इससे 18.50 लाख टन आम का उत्पादन होता है। पूरे विश्व में भारत आम के उत्पादन में प्रथम स्थान पर है जो पूरे विश्व के उत्पादन का 52 प्रतिशत है। प्रति हेक्टेयर आम के उत्पादन में 30-40 हजार रुपये का प्रति वर्ष व्यय होता है जिससे औसतन 1-1.5 लाख रुपये की आय प्राप्त होती है जो एक परिवार की सभी आवश्यकताओं की प्रतिपूर्ति के लिए पर्याप्त नहीं है। आम के उत्पादन को यदि घरेलू मुर्गी पालन के साथ एकीकृत किया जाये तो परिवार के वार्षिक आय एवं पोषण सुरक्षा में वृद्धि हो सकता है। भारत में मुर्गी पालन एक उद्योग का रूप धारण कर चुका है जिससे अंडे की वार्षिक उपलब्धता 1971 में 10 से बढ़कर 61 अण्डे प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष हो चुकी है। भारतीय आर्युविज्ञान द्वारा मानदंडों को देखते हुए गांव के प्रत्येक परिवार की पोषण सुरक्षा एवं समुचित आय को प्राप्त करने के लिए घरेलू मुर्गी पालन से जोड़ना चाहिए। घरेलू मुर्गी पालन में 5-20 मुर्गियों का छोटा समूह होता है जो घर के पीछे बीज एवं कीड़े मकोड़ों एवं पौधों की कोमल पत्तियों को खाकर विकसित होता है। मुर्गी पालन की इस पद्धति को कम से कम खर्चे में छोटे, लघु, सीमांत एवं भूमिहीन किसान आसानी से अपना सकते हैं। केवल विपरीत परिस्थितियों में निम्न कोटि के अनाज खिलाने की आवश्यकता होती है। घरेलू मुर्गी पालन से अंडे एवं प्रोटीन युक्त आहार बिना किसी लागत के उपलब्ध हो सकता है। इन अंडों को परिवार के सदस्यों को खिलाकर कुपोषण से बचाया जा सकता है। अधिक संख्या में अंडे उपलब्ध होने पर उनको बाजार में बेचकर अतिरिक्त आय भी प्राप्त की जा सकती है। ग्रामीण परिवेश में पली मुर्गियों का अंडा स्वस्थ एवं जैविक आहार के रूप का एक अच्छा विकल्प होता है। यदि घरेलू मुर्गी पालन को आम के साथ जोड़ दिया जाये तो इसके निम्नलिखित लाभ हो सकते हैं।

1. आम के बाग में हानिकारक कीटों की संख्या में धनात्मक कमी आयेगी।
2. बाग की मृदा की पोषण क्षमता में वृद्धि होगी क्योंकि मुर्गी के विष्ठा की खाद अधिक पौष्टिक होती है।

चित्र 1: आम का बाग एवं घरेलू पालन हेतु उपयुक्त मुर्गी की जातियाँ

अमचूर उत्पादन की अभिनव विधि से किसानों की आजीविका में सुधार

उत्तर प्रदेश में देश का लगभग 24 प्रतिशत आम उत्पादन होता है। किसान तुड़ाई के बाद ताजे फलों को ही बाज़ार में बेच देते हैं। तुड़ाई उपरांत जीवन काल बहुत कम (5-8 दिन) होने के कारण छोटे से अन्तराल में ही आम का विपणन करना आवश्यक होता है जिसके कारण मंडी में आम की बहुलता हो जाती है और किसानों को आम का उचित मूल्य नहीं मिलता है। इसलिए किसानों की आमदनी बढ़ाने के लिए आम का प्रसंस्करण एवं मूल्य वर्धन अति आवश्यक है। अमचूर उत्पादन किसानों के लिए लाभ का कार्य हो सकता है। उत्तर प्रदेश के आम उत्पादक क्षेत्रों में उत्पादन के दौरान (अप्रैल से मई) 3-4 बार तेज आँधी आती हैं जिससे कच्चे फल गिर जाते हैं। इसके अलावा फल तुड़ाई के समय 6-7 प्रतिशत फल जमीन एवं शाखाओं पर गिरने के कारण फट जाते हैं। इन फलों का बाज़ार में उचित मूल्य नहीं मिलता। यदि इन फलों से थोड़ी मेहनत कर अमचूर बनाया जाये तो इसका उचित मूल्य बाज़ार में मिल सकता है। फलस्वरूप किसानों को अधिक लाभ हो सकता है। यद्यपि माल एवं मलिहाबाद क्षेत्र के आम उत्पादक किसान कच्चे आम के फलों की फाँकें सुखाकर बेचते हैं किन्तु सुखाते समय स्वच्छता नहीं रखने के कारण फाँकों में फफूंद लग जाती है तथा रंग काला हो जाता है। इसके कारण फाँकों का बाज़ार में उचित मूल्य नहीं मिल पाता। यदि फाँकों को उपचारित कर, भाकृअनुप- केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान द्वारा विकसित कम लागत के सोलर ड्रायर में सुखाकर, ग्राइंडर से चूर्ण में परिवर्तित कर आकर्षक फूड ग्रेड पाउच में पैक कर एफ.एस.एस.ए.आई. प्रमाणपत्र का लोगों लगाकर बेचा जाये तो अधिक मूल्य (300-400 रुपये/ किलो) मिलेगा।

अभिनव विधि से अमचूर बनाने का प्रवाह चित्र

आम को धोकर छील ले

⇩

पतली फाँक काट लें

⇩

परिरक्षक को 1 लीटर पानी में घोलें (1 किलो कच्चे आम के लिए)

⇩

फाँकों को 10 मिनट तक परिरक्षक मिले हुए पानी में डुबोयें

⇩

फाँको को आईसीएआर-सीआईएसएस द्वारा विकसित सोलर ड्रायर में सुखायें (5-6 प्रतिशत नमी तक)

⇩

ग्राइंडर से पीसें

⇩

वायुरोधी पैकिंग में पैक करें

⇩

भंडारण/विपणन

सीआईएसएच सोलर ड्रायरः यह 2 मीटर लंबा एवं 1 मीटर चौड़ा है। इसके उपर लोहे का फ्रेम लगाकर यू वी स्थायी पारदर्शी पॉलिथीन से ढका गया है। इसमें 10 किलोग्राम आम की फाँके एक साथ सुखायी जा सकती हैं। ड्रायर के अंदर का तापमान बाहर के तापमान से 8-10 °C अधिक होता है।

ग्राइंडरः यह स्टैनलैस स्टील का बना हुआ है। इसमें 2 हॉर्स पावर की मोटर लगी होती है। इसके अलावा एक ब्लोअर भी लगा हुआ होता है जो फाँकों तथा चूर्ण में बची हुई नमी को भी सुखा देता है।

चित्र-1 सोलर ड्रायर

चित्र-2 ग्राइंडर

आम के बागों मे मशरूम की खेती

मशरूम के स्वास्थ्यवर्धक एवं औषधीय गुणों के कारण इसे जापान में 'अमरता का भोजन' एवं भारत में 'स्वास्थ्य भोजन' के रूप में जाना जाता है। वैज्ञानिक अनुसंधान से यह प्रमाणित हो चुका है कि मशरूम का सेवन मनुष्य में रोग प्रतिरोधी क्षमता उत्पन्न करता है। मशरूम में उपस्थित कार्बोहाइड्रेट में स्टार्च की अनुपस्थिति इसे मधुमेय एवं हृदय रोगों के नियंत्रण में सहायक सिद्ध करती है। मशरूम में उपस्थित रेशा हमारी पाचन क्रिया को सुचारू बनाता है। मशरूम वसा में उपस्थित अधिक लिनोलिइक अम्ल (61-70%) एवं कोलेस्ट्राल की अनुपस्थिति इसे उच्च रक्तचाप एवं हृदय रोगों के रोगियों हेतु आदर्श आहार का रूप प्रदान करती है। किसान भाई आम के बागों में अथवा घरों में बंद कोठरियों में मशरूम ऊगा कर आय के विकल्प बढ़ा सकते हैं।

मशरूम स्पान (बीज) : मशरूम उत्पादन हेतु प्रयोग किये जाने वाला स्पान गेहूँ के दानों में उगा हुए कवक जाल होता है।

मशरूम उत्पादन तकनीकी

ढ़िगरी मशरूम सामान्य तापक्रम (10-28° सेल्सियस) पर अक्टूबर से मार्च तक गेहूँ के भूसे या धान के पुवाल पर उगाया जाता है। इसको उगाने की विधि अत्यन्त सरल एवं कम खर्चीली है।

दूधिया मशरूम सामान्य तापक्रम पर (28-35° सेल्सियस) मार्च के द्वितीय पखवाड़े से अक्टूबर माह के अन्त तक सफलतापूर्वक उगाया जाता है। तुड़ाई उपरान्त इस मशरूम की भण्डारण क्षमता भी अन्य प्रजातियों की अपेक्षा श्रेष्ठ है।

उत्पादन विधि

पोषाधार (भूसा) का उपचार : भूसे में उपस्थित हानिकारक जीवों एवं उनके बीजों का नाश करने हेतु भूसे का उपचार निम्नलिखित में से किसी एक विधि द्वारा करना चाहिये।

- **गर्म पानी द्वारा :** भूसे को 80° सेल्सियस से अधिक गर्म पानी में एक घंटे तक उपचारित कर उसी पानी में 14-16 घंटे भीगनें दें।
- **रासायनिक :** इस विधि से उपचार हेतु 200 लीटर क्षमता के ड्रम में 135 लीटर पानी भरकर उसमें 10 ग्राम बेविस्टीन एवं 160 मिलीलीटर फार्मेल्डिहाड घोलकर भूसे को दबा-दबा कर डुबोना चाहिये। ड्रम को वायुरोधी ढक्कन से मजबूती से बंद करना चाहिये।

भूसे को 14-16 घंटे उपचार के बाद जल रिसाव हेतु पलट देना चाहिये। एक घंटे के जल रिसाव के उपरान्त भूसे को पॉलिथीन की चादर या स्वच्छ एवं विसंक्रमित पक्के फर्श पर लगभग 1-0 इंच मोटा फैलाकर धूप में सुखाना चाहिए। भूसे को समान रूप से सुखाने हेतु उलट-पलट करना आवश्यक है। उचित नमी (60-70%) अवस्था पर भूसे को एकत्र कर बिजाई हेतु कक्ष में ले जाना चाहिये। बिजाई हेतु एक किलोग्राम भूसे को पॉलिथीन थैलियों में भरकर दबाने एवं समतल करने के बाद 30-50 ग्राम स्पान समान रूप से छिड़क दें। इस सतह पर एक किलोग्राम भूसे की दूसरी तह बनाकर 30-50 ग्राम स्पान बिखेर दें। तत्पश्चात एक किलोग्राम भूसे की अन्तिम तह बिछाकर ऊपर से नीचे की ओर बलपूर्वक दबाते हैं। तैयार थैली का मुँह सुतली से बाँधकर बाँस की ताख पर स्थापित करें। साथ ही थैली के अन्दर उत्पन्न होने वाली जल वाष्प की मुक्ति हेतु थैली के नीचे के दोनों कोनों को थोड़ा-थोड़ा काटें एवं ऊपरी भाग पर विसंक्रमित सुई द्वारा 20-25 छिद्र उत्पन्न करें। तैयार थैलियों में कवक वृद्धि का निरीक्षण प्रतिदिन करें।

फसल प्रबंधन

बिजाई के 20-25 दिन उपरान्त कवक जाल फैल जाता है। पूर्ण कवक जाल फैलाव के बाद थैलियों को उत्पादन कक्ष में रखकर ढ़िंगरी मशरूम की पॉलिथीन को काटकर हटा देते हैं और दिन में चार-पाँच बार जल का छिड़काव पूरे फसल काल में करते रहते हैं। पॉलिथीन हटाने के 7-10 दिन बाद मशरूम कलिकायें उत्पन्न होना प्रारंभ होता है।

दूधिया मशरूम की बिजाई के 15-20 दिन उपरान्त कवक जाल फैल जाता है एवं आवरण मृदा बिछाने के 10-12 दिन बाद मशरूम कलिकायें उत्पन्न होना प्रारम्भ होता है। आवरण बिछाने हेतु कृषि या बाग की दोमट मृदा एवं पुरानी-सड़ी हुई गोबर की खाद को आपस में बराबर मात्रा में मिलाकर फार्मेल्डिहाइड के 2.0 प्रतिशत घोल से गीला कर पॉलिथीन थैलियों में भरकर बंद करें। तीन दिन उपरान्त उपचारित मृदा को विसंक्रमित पॉलिथीन चादर पर फैलाकर फार्मेल्डिहाइड की गंध समाप्त होने तक दो-दो घंटे के अन्तराल पर उलट-पलट करते हैं। मृदा मिश्रण को जल वाष्प से भी उपचारित कर सकते हैं। उत्पादन के समय कक्ष की वायु में 80 प्रतिशत से अधिक आर्द्रता रहना चाहिये।

उपज : समुचित प्रबंधन से की गयी फसल से 75 किलोग्राम मशरूम प्रति 100 किलोग्राम भूसा औसत उपज प्राप्त होती है।

तुड़ाई उपरान्त प्रबंधन : तुड़ाई की गयी मशरूम को आवश्यकतानुसार छिद्र युक्त पॉलिप्रोपेलीन थैलियों में भरकर बंद कर देना चाहिये। यदि आवश्यक हो तो इसे 5 सेल्सियस पर 2-3 दिन तक भंडारित कर सकते हैं।

फसल उत्पादन की समस्याएँ : लगातार खेती करने पर विभिन्न प्राकृतिक शत्रु बाधा उत्पन्न करते हैं जिनसे बचाव एवं नियंत्रण के द्वारा लगातार अच्छा उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

- **फफूँदी जनित समस्याएँ :** विभिन्न प्रकार के फफूँद उपचारित भूसे में, उसे सुखाने या ब्रिजाई के समय संक्रमण करते हैं जिससे कवक जाल फैलाव के समय मशरूम के जाल के स्थान पर संक्रमण कारी फफूँद उगकर थैलियाँ व्यर्थ कर देते हैं। इनसे बचाव हेतु भूसे का समुचित उपचार एवं हाथ-पैर, पॉलिथीन चादर आदि की सफाई पर विशेष ध्यान दें। संक्रमित थैली को हटाकर भूमिगत करें।
- **कीट जनित समस्याएँ :** यदि मक्खियाँ उत्पादन कक्ष में प्रवेश पा जाती हैं तो मशरूम फलकाय को क्षति पहुँचाती हैं। उत्पादन कक्ष में प्रवेश रोकने हेतु खिड़कियों आदि पर 35 मेश की जाली लगायें तथा दरवाजा सदैव बंद रखें। कक्ष में उपस्थित मक्खियों के नियंत्रण हेतु पीले रंग के कागज-प्रकाश-ट्रेप लगायें एवं अधिकता की स्थिति में डी.डी.वी.पी. (डाईक्लोरवोस) कीटनाशक 0.1 प्रतिशत सांद्रता पर दीवारों आदि पर छिड़कें। ध्यान रखें कि इस कीटनाशक विष को उगते हुए मशरूम पर न छिड़के।
- प्रत्येक फसल समाप्त होने पर उत्पादन कक्ष को पूर्णतः खाली एवं साफ कर प्रतिशत फार्मेल्डिहाइड के 4 प्रतिशत के घोल का छिड़काव करें।

मौसमी सब्जियों की पौधशाला-आय उत्पादन का एक नया विकल्प

बेमौसमी सब्जियों की खेती का प्रचलन आजकल काफी बढ़ रहा है क्योंकि इन सब्जियों का दाम बहुतायत में पायी जाने वाली सब्जियों की तुलना में ज्यादा होता है जिसकी वजह से किसानों का रूझान बेमौसमी सब्जियों की खेती में ज्यादा होता है। इन सब्जियों की खेती करने के लिए सब्जियों की पौध सुरक्षित वातावरण में तैयार की जाती हैं जो इन फ़सलों की वृद्धि के लिए उचित समय पर खेतों में लगायी जाती है तथा अगेती फसल प्राप्त की जा सकती है। उत्तर भारत के मैदानों में कड़ाके की ठंड की वजह से कद्दू वर्गीय सब्जियों का उत्पादन अप्रैल से मई के महीने में होता है जबकि विषम परिस्थिति जैसे दिसंबर एवं जनवरी के ठंड के समय पौध तैयार कर ली जाती है तथा ठंड का मौसम खत्म होते ही फरवरी के महीने तक खुले खेतों में लगा दी जाती है एवं उत्पादन मार्च से लेकर अप्रैल के महीने से शुरू हो जाता है। बरसात के दिनों में पौधों की नर्सरी तैयार करना एक कठिन काम है जिसको वर्षा की बूंदों से बचाकर तैयार किया जाता है। इसके लिए रेन शेल्टर या रो कवर का इस्तेमाल किया जाता है जिससे पौधे जुलाई से अगस्त के महीने में तैयार हो जाते हैं एवं इनकी रोपाई अगस्त से सितंबर के महीने में खुले खेतों में की जा सकती है एवं अगेती पैदावार ली जा सकती है।

क्र.सं.	फसल	बीज बोने का समय	पौध रोपण का समय	कटाई अवधि	तुड़ाई
1.	रसभरी	जुलाई-अगस्त	अगस्त-सितंबर	जनवरी-फरवरी	एक महीना
2.	पत्तागोभी	जुलाई-अगस्त	अगस्त-सितंबर	नवंबर-दिसंबर	एक महीना
3.	फूल गोभी	जुलाई-अगस्त	अगस्त-सितंबर	नवंबर-दिसंबर	एक महीना
4.	ब्रोक्कली	जुलाई-अगस्त	अगस्त-सितंबर	नवंबर-दिसंबर	दो महीना
5.	हरी मिर्च	जुलाई-अगस्त	अगस्त-सितंबर	नवंबर-दिसंबर	दो महीना
6.	टमाटर	जुलाई-अगस्त	अगस्त-सितंबर	अक्टूबर-नवंबर	तीन महीना

जल्दी फसल उत्पादन के लिए कद्दू वर्गीय सब्जियाँ

1.	तरबूज	दिसंबर का दूसरा पखवाड़ा	फरवरी का दूसरा पखवाड़ा	अप्रैल दूसरा सप्ताह	एक महीना
2.	खरबूजा	दिसंबर का दूसरा पखवाड़ा	फरवरी का दूसरा पखवाड़ा	अप्रैल दूसरा सप्ताह	एक महीना
3.	लौकी	दिसंबर का दूसरा पखवाड़ा	फरवरी का दूसरा पखवाड़ा	मार्च पहला सप्ताह	एक महीना
4.	कद्दू	दिसंबर का दूसरा पखवाड़ा	फरवरी का दूसरा पखवाड़ा	मार्च का दूसरा सप्ताह	एक महीना
5.	करेला	दिसंबर का दूसरा पखवाड़ा	फरवरी का दूसरा पखवाड़ा	मार्च का दूसरा सप्ताह	एक महीना
6.	तरोई	दिसंबर का दूसरा पखवाड़ा	फरवरी का दूसरा पखवाड़ा	मार्च का दूसरा सप्ताह	एक महीना
7.	खीरा	दिसंबर का दूसरा पखवाड़ा	फरवरी का दूसरा पखवाड़ा	मार्च पहला सप्ताह	एक महीना

दिसंबर के दूसरे पखवाड़े के दौरान बीज बोने और नर्सरी कवर

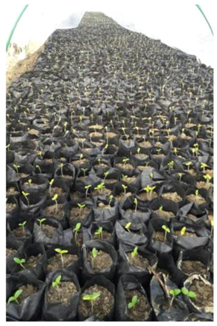

जनवरी के दौरान बीज अंकुरण

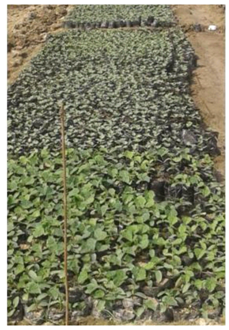

फरवरी के दौरान प्रत्यारोपण के लिए तैयार पौधा

तरबूज की अग्रिम फसल (अप्रैल का पहला सप्ताह)

लौकी की अग्रिम फसल (मार्च का पहला सप्ताह)

आम फल की सुरक्षित तुड़ाई एवं पकवन

तुड़ाई

आमतौर पर देखा गया है कि आम की तुड़ाई लग्गी या डालों को हिलाकर की जाती है। इस कारण लगभग 6-7 प्रतिशत फल चोट खाने के कारण फट जाते हैं। इन फटे फलों को किसान अमचूर बनाने के लिये उपयोग में लाते हैं। कुछ फलों में अंदरूनी चोट लग जाती है जिसके कारण ये फल सही से नहीं पकते और जल्दी खराब हो जाते हैं। इस कारण उनका बाजार में मूल्य कम मिलता है। संस्थान (के.उ.बा.सं.) द्वारा विकसित आम तोड़क यंत्र से तुड़ाई करने से उपरोक्त समस्या दूर हो सकती है। इस यंत्र के उपयोग से लगभग 2-3 प्रतिशत फलों को बचाया जा सकता है। इसके द्वारा तोड़े गये फलों का बाजार मूल्य भी लगभग 10 प्रतिशत ज्यादा मिलता है।

संस्थान द्वारा विकसित आम तोड़क यंत्र से तुड़ाई

तुड़ाई उपरांत फलों को मंडी में लकड़ी की पेटी, प्लास्टिक की क्रेट या गत्ते के डिब्बों में भरकर ले जाया जाता है। लकड़ी की पेटी

का वजन ज्यादा होने के कारण यातायात या ढुलाई की लागत ज्यादा आती है। प्लास्टिक की क्रेटों में फलों को ज्यादा दूर तक नहीं ले जाया जा रहा है क्योंकि क्रेट को वापस लाने की लागत ज्यादा आती है। अतः संस्थान द्वारा बनायी गयी गत्ते की पेटी में आम ले जाने से उनकी कीमत ज्यादा मिलती है क्योंकि इस पेटी में आम सुरक्षित रहते हैं एवं देखने में आकर्षक लगते हैं।

आम का पकवन

किसान आम को नहीं पकाते हैं। आम को तुड़ाई के उपरांत पेटी या क्रेट में भरकर सीधे मंडी पहुँचाते हैं जहाँ पर इन्हें दोबारा या उसी पेटी में कैल्सियम कार्बाइड लगाकर पकाया जाता है। कैल्सियम कार्बाइड एक प्रतिबंधित रसायन है। इसका प्रयोग वर्जित है। इस समस्या के समाधान के लिए संस्थान द्वारा प्रयुक्त विधि के द्वारा आम को तोड़ने के उपरांत पानी से धोया जाता है फिर सुरक्षित रसायन द्वारा उपचार कर सुखा कर पेटीबंदी की जाती है। इस उपचार के बाद आम 6 दिन से लेकर 2 दिन में पकाये जा सकते हैं। इस उपचार को करने के बाद अन्य किसी उपचार जैसे कैल्सियम कार्बाइड या एथिलीन गैस की आवश्यकता नहीं रहती। इसके द्वारा उपचारित आम अच्छी तरह पकते हैं और उनका रंग आकर्षक पीला होता है। ये अन्दर से एक समान पकते हैं एवं सुदृढ़ रहते हैं।

आम में कीटनाशकों का विवेकपूर्ण उपयोग

भारत के सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का योगदान लगभग 14 प्रतिशत है। हरित क्रांति के दौरान उच्च उत्पादकता वाली किस्में कीड़ों एवं व्याधियों के लिए अतिसंवेदनशील हो गयी जिसके चलते रासायनिक कीटनाशकों का अंधाधुंध प्रयोग होने लगा जो मानव एवं जीवों के स्वास्थ्य के साथ ही पर्यावरण के लिए भी घातक है। इनके उपयोग से कीटों में प्रतिरोधकता बढ़ी, कीटों की संख्या बढ़ी और साथ ही इसने लाभदायक कीटो, परागकर्ताओं एवं मृदा सूक्ष्मजीवियों की संख्या को भी घटा दिया।

आम भारत की एक महत्त्वपूर्ण फसल है जो 2.51 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में 18.43 मिलियन मीट्रिक टन उत्पादन देती है। उत्तर प्रदेश आम उत्पादन में अग्रणी प्रदेश है। विश्व में आम में लगभग 492 प्रकार के कीट लगते है। जिसमें से 298 कीट प्रमुख है।

आम में सुरक्षित कीटनाशक प्रयोग के निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें

आम में गुजिया से बचाव के लिए नवंबर-दिसंबर में बाग की जुताई कर दें साथ ही चौड़ा अल्काथीन बैंड (400 ग्राम) जमीन से 30 सेंटीमीटर ऊपर लगाए तथा इसके निचले सिरे पर ग्रीस लगा दे। बवेरिआ बसिआना उत्पाद (2 ग्राम/लीटर, 1.107 स्पोर/मिली) का छिड़काव करें अथवा 5 प्रतिशत एन.एस.के.ई. का छिड़काव तने पर माह दिसंबर में करें। यदि कीट ऊपर पेड़ में चढ़ जाये तो डाइमेथोएट (2 मिली/लीटर पानी) का छिड़काव करें।

भुनगा से बचाव के लिए सघन बागवानी से बचें, शाखाओं को काटें, बाग़ को साफ़ रखें एवं खरपतवार को निकालते रहें। यदि प्रति गुच्छ भुनगे की संख्या पांच हो तो इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस. एल. (0.3 मिली/लीटर पानी) पहला छिड़काव तब करे जब पुष्प गुच्छ 8 -10 सेंटीमीटर लम्बें हो जायें। दूसरा छिड़काव थाइमेथोक्सोम 25 डब्लूजी (0.3 ग्राम/लीटर) का फल लगने के तुरंत बाद करे। इससे न केवल कीटनाशी कम लगेंगे बल्कि उत्पादन खर्च भी कम आएगा।

जाला कीट प्रबंधन हेतु जालों को नीचे गिरा कर एकत्रित कर जला चाहिए। अप्रैल से जुलाई माह तक छँटाई करने तथा इन्हें जलाने से भी सफलता मिलती है। अक्टूबर-नवंबर में वृक्षों के चारो ओर जमीन की गुड़ाई करने से भी नियंत्रण में मदद मिलती है।

यदि कीट का प्रकोप अधिक हो तो लैम्डा साइक्लोथ्रिन (5 ई.सी.) 1 मिली प्रति लीटर पानी के घोल का 15 दिन के अंतराल पर छिड़काव करे।

तना बेधक को नियंत्रित करने के किये छिद्रों को साफ़ कर उनमें डाइक्लोरवास का घोल 75 ई.सी. (5 मिली/लीटर) गिडार द्वारा निर्मित छिद्रो में डालें।

स्केल कीट के नियंत्रण के लिए डाइमेथोएट 30 ई.सी. को 2 मिली/लीटर पानी के घोल में मिला कर बीस दिनों के अंतराल पर छिड़काव करना चाहिए।

फल मक्खी के नियंत्रण के लिए फलों को पकने से पहले तोड़ने तथा इस कीट के प्रकोप की अधिकता को कम करने के लिए समस्त गिरे हुए और मक्खी के प्रकोप से ग्रस्त फलों को इक्कठा कर नष्ट करने से सफलता मिलती है। इसके अतिरिक्त इसे मिथाइल यूजीनोल यौन गंध ट्रैप से भी नियंत्रित किया जा सकता है। यौन गंध ट्रैप के लिए प्लाईवुड के 5.5.1 सेंटीमीटर आकार के गुटके को घंटो तक 6:4:1 अनुपात में अल्कोहल : मिथाइल यूजीनोल एवं मैलाथिआन के घोल में भिगो कर लगाना चाहिए। एक हेक्टेयर के लिए 10 ट्रैप की आवश्यकता है।

यदि आम फल भेदक की समस्या ज्यादा हो तो लैम्डा साइक्लोथ्रिन (5 ई.सी.) 1 मिली/लीटर पानी का छिड़काव करे।

थ्रिप्स को नियंत्रित करने के लिए थाइमेथोक्सोम 0.3 ग्राम/लीटर की दर से छिड़काव करे।

कीटनाशी के विवेकपूर्ण उपयोग के लिए कुछ सावधानियाँ

- किसान अपने कीटनाशी को रजिस्टर्ड डीलर से ही खरीदें।
- खरीदने से पहले सुनिश्चित कर लें कि कीटनाशी के डब्बे पर निर्माता कंपनी का नाम लिखा है या नहीं। कीटनाशी को खाद्य पदार्थ से दूर रखें।
- खरीदने से पूर्व डब्बे पर लिखे लेबल को पढ़ें और ध्यान रखें कि वह आपकी फसल के लिए संस्तुत किया गया है अथवा नहीं।
- प्रतिबंधित कीटनाशकों को नहीं खरीदें।
- सही कीटनाशक को सही फसल पर, सही मात्रा में एवं सही समय पर डालना चाहिए।
- छिड़काव के दौरान किसान सुरक्षित ढंग से कपडे पहनें, हवा के विपरीत छिड़काव नहीं करें, छिड़काव के वक्त कुछ खायें नहीं एवं छिड़काव के बाद हाथ धोयें।
- स्प्रेयर अगर चू रहा हो तो उसका प्रयोग न करें, बच्चों से छिड़काव कभी न करायें।
- कीटनाशकों के खाली डब्बो को घरेलू प्रयोग में नहीं लायें।
- कीटनाशक का जहर यदि शरीर में पहुँच जाये तो फ़ौरन डॉक्टर को दिखायें।
- कीटनाशक के डब्बे को कूड़े के ढेर में नहीं फेंके।

योग

योग भारतीय दर्शन की छह पद्धतियों में से एक है। योग को महर्षि पतंजलि द्वारा सूत्रबद्ध कर 'योगसूत्र' नमक पुस्तक में पिरोया गया। इस योगसूत्र में संस्कृत में लिखे 192 सूत्र हैं। योग शब्द युज धातु से बना है जिसका शाब्दिक अर्थ होता है, जोड़ना। आत्मा अनेक प्रकार से परमात्मा से सम्बद्ध हो सकती है। जिस शारीरिक या मानसिक साधन से आत्मा परमात्मा से जुड़ जाए वही योग कहलाता है। योग को आसान, प्राणायाम, मुद्रा और बंध चारों का योग भी कहा जाता है।

पतंजलि का योग अष्टांगी मार्ग है जिसमें यम, नियम, आसान, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि पर विस्तार से चर्चा की गयी है। योग की चर्चा भगवान् शिव ने भी शिव संहिता में की है। शिव संहिता के अनुसार 84 आसान हैं जिनमें से चार मुख्य आसान हैं-सिद्धासन, पद्मासन, उग्रासन और स्वस्तिकासन। प्रत्येक आसान से शरीर का कोई न कोई भाग शक्तियुक्त बनता है और शरीर रोग रहित हो जाता है। प्राणायाम से श्वास गति नियमित और नादयुक्त हो जाती है तथा इसको करने से हृदय संबंधी रोग भी नहीं होता है। भगवान राम के गुरु वशिष्ठ मुनि ने उन्हें योग पर महत्वपूर्ण जानकारियां दीं जिन्हें योगवशिष्ठ नमक पुस्तक में आज भी पढ़ा जा सकता है। प्रसिद्द योगाचार्य स्वात्माराम ने भी 'हठयोग प्रदीपिका' में योग में किये जाने जाने वाले आसनों की चर्चा की गयी है।

प्राणायाम को रेचक, पूरक और कुम्भक तीन प्रकार से किया जाता है। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए दैनिक रूप से एक घंटे योग करना चाहिए। इसकी महत्ता एवं उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए हमारे माननीय प्रधानमंत्री महोदय के अथक प्रयास से योग को विश्वस्तर पर मान्यता मिली है और अब प्रत्येक वर्ष 21 जून को अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाया जाता है जिससे लाखों लोग लाभान्वित हो रहे हैं।

(धीरज शर्मा)
सहायक निदेशक (राजभाषा)

फलों की सघन बागवानी अपनायें, कम क्षेत्रफल में अधिक उत्पादन पायें

धीरू कुमार तिवारी[1], देवेन्द्र पाण्डेय[2], अवनीश पाण्डेय[3] एवं शिल्पा सिंह[4]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

विश्व में जनसंख्या की दृष्टि से भारत का दूसरा स्थान है तथा इसमें निरन्तर वृद्धि हो रही है। आबादी में हो रही वृद्धि के कारण कृषि योग्य भूमि में कमी आ रही है। इसको देखते हुए भविष्य में बढ़ती हुई आबादी के लिए कम क्षेत्र में अधिक उत्पादन करने की आवश्यकता होगी। अधिक भोजन के साथ-साथ समुचित पोषण की भी आवश्यकता है जो फलों के द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। खेती करने एवं बाग लगाने के लिए सीमित होती भूमि से हमें अधिक-से-अधिक उत्पादन प्राप्त करना होगा तभी हमें खाद्य एवं पोषण सुरक्षा प्राप्त हो पायेगी। इसके लिए आज परंपरागत बागवानी से हटकर सघन बागवानी अपनाने की आवश्यकता होती है। परंपरागत बागवानी में प्रति इकाई क्षेत्र में उत्पादन तो कम होता ही है साथ ही उनके प्रबंधन में धन की भी अधिक आवश्यकता होती है। इन्हीं कारणों से वर्तमान समय में न केवल भारत में अपितु विश्व के अन्य देशों में भी फल वृक्षों की सघन बागवानी को बढ़ाने पर बल दिया जा रहा है जिससे कम क्षेत्र से उच्च गुणवत्तायुक्त अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सके। सघन बागवानी में फल जल्दी आना शुरू हो जाता है और साथ ही प्रति हेक्टेयर उत्पादन भी अधिक होता है और फल की गुणवत्ता भी अच्छी होती है। इस प्रणाली में श्रम शक्ति तथा श्रम पर व्यय होने वाला धन भी कम लगता है क्योंकि पौधे को कटाई-छँटाई कर छोटा रखा जाता है जिससे पौधे पर किया जाने वाला सस्य कार्य आसानी से हो पाता है एवं जमीन का समुचित उपयोग किया जाता है। सघन बागवानी में खाद, पानी, सूर्य की रोशनी, कीटनाशी का समुचित उपयोग होता है जिससे परंपरागत बागवानी की अपेक्षा प्रति हेक्टेयर अधिक उत्पादन एवं आय प्राप्त होती है।

सघन बागवानी से होने वाले लाभ

- उत्पादन एवं उत्पादकता में अपेक्षाकृत वृद्धि।
- प्रारंभिक वर्षों में ही कुछ-न-कुछ फलत की प्राप्ति होती है एवं वृक्षों के बीच खाली जगह का समुचित उपयोग।
- खरपतवारों में कमी।
- सिंचाई के जल का समुचित उपयोग।
- खाद एवं उर्वरकों का समुचित उपयोग।
- गुणवत्तायुक्त फलों का उत्पादन।
- कम क्षेत्रफल का उपयोग।
- उत्पादन लागत की तुलना में लाभ में वृद्धि।

सघन बागवानी हेतु भूमि की तैयारी एवं रेखांकन

इसमें फल वृक्षों के अनुसार भूमि का चयन किया जाता है। अप्रैल-मई में भूमि की गहरी जुताई कर 10-15 दिनों के लिए छोड़ देते हैं। इससे खेत के कीट-पतंगें आदि मर जाते हैं। तत्पश्चात खेत को समतल कर पौधा-से-पौधा एवं कतार-से-कतार की दूरी के अनुसार रेखांकित कर लेना चाहिए (सारणी-1)। रेखांकन के बाद गड्ढे की खुदाई कर मानसून से पहले 1.5 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट, 20 मिलीग्राम क्लोरोपाइरीफॉस एवं 30-40 किलोग्राम गोबर की सड़ी हुई खाद मिट्टी में मिलाकर गड्ढे को भर देते हैं। अधिक संख्या में पौधारोपण के लिए प्रति इकाई क्षेत्रफल में बौने पौधों का होना अत्यन्त आवश्यक है। अतः हमारे देश में फलों की अनेक बौनी किस्में विकसित की गयी हैं, जिनका उपयोग सघन बागवानी में किया जा सकता है। (सारणी-1)।

बौने किस्म लगाने के लाभ

- फल तुड़ाई में आसानी।
- लागत में कमी।
- फल देने वाली शाखाओं की संख्या अनुत्पादक शाखाओं से अधिक होती है।
- पौध सुरक्षा के लिए दवा के छिड़काव में आसानी।
- उच्च आर्थिक लाभ की प्राप्ति हेतु सीमित क्षेत्र में अधिक पौध-रोपण संभव होता है।

पौध रोपण

उच्च गुणवत्ता वाले पौधों को जुलाई-अगस्त के मध्य तक तैयार गड्ढों में सायं काल की बेला में सावधानी पूर्वक लगा देते हैं एवं उसके चारों ओर की मिट्टी को अच्छी तरह से दबा देते हैं। पौधा रोपण के तुरंत बाद सिंचाई कर दी जाती है जिससे पौधा अच्छी तरह से भूमि में स्थापित हो जाये।

सिंचाई

प्रारंभ के दो वर्षों तक पौधों में मानसून आने के पूर्व प्रत्येक सप्ताह (गर्मी में) एवं पन्द्रह दिनों (सर्दी में) सिंचाई करनी चाहिए।

[1]प्रधान वैज्ञानिक एवं [2,3,4]शोध सहायक

सारणी-1 फलों की सघन बागवानी हेतु विवरण

क्र.सं.	फल वृक्ष	किस्में	दूरी (मी.)	पौधों की सं.(प्रति हे.)
1.	आम	आम्रपाली	2.5 × 2.5	1600
		मल्लिका	3.0 × 4.0	833
		दशहरी	5 × 5	400
2.	लीची	चाइना, शाही	4.5 × 4.5	329
3.	अमरूद	ललित	1.5 × 3.0	2222
		इलाहाबाद सफेदा	2.0 × 2.0	2500
		सरदार	1.0 × 2.0	5000
4.	केला	ड्वार्फ कैवेंडिस, बसराई ड्वार्फ	1.8 × 1.8	3086
5.	पपीता	पूसा नन्हा	1.25 × 1.25	6000
6.	संतरा	किन्नो	1.8 × 1.8	3086

कटाई-छँटाई

सघन बागवानी के अन्तर्गत प्रारंभिक कटाई-छँटाई करना अत्यंत आवश्यक होता है। इसके लिए आम के पौधों को जमीन से 60 से 70 सेंटीमीटर की ऊँचाई पर शीर्ष स्तर से काटना चाहिए। यह कार्य अक्टूबर-दिसंबर के दौरान किया जाता है। कटाई के फलस्वरूप मार्च-अप्रैल में नये प्ररोह उत्पन्न होते हैं जिसमें से चार प्ररोहों को चारों दिशाओं में रखकर बाकी सभी को काटकर हटा देते हैं। यह कार्य मई में किया जाता है। फिर इन चार प्ररोहों का अक्टूबर-नवंबर में कटाई की जाती है। इस तरह कटाई-छँटाई कर पेड़ों के चारों तरफ 3-4 शाखाओं को बढ़ने देते हैं फिर इन्हीं शाखाओं से पौधे का आकार छतरीनुमा करने के लिए उचित कटाई-छँटाई निरंतर करते रहना चाहिए। इसके उपरांत सूखी, अवांछित, घनी शाखाओं को एवं लगभग 15-20 प्रतिशत कल्लों को भी प्रत्येक वर्ष निकालते रहना चाहिए।

लीची में एक साल के पौधों को 40-50 सेंटीमीटर पर शीर्ष कटाई किया जाना चाहिए। यह कार्य अगस्त-सितंबर में करना चाहिए। कटिंग के तुरंत बाद बोरडेक्स मिश्रण या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का लेप लगाया जाता है। जब वृक्ष फलन में आ जाये तब फल तुड़ाई के समय 25-30 सेंटीमीटर लम्बी फल शाखाओं को हटा देते हैं। इस प्रकार 2-3 नये सिरे विकसित होंगे जिसके फलस्वरूप अगले मौसम में ये फलदार शाखाएँ होंगी।

अमरूद के पौधे में मुख्य तने पर भूमि तल से लगभग 60-70 सेंटीमीटर तक कोई शाखा नहीं रहना चाहिए। इसके बाद मुख्य तना के ऊपरी भाग को काट देते हैं। इस ऊँचाई के बाद 20-25 सेंटीमीटर के अन्दर 3-4 शाखाएँ चुन ली जाती हैं। इन शाखाओं को 4-5 महीने तक बढ़ने दिया जाता है तब तक जब तक कि ये 40-50 सेंटीमीटर की न हो जायें। अब इन प्ररोहों को इनकी लम्बाई का 50 प्रतिशत तक काटा जाता है जिससे कटे हिस्से के ठीक नीचे से कल्लों का सृजन हो सकें। नवसृजित कल्लों को 40-50 सेंटीमीटर लंबाई (4-5 माह) तक बढ़ने देने के बाद पुनः उनकी कटाई-छँटाई की जाती है। सही तरीके से कटाई-छँटाई द्वारा तैयार किये गये पौधे का व्यास 2 मीटर तथा ऊँचाई 2.5 मीटर तक सीमित रखने हेतु प्रत्येक वर्ष जनवरी-फरवरी तथा मई-जून में कल्लों की कटाई की जाती है।

प्ररोहों की कटाई-छँटाई के बाद कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (3 ग्राम/लीटर पानी) का छिड़काव करना चाहिए।

पोषण प्रबंधन

सघन बागवानी में लगे फलदार पौधों को प्रति इकाई क्षेत्रफल के आधार पर गोबर की खाद, नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटॉश उर्वरक का प्रयोग करना चाहिए। उर्वरक का प्रयोग टपक सिंचाई के द्वारा देना लाभकारी होता है। नाइट्रोजन का प्रयोग टपक सिंचाई

द्वारा 25 प्रतिशत फल तुड़ाई के उपरान्त, 40 प्रतिशत फूल निकलने से पहले, 20 प्रतिशत फल बन जाने पर एवं 15 प्रतिशत फल पूर्ण विकसित हो जाने पर देना चाहिए। इसी तरह फास्फोरस को 40, 30, 20 एवं 10 प्रतिशत तथा पोटॉश को 25, 20, 25 एवं 30 प्रतिशत की दर से बाँट कर देना चाहिए।

पौध सुरक्षा उपाय

कीट एवं रोग के नियंत्रण की विधियाँ वही अपनायी जाती है जो परंपरागत बागवानी में की जाती है। सघन बागवानी में कीट एवं रोग नियंत्रण पर विशेष ध्यान देने की जरूरत होती है।

सघन बागवानी में ध्यान देने योग्य बातें

सघन बागवानी अपनाते समय निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

- स्वस्थ्य पौध को ही रोपित करना चाहिए।
- वृक्ष के आकार को नियंत्रित रखना चाहिए।
- बौनी किस्मों का चयन किया जाना चाहिए।
- टहनियों को काटते रहना चाहिए।
- कीट एवं रोगों पर विशेष ध्यान देना चाहिए।
- पौधे के प्रत्येक भाग तक सूर्य की रोशनी पहुँचने की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए।

वीर

सच है, विपत्ति जब आती है,
कायर को ही दहलाती है,
सूरमा नही विचलित होते,
क्षण एक नहीं धीरज खोते,
विघ्नों को गले लगाते हैं,
काँटों में राह बनाते हैं
मुँह से न कभी उफ़ कहते हैं,
संकट का चरण न गहते हैं,
जो आ पड़ता सब सहते हैं,
उद्योग-निरत नित रहते हैं,
शूलों का मूल नसाते हैं,
बढ़ खुद विपत्ति पर छाते हैं।
है कौन विघ्न ऐसा जग में,
टिक सके आदमी के मग में?
खम ठोक ठेलता है जब नर,
पर्वत के जाते पाँव उखड़,
मानव जब ज़ोर लगाता है,
पत्थर पानी बन जाता है।

–रामधारी सिंह दिनकर

रश्मिरथी

किया किसका नहीं कल्याण उसने ?
दिये क्या-क्या न छिपकर दान उसने ?
जगत के हेतु ही सर्वस्व खोकर,
मरा वह आज रण में निस्स्व होकर।
उगी थी ज्योति जग को तारने को
न जनमा था पुरुष वह हारने को
मगर, सब कुछ लुटा कर दान के हित ,
सुयश के हेतु, नर-कल्याण के हित।
दया कर शत्रु को भी त्राण देकर,
खुशी से मित्रता पर प्राण देकर,
गया है कर्ण भू को दीन करके,
मनुज-कुल को बहुत बलहीन करके।
युधिष्ठिर! भूलिये, विकराल था वह,
विपक्षी था, हमारा काल था वह
अहा! वह शील में कितना विनत था ?
दया में, धर्म में कैसा निरत था !
समझ कर द्रोण मन में भक्ति भरिये,
पितामह की तरह सम्मान करिये
मनुजता का नया नेता उठा है
जगत से ज्योति का जेता उठा है !

–रामधारी सिंह दिनकर

आम उत्पादकों की आमदनी दोगुनी करने के लिये छत्र प्रबंधन एवं अन्तरासस्यन

सुशील कुमार शुक्ल[1]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

आम भारत का एक महत्वपूर्ण फल है। पूरे विश्व में आम उत्पादन के क्षेत्र में भारत का प्रथम स्थान है। वर्तमान समय में भारत के 2.52 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में आम की खेती की जाती है जिससे 7.3 टन/हेक्टेयर की औसत उत्पादकता के साथ 18.43 मिलियन मैट्रिक टन आम का उत्पादन होता है। सिर्फ उत्तर प्रदेश में ही लगभग 3,04,110 हेक्टेयर क्षेत्र में आम की खेती की जाती है जिससे लगभग 2.73 मिलियन टन आम का उत्पादन होता है। इन आम के बागों में छत्र प्रबंधन कर अंतरासस्यन द्वारा बागवानों की आय बढ़ाने की अपार सम्भावनायें हैं।

आम के पुराने बागों में सेंटर ओपेनिंग (छत्र मध्य खोल काट-छाँट) के साथ फर्न (*नेफ्रोलेपिस ट्यूबरोसा*), शतावरी (*एस्परेगस रेसीमोसस*), जिमींकंद (*एमार्फोफेलस प्योनीफोलियस*), हल्दी (*कर्क्यूमा लॉन्गा*), गिनीघास (*पैनिकम मैक्सीमम*) जैसी अन्तःफसलों की खेती सफलतापूर्वक कर किसानों की आमदनी को आसानी से दो गुना किया जा सकता है। साथ-ही-साथ एक लाख से तीन लाख रुपये प्रति हेक्टेयर तक की अतिरिक्त आमदनी प्राप्त की जा सकती है।

आम के बागों में फर्न (*नेफ्रोलेपिस ट्यूबरोसा*) की खेती

फर्न एक ऐसा पौधा है जिसका प्रयोग अक्सर गुलदस्ता या पुष्प गुच्छ बनाने में या विभिन्न समारोहों के दौरान सजावट के लिये किया जाता है। इसका प्रवर्धन हम बीजाणुओं या भूस्तारी द्वारा आसानी से कर सकते हैं। आम के बागों में फर्न की खेती को काफी लाभदायक पाया गया है। फर्न के पौधों को हम जुलाई-अगस्त या फरवरी के महीने में आम के बगीचों में वृक्षों के बीच उपलब्ध जगह में 45-60 सेंटीमीटर की पंक्ति से पंक्ति की दूरी तथा इतनी ही पौधे से पौधे की दूरी रखते हुए लगाते हैं। इन्हें लगाने के पहले हम प्रति वृक्ष के हिसाब से लगभग 100 किलोग्राम सड़ी गोबर की खाद मिट्टी तैयार करते समय अच्छी तरह मिला देते हैं। आम के पौधों से लगभग दो मीटर दूरी चारों तरफ छोड़ देनी चाहिये। इस प्रकार लगभग 15,000 पौधे एक हेक्टेयर के लिये पर्याप्त होते हैं। बाद में इन्हीं पौधों के भूस्तारी पौधों के ही आसपास निकलते हैं जिनसे पौधे तैयार कर और विस्तार कर सकते हैं। एक वर्ष में एक हेक्टेयर के बगीचे से आसानी से 9 से 12 लाख पत्तियों का उत्पादन किया जा सकता है। उन्हें बेचकर 2 से 3 लाख रुपये तक की अतिरिक्त आमदनी प्राप्त की जा सकती है। बाजार में मांग के अनुसार ही इन्हें तोड़कर बेचना चाहिये या पैक कर दूर बाजार में भेजना चाहिये। फर्न की पत्तियों का प्रयोग फूलों के गुलदस्ते या शादी या अन्य अवसरों पर सजावट के लिये काफी वृहत स्तर पर किया जाता है जिससे इसकी बाज़ार में पूरे वर्ष मांग रहती है।

शतावरी (*एस्परेगस रेसीमोसस*) की खेती

आम के बागों से अतिरिक्त आमदनी प्राप्त करने के लिये शतावरी एक महत्वपूर्ण फसल है। इसकी खेती के लिये बलुआर दोमट मिट्टी जिसका पी.एच. मान 7 से 8 के बीच हो, अच्छी होती है। बहुत भारी मिट्टी में जड़ों का विकास कम होता है। अंतःफसल के रूप में शतावरी की खेती कर आम के बागों से 6 से लेकर 8 टन प्रति हेक्टेयर तक सूखी जड़ों का अतिरिक्त उत्पादन किया जा सकता है जिससे बाजार के अनुसार सात से आठ लाख तक की अतिरिक्त आमदनी हर दो वर्ष में एक बार हो जाती है। इसकी मांसल जड़ों की खुदाई 24 से 36 महीने बाद करने से अच्छी उपज प्राप्त होती है।

इसके पौधे बीज या कटिंग द्वारा बनाये जाते हैं। बीज अप्रैल-मई में बरसात के पहले ही जमीन से लगभग 6 इंच उठी हुई क्यारियों में पाँच-पाँच सेंटीमीटर की दूरी पर बो देने चाहिये जिससे इसका सख्त बीज चोलक आसानी से कमजोर हो जाये और बरसात आने पर अच्छा जमाव और पौधों की वृद्धि हो। पौधे जब लगभग 45-60 सेंटीमीटर के हो जायें तब इन्हें 50 × 50 सेंटीमीटर की दूरी पर आम के बागों में लगाना चाहिये। जुलाई अगस्त में रोपण हेतु पौध तैयार हो जाती है। कटिंग से लगाने के लिये 2 से 3 मांसल जड़ों के साथ तने की कटिंग तैयार की जाती है। पौधों को 50 × 50 सेंटीमीटर पर लगाया जाता है। आम के बाग में लगाने के लिये प्रति हैक्टर लगभग 15,000 पौधों की आवश्यकता होती है। यह एक औषधीय फसल है इसलिये जहाँ तक संभव हो रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग नहीं करना चाहिये। सड़ी गोबर की खाद 15-20 टन प्रति हेक्टर डालनी चाहिये। मौसम के अनुसार एक से दो सिंचाई जाड़े और गर्म में करनी चाहिये। बरसात में सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। एक साल में खुदाई करने पर 0.4 से 0.6 किलोग्राम/पौधा एवं 24-30 महीने बाद खुदाई करने पर 1.5 से 2.0 किलोग्राम मांसल जड़ें/पौधा आसानी से मिल जाती हैं।

1. प्रधान वैज्ञानिक

इन्हें हम साफ कर छील लेते हैं और गोल-गोल छोटे छोटे टुकड़े करने के बाद छाया में सुखा लेते हैं और बाजार में बेच देते हैं। यह देखा गया है कि अगर हम तुरंत जड़ों को नहीं छीलते हैं तो बाद में छिलका सख्त हो जाता है और इसे निकालना मुश्किल होता है। ऐसे में इसे पहले 10 मिनट उबलते पानी और फिर ठंडे पानी में डालते हैं जिससे इसको छीलना आसान हो जाता है और इसके छोटे-छोटे टुकड़े बनाकर छाया में सुखाते हैं। इसका प्रयोग आयुर्वेदिक औषधियों में होता है इसलिये इसकी अच्छी मांग रहती है।

हल्दी (*कर्क्यूमा लॉन्गा*) की खेती

आम के बागों में हल्दी सबसे प्रचलित अंतःफसल है लेकिन इसकी खेती अपेक्षाकृत नये बागों में ज्यादा सफल होती है। बागों में छत्र बढ़ने के साथ-साथ इसकी उपज कम होने लगती है जो खुले की अपेक्षा 50 प्रतिशत तक कम हो सकती है। लेकिन अगर बागों में काट-छाँट कर छत्र प्रबंधन से प्रकाश की उपलब्धता सुनिश्चित हो तो इसका उत्पादन अच्छा हो सकता है। हल्दी का प्रयोग अक्सर मसाला, रंग, उबटन या औषधि के रूप में किया जाता है। हमारे देश में आंध्र प्रदेश, केरल, तमिलनाडु, ओडिशा, उत्तर प्रदेश, बिहार, कर्नाटक, पश्चिम बंगाल, गुजरात, मेघालय, महाराष्ट्र, असम आदि हल्दी के मुख्य उत्पादन प्रदेश हैं। उत्तर प्रदेश के वाराणसी, फैज़ाबाद, इलाहाबाद, जौनपुर, मिर्ज़ापुर, देवरिया, गोरखपुर, महाराजगंज, बस्ती, बाराबंकी एवं गोंडा जनपदों में इसकी खेती बहुतायत से की जाती है।

हल्दी के लिये गर्म एवं नम जलवायु एवं औसतन 800 से 1200 सेंटीमीटर वर्षा उत्तम है। बोआई एवं जमाव के समय कम वर्षा, पौधों की वृद्धि एवं विकास के समय अधिक वर्षा एवं परिपक्वता के समय शुष्क वातावरण की आवश्यकता होती है। मिट्टी का पी.एच. मान 6-7.5 के बीच होना चाहिये। बागों में जुताई या अच्छी गुड़ाई कर 15-20 टन प्रति हेक्टर सड़ी गोबर की खाद मिलानी चाहिये और वृक्षों के आसपास लगभग 1.5-2.5 मीटर की दूरी तक जगह छोड़ देनी चाहिये। आम के बाग की आयु के अनुसार 6 से 8 मीटर की पट्टी आसानी से अंतःफसल की खेती के लिये उपलब्ध हो जाती है। अंतःफसल के रूप में हल्दी उगाने पर इसकी बीज दर बाग की उम्र एवं प्रकंद के आकार के अनुसार 1200-1500 किलोग्राम/हेक्टेयर तक होती है। से लेकर हल्दी की उन्नत किस्में नरेंद्र हल्दी-1, नरेंद्र हल्दी-2, नरेंद्र हल्दी-3, राजेंद्र सोनिया, सुगंधा, स्वर्णा, श्रोमा, सुरोमा, आई आई एस आर अलेप्पे सुप्रीम, आई आई एस आर केदारम, आई आई एस आर प्रतिभा, आई आई एस आर प्रगति, प्रभा, सुगुना, सुदर्शना, बरुआसागर, पडरौना लोकल आदि प्रमुख हैं। इनका उत्पादन 15 से 20 टन प्रति हेक्टेयर (ताजे कंद) और कर्क्यूमिन 3 से 9 प्रतिशत, ओलियोरेजिन 10 से 13 प्रतिशत और शुष्क पदार्थ उपलब्धता 19 से 31 प्रतिशत तक होता है।

पूर्व में बतायी गयी गोबर की खाद के अलावा प्रति हेक्टेयर 120 से 150 किलोग्राम नाइट्रोजन, 80 किलोग्राम फॉस्फोरस एवं 80 किलोग्राम पोटॉश की आवश्यकता होती है। नाइट्रोजन की आधी मात्रा एवं फॉस्फोरस एवं पोटॉश की पूरी मात्रा पंक्ति के दोनों तरफ कंद से 5 सेंटीमीटर दूर दस सेंटीमीटर गहराई में डालनी चाहिये। नाइट्रोजन की शेष आधी मात्रा दो बार खड़ी फसल में 35-45 दिन एवं द्वितीय बार 75 से 90 दिन बाद पंक्ति के बीच बुड़काव के रूप में करना चाहिये। बुड़काव के समय पर्याप्त नमी होनी आवश्यक है। मिट्टी, जलवायु, वर्षा की मात्रा एवं पलवार के अनुसार 15-20 दिन में एक बार सिंचाई की आवश्यकता होती है। प्रकंदों के जमाव एवं वृद्धि के लिये भूमि को नम रखना आवश्यक है। पलवार एवं दो तीन बार गुड़ाई से खरपतवार दूर रहते हैं और पौधों की वृद्धि अच्छी होती है। खुदाई 6-9 महीने बाद करनी चाहिये जब पत्तियाँ पीली पड़नी लगें। खुदाई के समय भूमि में पर्याप्त नमी होनी चाहिये जिससे प्रकंद अच्छी तरह निकल आयें। पत्तियाँ काटकर अलग कर देनी चाहिये। इनमें से बीजों के लिये प्रयुक्त होने वाले कंदों को अलग कर भंडारण कर लेते हैं। प्राथमिक एवं द्वितीयक कंदों को अलग कर लेने चाहिये और विधिपूर्वक उबालकर सुखकर विक्रय करने चाहिये। हल्दी की किस्म एवं बाग की उम्र एवं प्रकाश की उप्लब्धता के अनुसार 8 से 20 टन प्रति हेक्टेयर तक ताजे कंद की उपज प्राप्त की जा सकती है।

आम के बागों में गिनी घास (*पैनिकम मैक्सिमम*) की खेती

जो किसान भाई आम की बागवानी के साथ-साथ पशुपालन भी करते हैं वे अंतःफसल के रूप में गिनी घास भी उगा सकते हैं। इसके बीज या रूटेड स्लिप्स दोनों को ही बरसात की शुरुआत में ही आसानी से लगाया जा सकता है। खुले में लगाने पर लगभग 40000 स्लिप्स और अंतःफसल के रूप में लगाने पर 25000 से 30000 स्लिप्स की आवश्यकता होती है। लगाने में पौधे से पौधे और पंक्ति से पंक्ति की दूरी 50 × 50 सेंटीमीटर रखी जाती है। खाद एवं उर्वरक के लिये अंतःफसल के रूप में इसे लगाने पर 140 किलो ग्राम नाइट्रोजन, 50 किलो ग्राम फॉफोरस एवं 30 किलोग्राम पोटाश प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती है। कुल मात्रा से 70 किलोग्राम नाइट्रोजन, 50 किलोग्राम फॉस्फोरस एवं 30 किलोग्राम पोटाश घास लगाने के पहले खेत तैयार करते समय देते हैं। इसके बाद घास की हर कटाई के बाद 20 किलोग्राम/हेक्टेयर की दर से नाइट्रोजन की कुल 4 टॉप ड्रेसिंग करते हैं। सिंचाई मौसम के अनुसार 20 से 25 दिन में एक बार करनी चाहिये। पहली बार

कटाई के लिये घास 80-90 दिन में तैयार हो जाती है। **बाद में करीब 40-45 दिन के अंतराल पर घास की कटाई मिल जाती हैं।** आम के बागों में अंतःफसल के रूप में लगाने पर बरसात और गर्मी में इससे अच्छा चारा मिल जाता है। जाड़ों में बाग की उम्र एवं प्रकाश की उपलब्धता के अनुसार घास की कटिंग अपेक्षाकृत कम मिलती हैं। कुल मिलाकर हमें 4 से 6 कट या 30 से 50 टन/हेक्टेयर आसानी से हरा चारा प्राप्त हो जाता है।

आम की उत्पादकता वृद्धि हेतु छत्र प्रबंधन (सेंटर ओपेनिंग)

आम के मध्यम आयु वर्ग के बागों मे छत्र प्रबंधन या सेंटर ओपेनिंग से अभिप्राय है दिसंबर महीने में की जाने वाली काट-छांट जिसमें हम वृक्षों के छत्र के मध्य में स्थित एक, दो या अधिक से अधिक तीन शाखायें या उनके केन्द्र की तरफ छत्र भाग का विरलन कर इस प्रकार से निकालते हैं कि वृक्ष के छाये के मध्य में पर्याप्त रोशनी आ सके। साधारणतया 15 से 40 वर्ष के बाग इस कार्य के लिये उपयुक्त होते हैं क्योंकि ऐसे वृक्षों मे अधिकतर पत्तियाँ फूल एवं फलत अधिकतर बाह्य शाखाओं पर ही सीमित हो जाती है। साथ ही इस कार्य से 15-20 प्रतिशत तक वृक्षों की ऊँचाई में कमी आ जाती है जिससे रासायनिक छिड़काव, फलों की तुड़ाई आदि में मदद मिलती है। वृक्ष के अंदर तक प्रकाश की उपलब्धता से नये कल्ले आते हैं और फलों की गुणवत्ता बढ़ जाती है। छत्र में प्रकाश की उपलब्धता में 155.75 से 219 प्रतिशत तक वृद्धि होती है। सेंटर ओपेनिंग करने से छत्र में वायु का भी आवागमन बढ़ जाता है और कीट एवं बीमारियों के प्रकोप में कमी आती है।

कामायनी (चिंता)

हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर, बैठ शिला की शीतल छाँह,
एक पुरुष, भीगे नयनों से, देख रहा था प्रलय प्रवाह।

नीचे जल था ऊपर हिम था, एक तरल था एक सघन,
एक तत्व की ही प्रधानता, कहो उसे जड़ या चेतन।

दूर-दूर तक विस्तृत था हिम, स्तब्ध उसी के हृदय समान,
नीरवता-सी शिला-चरण से, टकराता फिरता पवमान।

तरूण तपस्वी-सा वह बैठा, साधन करता सुर-श्मशान,
नीचे प्रलय सिंधु लहरों का, होता था सकरूण अवसान।

–जयशंकर प्रसाद

आम आधारित कुक्कुट पालन कृषि प्रणाली : प्रतिदिन आय का स्रोत

राम अवध राम[1], सुभाष यादव[2] एवं मनीष मिश्रा[3]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

भारत में आम का उत्पादन 2.516 लाख हेक्टेयर में किया जाता है जिससे 18.48 लाख टन आम का उत्पादन होता है। पूरे विश्व में भारत का आम उत्पादन के क्षेत्र में प्रथम स्थान है। यहाँ पूरे विश्व के उत्पादन का 52 प्रतिशत आम का उत्पादन होता है। प्रति हेक्टेयर आम के उत्पादन में 30-40 हजार का प्रति वर्ष व्यय होता है जिससे औसतन 1-1.5 लाख रुपये तक की आय की प्राप्ति होती है। यह एक परिवार की सभी आवश्यकताओं की प्रतिपूर्ति के लिए पर्याप्त नहीं होता है। आम के उत्पादन को यदि घरेलू मुर्गी पालन के साथ एकीकृत किया जाये तो परिवार के वार्षिक आय एवं पोषण सुरक्षा में वृद्धि हो सकती है। भारत में मुर्गी पालन एक उद्योग का रूप धारण कर चुका है जिससे अंडे की वार्षिक उपलब्धता 1971 में 10 अंडे प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष से बढ़कर 61 हो चुकी है। भारतीय आर्युविज्ञान के मानदंडों को देखते हुए गांव के प्रत्येक परिवार की पोषण सुरक्षा एवं समुचित आय को प्राप्त करने के लिए घरेलू मुर्गी पालन से जोड़ना चाहिए। घरेलू मुर्गी पालन मे 5-20 मुर्गियों का छोटा समूह होता है जो घर के पीछे बीज एवं कीड़े मकोड़ों एवं पौधों की कोमल पत्तियों को खाकर विकसित होता है। मुर्गी पालन की इस पद्धति को कम-से-कम खर्च में छोटे, लघु, सीमांत एवं भूमिहीन किसान आसानी से अपना सकते हैं। केवल विपरीत परिस्थितियों में ही निम्न कोटि के अनाज खिलाने की आवश्यकता होती है। घरेलू मुर्गी पालन से अंडे एवं प्रोटीन युक्त आहार बिना किसी लागत के उपलब्ध हो सकता है। इन अंडों को परिवार के सदस्यों को खिलाकर कुपोषण से बचाया जा सकता है। अधिक संख्या में अंडे उपलब्ध होने पर उनको बाजार में बेचकर अतिरिक्त आय भी प्राप्त की जा सकती है। ग्रामीण परिवेश में पली मुर्गियों का अंडा स्वस्थ एवं जैविक आहार के रूप का एक अच्छा विकल्प होता है। यदि घरेलू मुर्गी पालन को आम के साथ जोड़ दिया जाय तो इसके निम्नलिखित लाभ हो सकते हैं।

1. आम के बाग में हानिकारक कीटों की संख्या में घनात्मक कमी आयेगी।
2. बाग की मृदा की पोषण क्षमता में वृद्धि होगी क्योंकि मुर्गी के विष्टा की खाद अधिक पोषण युक्त होती है।

चित्र 1: आम का बाग एवं घरेलू पालन हेतु उपयुक्त मुर्गी की जातियाँ।

आम आधारित मुर्गी पालन के लाभ

- ग्रामीण क्षेत्रों में प्रोटीन युक्त आहार एवं अंडे की उपलब्धता बिना किसी लागत के होती है जिससे प्रोटीन कुपोषण से निपटने में मदद मिलती है।
- इस पद्धति से उत्पन्न अंडों एवं प्रोटीन युक्त आहार में एक विशेष की सुगंध होती है जिससे व्यावसायिक अंडों एवं प्रोटीन युक्त उत्पादों से अधिक कीमत प्राप्त होती है।
- घरेलू मुर्गी पालन से नियमित आय प्राप्ति होती है जबकि आम से वर्ष में एक बार ही आय प्राप्त होती है।
- घरेलू मुर्गी पालन हेतु भूमि, फार्म एवं पूंजी की आवश्यकता नहीं होती है। आरंभ में मुर्गा एवं मुर्गी खरीदने में नाम मात्र की लागत आती है। तत्पश्चात उत्पादन का क्रम स्वयं चलता रहता है।
- लघु एवं सीमान्त कृषक जो पशुपालन नहीं कर सकते, मुर्गी पालन आसानी से कर सकते हैं।
- घरेलू मुर्गी पालन से पर्यावरण प्रदूषण भी कम होता है।

[1,3]प्रधान वैज्ञानिक एवं [2]शोध सहायक

- 15 मुर्गियों के समूह से मृदा में प्रतिदिन 1-1.25 किलोग्राम विष्टा खाद के रूप में प्राप्त होती है।
- इस पद्धति से उत्पन्न अंडों एवं प्रोटीन युक्त उत्पाद में कोलेस्ट्रॉल की मात्रा बहुत कम होती है। अतः इसका सेवन स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद होता है।
- घरेलू मुर्गी पालन से रोजगार भी सृजित होता है।

घरेलू मुर्गी पालन हेतु उपयुक्त जातियाँ

1. कारी हितकारी
2. कारी उपकारी
3. कारी देवन्द्र
4. कारी श्यामा
5. कड़क नाथ
6. कारी निर्भीक
7. वन राजा

आम आधारित मुर्गी पालन हेतु सावधानियाँ

- आम के वृक्षों के थालों में जुलाई-सितंबर तक निर्धारित खाद एवं उर्वरक का प्रयोग करना चाहिए।
- कीट एवं व्याधियों के प्रबंधन हेतु सुरक्षित रसायनों का प्रयोग करना चाहिए।
- बाग में सुबह एवं सायंकाल मुर्गियों के समूह को 2-3 घंटे विचरण हेतु छोड़ना चाहिए।
- समुचित अंडे एवं प्रोटीनयुक्त आहार उत्पादन हेतु शाम को प्रति मुर्गी 30-40 ग्राम आहार देना आवश्यक होता है।
- आम के बागों में कीटनाशक के छिड़काव के एक सप्ताह तक मुर्गियों को बाग में नहीं जाने देना चाहिए।
- घरेलू मुर्गियों के विश्राम एवं परभक्षियों से सुरक्षा हेतु 2 × 1 वर्ग मीटर का दड़वा 15-20 मुर्गियों के समूह के लिए पर्याप्त होता है।
- दड़वों में 3 इंच मोटी धान की भूसी बिछा देना चाहिए। जिससे प्रतिदिन सफाई के समय में बचत होती है।
- दड़वे के अन्दर एवं बाहर पीने के लिए 24 घंटे साफ पानी की व्यवस्था होनी चाहिए।
- प्रतिदिन दड़वों से अंडों को हटा देना चाहिए।
- आहार के रूप एजोला खिलाने से मुर्गियों का विकास तेजी से होता है।

घरेलू मुर्गियों में बीमारी के लक्षण एवं कारक

- पैरों का टेढ़ा होना - विटामिन की कमी
- अण्डे के छिलके का पतला होना - कैल्सियम, फास्फोरस एवं विटामिन डी की कमी
- डायरिया - संक्रमित आहार
- कलगी का नीला होना - पानी की कमी

घरेलू मुर्गी पालन के सफलता की कहानी

यह प्रयोग बाराबंकी एवं रायबरेली के हजारों कृषकों के साथ 2009-2013 तक सफलतापूर्वक किया गया। आरंभ में प्रति कृषक 250 मुर्गी के चूजे प्रति माह दिये गये एवं कृषकों से 5 प्रति रूपये चूजा मूल्य प्राप्त कर उन्हीं के नाम से बैंक में जमा किया गया जिससे परियोजना समापन के पश्चात कृषक बैंक से पैसे निकालकर चूजे खरीद कर मुर्गी पालन को जारी रख सकें। मुर्गियों को आहार के रूप में एजोला खिलाया गया जिससे 3 माह में मुर्गी एवं मुर्गों का वजन 1.5-2.0 किलोग्राम हो गया। परियोजना शुरू होने के तीन माह पश्चात प्रति कृषक 20-40,000 रूपये प्रति माह आय प्राप्त होने लगी। घरेलू मुर्गी पालन को अमरूद के बाग एवं केले के खेत से समन्वित कर कृषकों की आय 75,000 रूपये प्रति माह तक सफलतापूर्वक की जा सकी।

चित्र 2: घरेलू मुर्गी पालन की सफलता की कहानी

पराजीनी तकनीक से फल वृक्षों में सुधार

स्वाति कुमारी[1], सुभाष चंद्र यादव[2], मानसी राय शर्मा[3] एवं मनीष मिश्रा[4]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

भारत बागवानी के क्षेत्र में उदीयमान देश है। भारत विश्व का दूसरा सबसे बड़ा फल एवं सब्जी उत्पादक देश है। वर्तमान समय में पैदा होने वाले 150 मिलियन टन बागवानी के उत्पादन को वर्ष 2020 तक 360 मिलियन टन तक किये जाने के लक्ष्य पर सावधानीपूर्वक विचार करने के साथ-साथ बागवानी क्षेत्र में जैवप्रौद्योगिकी के अनेक साधनों की भी आवश्यकता होगी। भारत के उपोष्ण जलवायु क्षेत्रों में आम, पपीता, लीची, अमरूद, आँवला एवं बेल जैसे अनेक महत्वपूर्ण फलों के अलावा कुछ अतिशोषित फलों की भी सफलतापूर्वक पैदावार की जी रही है। किन्तु इन फलों की पैदावार संतोषजनक नहीं है।

इन फलों के प्रसारित करने वाले में गुणवत्तायुक्त रोपण सामग्री का अभाव, महत्त्वपूर्ण फसलों के जननद्रव्यों के विशेषीकरण एवं प्रलेखीकरण की कमी है तथा मुख्य कीट एवं व्याधियों से बचाव और तुड़ाई उपरान्त होने वाली क्षति कुछ बाधाएँ सामने आती हैं। महत्त्वपूर्ण फल जननद्रव्यों का आण्विक विशेषीकरण एवं आण्विक सहायक प्रजनन, विशेष फल किस्मों का जन गुणन सूक्ष्म प्रवर्धन के द्वारा और जैविक और अजैविक तनाव प्रतिरोधी पराजीनी फसलों का विकास जैव प्रौद्योगिकी द्वारा ही संभव है।

अन्य अनुसंधान विषयों की अपेक्षाकृत, जैव प्रौद्योगिकी शोध भा.कृ.अनु.प.-केंद्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ के लिए नया है। कुछ महत्त्वपूर्ण फल फसलों को कृत्रिम परिवेशीय पुनर्जनन के माध्यम से विकसित करने के प्रयास किये गये हैं। साथ ही डी.एन.ए. फिंगर प्रिंटिंग के द्वारा जननद्रव्यों के विशेषीकरण का भी प्रयास किया गया है। संस्थान रिंग स्पॉट एवं पर्ण कुंचन विषाणु प्रतिरोधी पराजीनी पपीता के विकास के क्षेत्र में कार्य कर रहा है। भविष्य में फल उत्पादन के क्षेत्र में तेजी से बढ़ने वाली समस्याओं का निवारण जैवप्रौद्योगिकी द्वारा किया जा सकता है।

पराजीनी फल

कृषि बायोटेक अनुप्रयागों के अधिग्रहण के लिए अंतर्राष्ट्रीय सेवा (आई.एस.ए.ए.ए.) के एक विवरण के अनुसार भारत विश्व के शीर्ष दस पराजीनी फसल उत्पादक देशों (50000 हेक्टेयर से अधिक) में से एक है। भारत के अतिरिक्त चीन, इंडोनेशिया, अर्जेंटाइना, ब्राज़ील, मेक्सिको एवं दक्षिण अफ्रीका जैसे अन्य विकासशील देशों में पराजीनी फसलों का व्यावसायीकरण हुआ है।

अब यह आभास हो रहा है कि आनुवांशिक आधार जिस पर परंपरागत आनुवांशिकी आधारित है या तो संकुचित हो रहा है या पारस्परिक बाधाओं के कारण उपलब्ध नहीं है। अतः वैकल्पिक रणनीतियों की खोज की आवश्यकता है जिससे फल और सब्ज़ियों की बढ़ती हुई माँगों को पूरा किया जा सके। हाल ही में रिकम्बींनन्ट डी.एन.ए. ने उद्यान शोध को नया आयाम प्रदान किया है।

पराजीनी फसलों की तकनीक ने फलों के विकास में वैश्विक स्तर पर अत्यंत रुचिकर है। हालांकि अमरीका के हवाई द्वारा निर्मित किया गया पराजीनी पपीता के अतिरिक्त किसी अन्य फल या सब्ज़ी का व्यावसायीकरण नहीं हो पाया है। बैंगन, टमाटर, पत्ता गोभी, फूल गोभी आदि पराजीनी सब्ज़ियों पर शोध किया जा रहा है। मोनसैंटो ने 4 वर्ष में पपीता रिंग स्पॉट विषाणु प्रतिरोधी पराजीनी पपीता विकसित करने की घोषणा की है।

कुछ व्यावसायिक फलों में विशिष्ट कारकों जैसे जैविक एवं अजैविक तनाव प्रतिरोधी, पोषण गुणवत्ता आदि के लिए आर-डी.एन.ए. तकनीक का उपयोग करने की आवश्यकता है। आनुवांशिक अभियंत्रिकी द्वारा डेल्टा-अंतःविष जीन को बेसिलस थ्यूरिंजेंसिस से फसलों में सफलतापूर्वक स्थानांतरित किया गया है। पराजीनी बैंगन एवं टमाटर लाइन का विकास एवं क्षेत्र परीक्षण भा.कृ.अनु.प. -भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नयी दिल्ली द्वारा किया जा चुका है जिसमें बहुक्षेत्रीय परीक्षण अभी प्रगति पर है। भा.कृ.अनु.प.-भारतीय सब्ज़ी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी भी समतुल्य कार्य में अग्रिम स्थिति में है। पिछले दो दशकों के शोध ने पौधों में तनाव के कारकों को आणविक जीवविज्ञान द्वारा समझने में सहायता की है। कई जीन एवं जीन उत्पादों को पहचानने की आवश्यकता है जो पौधों के विभिन्न तनाव जैसे सूखा, लवणता, कम एवं अधिक तापमान का अनावरण करने के लिए प्रेरित कर सके। हाल ही में, पराजीनी टमाटर पौधों में सूखा, ठंड एवं तनाव के प्रति प्रतिरोधकता पायी गयी जिसमें सीबी-1 जीन डाली गयी थी। टमाटर में अजैवकीय तनाव बढ़ाने के लिए ओस्मोटिन एवं क ड-ए जीन डाली जा सकती है। पहले उपज बढ़ाने के लिए परंपरागत

[1]पीएच.डी. अध्येता, [2]वरिष्ठ शोध अध्येता, [3]कनिष्ठ शोध सहायक एवं [4]प्रधान वैज्ञानिक

प्रजनन विधि का उपयोग होता था किन्तु फल एवं सब्ज़ियों में पोषक गुणवत्ता बढ़ाना संभव नहीं था। एक और क्षेत्र है जहाँ यह संभव नहीं था वह है तुड़ाई उपरांत प्रबंधन। फल एवं सब्ज़ियों में तुड़ाई उपरांत नुकसान लगभग 10-30 प्रतिशत पाया जाता है। भारतीय परिदृश्य में अमरांथस से निकाली गयी एमा-1 जीन का पौधों में आनुवांशिकीय स्थानांतरण एवं जीन की अभिव्यक्ति एक सफलता गाथा है। टमाटर एवं कुछ अन्य फलों में पराजीनी तकनीक द्वारा पकने के दर को धीमा किया जा रहा है ताकि इनकी भंडारण क्षमता बढ़ायी जा सके। भा.कृ.अनु.प.-केंद्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ में पपीते एवं अमरूद में सफलतापूर्वक जीन डाली गयी एवं इन जीनों की अभिव्यक्ति को पी.सी.आर. द्वारा मापा भी गया। पपीते में रिंग स्पॉट विषाणु व्याधि एवं अमरूद में उकठा रोग के नियंत्रण के लिए पराजीनी तकनीक पर शोध कार्य चल रहा है।

पराजीनी तकनीक में सबसे पहले एक जीन को पौधों, विषाणु, सूक्ष्मजीवों से निकालते हैं और फिर उसे पौधों में डालते हैं। इसके लिए जीन डालने की तकनीक एवं सूक्ष्म प्रवर्धन तकनीक का होना बेहद आवश्यक है। पौधों में जीन डालने के लिए या तो एग्रोबेक्टेरियम नामक जीवाणु का उपयोग करते हैं या फिर जीन गन के माध्यम से कण वर्षा करते हैं। माइक्रोइंजेक्शन, एलेक्ट्रोपोरेशन अथवा इन प्लांटा विधियों का प्रयोग कम ही किया जाता है। आमतौर पर, जैवकीय तनाव जैसे कीट, विषाणु, कवक एवं जीवाणु जनित बीमारियों के लिए अथवा अजैवकीय तनाव जैसे सूखा, ठंड, हिमीकरण, लवणता, ओजोन एवं सघन प्रकाश के प्रति प्रतिरोधकता के लिए पराजीनी तकनीक का उपयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त, फसल उत्पादन, गुणवत्ता एवं पोषकता सुधार में भी पराजीनी तकनीक का उपयोग किया जाता है।

विभिन्न फलों में पराजीनी तकनीक का वर्तमान परिदृश्य

सेब

एग्रोबेक्टेरियम ट्यूमेफेशियन्स के माध्यम से गस, एनपीटी-II, नोपालिन सिंथेज़ जीन से सेब में सफलतापूर्वक परिवर्तन किया जा चुका है। निम्नलिखित जीन का सेब में सुगमतापूर्वक एकीकरण पूरा किया जा चुका है।

- बेसिलस थ्यूरिंजेंसिस से क्राईए 1 को कीटों के लार्वा के विरूद्ध प्रतिरोध उत्पन्न करने के लिए।
- आईपीटी जीन, आईसीपी व्यक्त करने वाला साइटोकाइनिन जैव संश्लेषण मार्ग का पहला एंजाइम है।
- एएलएस (एसिटोलैक्टेट सिंथेज़ जीन) को खरपतवार नाशकों में प्रतिरोध उत्पन्न करने के लिए।

नाशपाती

नाशपाती में एनपीटी-II एवं गस जीन की सहायता से लगभग 42 प्रतिशत तक संरूपित एक्सप्लांट का परिवर्तित कलिकाओं में रूपांतरण किया गया। 'कांफ्रेंस', 'डोएवे डु कॉमिस' एवं 'पासे कृसाने' प्रजातियाँ सफलतापूर्वक परिवर्तित एवं दशानुकूलित की जा चुकी हैं। क्विन्स के मूलवृन्त बनाने में भी सफलता प्राप्त हुई है।

खुबानी

एग्रोबेक्टेरियम की मध्यस्ता के द्वारा पीपीवी-सीपी का खुबानी में रूपांतरण किया गया है जिसकी स्क्रीनिंग गैस अभिरंजन और पीसीआर की सहायता से की गयी।

चेरी

इटली में चेरी का परिवर्तन किया जा चुका है। विट्टोरिआ चेरी और 'कॉल्ट' मूलवृन्त के कायिक ऊतकों का पुनर्जनन, पराजीनी चेरी बनाने में उपयोग हुआ है। रूस के वैज्ञानिकों ने पराजीनी खट्टी चेरी में उच्च तीव्रता 50-60 प्रतिशत के साथ एनपीटी-II, और नोपालिन की उच्च गतिविधि को प्राप्त किया है।

आडू

एग्रोबेक्टेरियम ट्यूमेफेशियन्स के द्वारा आडू में रूपांतरण का प्रयोग प्रगति पर है। परिवर्तन कारकों के पुनर्जनन की बाधाओं को एग्रोबेक्टेरियम ट्यूमेफेशियन्स से तने के उत्तपरिवर्तकों का उपयोग कर दूर किया गया है, पी.सी.आर. और गैस की सहायता से मइक्रोप्रोजेक्टाइल मध्यस्ता परिवर्तन की पुष्टी की गयी है।

आलू बुखारा

आलू बुखारा में एग्रोबेक्टेरियम ट्यूमेफेशियन्स का प्रयोग कर सफलता पूर्वक एकीकरण एवं रचनात्मक अभिव्यक्ति स्थापित की जा चुकी है। एग्रोबेक्टेरियम से प्रूनस डोमेस्टिकस के पीपीवी विषाणु को कोट प्रोटीन जीन के साथ परिवर्तित किया गया है।

अखरोट

अखरोट में एग्रोबेक्टेरियम द्वारा कायिक भ्रूण परिवर्तन किया गया है। अखरोट के जीनोम में एनपीटी-II एवं क्राई ए-1 प्रोटीन के एकीकरण की पुष्टि साउथर्न ब्लॉट द्वारा की गयी है।

आम

आम के भ्रणों में एग्रोबेक्टेरियम संक्रमण द्वारा पराजीनी आम बनाया गया। गस जीन अभिव्यक्त करने वाले कैनामाईसीन प्रतिरोधी आम भ्रूण विकसित किये गए है परंतु गैर कार्यात्मक जड़ रचना के कारण इनका दशानुकूलन असफल रहा।

अंगूर

मुलिंस एवं सहयोगियों ने 1990 में पहले पराजीनी अंगूर का मूलवृन्त तैयार किया, जिसकी पुष्टि गस, एनपीटी-II एवं साउथर्न ब्लाट से की गयी। इसके बाद अंगूर में निम्नलिखित आनुवंशिक बदलाव सफलतापूर्वक किये गये।

जीसीएम विषाणु प्रतिरोधी अंगूर विकसित करने के लिए एग्रोबेक्टेरियम की सहायता से जीसीएमवी-सीपी जीन को अंगूर के जीनोम में सम्मिलित किया गया जिसकी पुष्टि एलाइजा एवं वेस्टर्न ब्लाट से की गयी।

एग्रोबेक्टेरियम ट्यूमेफेशियन्स द्वारा अंगूर में जीएफएलवी-सीपी जीन की सफलतापूर्वक एकीकरण एवं अभिव्यक्ति की गयी।

सिट्रस

सिट्रस में परिवर्तन पीईजी की सहायता से डायरेक्ट डी.एन.ए. स्थानांतरण द्वारा किया गया। वदएँ और सहयोगियों ने 1990 में एनपीटी-II अभिव्यक्त करने वाले जड़युक्त पराजीनी सिट्रस के पौधे बनाये। सीटीवी-सीपी जीन का सिट्रस में सफलतापूर्वक एकीकरण कर के पराजीनी पौधे तैयार किये जा चुके है। कोबायाशी एवं सहयोगियों ने 1196 में एचईजीएफ अभिव्यक्त करने वाले ट्राइफोलिएट आरेंज के पराजीनी पौधे बनाये। सिट्रस में किस्म आधारित पुनर्जनन एवं जीन स्थानांतरण की प्रक्रिया की आवश्यकता है।

अमरूद

अमरूद में परिवर्तन की प्रक्रिया के मानकीकरण के प्रयास किये जा रहे है। बिश्वास एवं सहयोगियों ने 2007 में पराजीनी तकनीक से अमरूद में ठंड सहनशीलता बढ़ाने की आवश्यकता जताई। केंद्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ में चंद्रा एवं सहयोगियों ने एग्रोबेक्टेरियम ट्यूमेफेशियन्स द्वारा अमरूद के प्ररोहों में आनुवांशिक परिवर्तन की तकनीक विकसित की। जीन गन से टंगस्टन माइक्रोप्रोजेक्टाइल कण वर्षा कर परिवर्तन की दक्षता को बढ़ाया गया।

पपीता

पपीते में पराजीनी शोध की शुरूआत पैंग एवं सैनफोर्ड ने 1988 में पत्ती में एग्रोबेक्टेरियम के संक्रमण द्वारा स्थायी परिवर्तित कैलाई बनाकर की। 1990 में फिच एवं सहयोगियों ने बायोलिस्टिक्स का प्रयोग कर पहला पराजीनी पपीते का पौधा तैयार किया। पीआरएसवी - सीपी जीन का इस्तेमाल कर के पपीता रिंग स्पॉट विषाणु प्रतिरोधी पराजीनी पौधे बनाये गए। कायिक भ्रूण एवं भ्रूणोद्‌भवी कैलस पर कण वर्षा द्वारा बार, गस एवं एनपीटी-II जीन अभिव्यक्त करने वाले पराजीनी पपीते के पौधे बनाये गए (काब्रेरा-पॉन्स एवं सहयोगी, 1995)। काब्रेरा-पॉन्स एवं सहयोगियों ने 1995 में एग्रोबेक्टेरियम राइज़ोजींस द्वारा आनुवांशिक परिवर्तन कर पराजीनी पपीते के पौधे बनाये। वर्तमान समय में केंद्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ में पपीता रिंग स्पॉट विषाणु एवं पर्ण कुंचन विषाणु प्रतिरोधी पराजीनी पपीते के पौधे बनाने का शोध किया जा रहा है।

जिस देश को अपनी भाषा और साहित्य के गौरव का अनुभव नहीं है, वह उन्नत नहीं हो सकता।

–डॉ. राजेंद्र प्रसाद

आम में दैहिक व्याधियाँ एवं प्रबंधन

शैलेन्द्र राजन[1], वी.के. सिंह[2], रमेश कुमार सिंह[3], प्रणव कुमार मिश्रा[4], कुमार आदित्य[5] एवं वैभव श्रीवास्तव[6]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

आम भारत का सर्वाधिक महत्वपूर्ण फल है। इसे फलों के राजा की संज्ञा भी दी गयी है। बहुत गुणों से संपन्न होते हुए भी आम अनेक रोगों एवं कीटों से संघर्ष करता रहता है। रोगों एवं कीटों के साथ-साथ बहुत सारी दैहिक व्याधियाँ भी इसमें विद्यमान होती है जो आम के फसल को नुकसान पहुँचाती हैं। इन बीमारियों एवं कीटों की समस्याओं के प्रबंधन हेतु बहुत सारे रोगनाशक एवं कीटनाशक उपलब्ध हैं परन्तु दैहिक व्याधियों का कुप्रभाव फलों पर होता रहा है। आम में व्याप्त दैहिक व्याधियों से तात्पर्य है वातावरण के प्रभाव से आम के पौधों एवं फलों में होने वाला नुकसान जिनका ध्यान किसान समय रहते नहीं दे पाता है। आम की प्रमुख दैहिक व्याधियाँ का प्रबंधन निम्नानुसार किया जा सकता है।

1. फलों का फटना

फलों का फटना मिट्टी में नमी एवं वातावरण की आर्द्रता में उतार-चढ़ाव के कारण होता है। इसमें आम के फलों में दरारें आ जाती हैं। कभी-कभी फल फटकर फैल जाते हैं और इसके अंदर से तरल पदार्थ बाहर आ जाते हैं तथा फटा हुआ भाग भूरे रंग का होकर सूख जाता है। इनके प्रबंधन के लिये ध्यान रखें कि जब फलों का विकास हो रहा हो तब हमें समय-समय पर सिंचाई के प्रबंध एवं मिट्टी में नमी बनी रहे इसका ध्यान देना चाहिए।

2. जेली सीड (गूदा गलन)

यह दैहिक व्याधि कुछ अन्य दैहिक व्याधियाँ जैसे स्पंजी ऊतक, आन्तरिक ऊतक क्षय की तरह ही होते हैं जिसे पहचानना थोड़ा कठिन होता है। इसमें आम के फल के बीज के पास का गूदा शेष फल के पकने के पूर्व ही अत्यधिक पककर फैल जाता है जिससे फल के स्वाद एवं सुगंध का क्षय हो जाता है। यह उन्हीं प्रजातियों में अत्यधिक होता है जो उसके लिए सहिष्णु हो। अतः इसके प्रबंधन हेतु इन प्रजातियों को उस क्षेत्र में न लगाये जहाँ इस व्याधि का प्रभाव अधिक हो। टॉमी एटकिन, जील, सेन्सेशन आदि प्रजातियाँ इसके लिए सहिष्णु होती हैं।

3. सूजन आना

अत्यधिक नमी, आर्द्रता, अधिक वर्षा, आवश्यकता से अधिक सिंचाई तथा खराब पोषक तत्व की वजह से इस दैहिक विकार का जन्म होता है। इसमें पत्तियों के पृष्ठ भाग पर लगभग 1-3 मिलीमीटर के क्षेत्र में पानी सोखने की वजह से सूजन आ जाती है और कुछ समय के बाद उतना भाग भूरा एवं काला हो जाता है। इससे बचने का एक ही उपाय है कि बगीचों में आवश्यकता से अधिक जल संचय से बचें तथा जरूरत पड़ने पर ही सिंचाई करें।

4. रंध्रों का बड़ा होकर बाहर की ओर उभरना

ये फल के ऊपर होने वाले छोटे-छोटे रंध्र होते हैं जो थोड़े उभरे हुए तथा काले रंग के स्पष्ट दिखायी देते हैं। प्रायः ये कच्चे फलों में ही आ जाते हैं। परन्तु फलों के पकने के उपरान्त जब फलों का रंग पीला हो जाता है तब ये स्पष्ट रूप से दिखायी देने लगते हैं। इसके रंध्र प्रथम चरण के कैब नामक बीमारी जैसे ही दिखते हैं। इसके प्रभाव से बचने के लिए हमें आम के फलों को अधिक समय तक पानी में डुबोकर नहीं रखना चाहिए और न ही आवश्यकता से अधिक डिटरजेंट का प्रयोग करना चाहिए।

5. घनी नलिकायें बनना

रेजीन कैनाल में फल के छिलके पर बहुत सारे छोटे-छोटे काले धब्बे आ जाते हैं। ये दिखने में मृत कोशिकाओं की तरह होते हैं तथा फल के छिलके हटाने पर गूदे में बहुत सारी काले धागे की तरह संरचना दिखायी पड़ती है। इसके लक्षण जब आम का मौसम समाप्त होने को आता है तभी दिखायी देते हैं। इस व्याधि की वजह से फलों को अत्यधिक नुकसान पहुँचता है और फल भी खाने योग्य नहीं रह जाते हैं। इससे बचाव हेतु फल की तुड़ाई समय से ही की जानी चाहिए।

6. अंत तना गुहा

जेली सीड्स की ही भांति अंत तना गुहा के प्रकोप में भी गूदा पिघला हुआ दिखायी देता है। परन्तु इसमें फल के ऊपरी भाग में डंठल के पास एक गहरा भूरा एवं काले रंग का घेरा बन जाता है। उसी क्षेत्र में फल के गूदे में भी धागे की तरह संरचना लिये हुए सूख जाता है और प्रायः इसकी वजह से फल समय से पूर्व ही पकने के समान हो जाता है तथा तरल पदार्थों का संवहन भी बाधित होता है जिसके कारण थोड़ा भी हवा चलने पर ये गिर जाते हैं। यह दैहिक व्याधि कुछ प्रजातियों की पत्तियों में अधिक नाइट्रोजन के संचयन, कैल्सियम की कमी तथा नम जलवायु के कारण होती है। इस व्याधि

[1]निदेशक, [2]प्रधान वैज्ञानिक, [3,4,5]शोध सहायक, [6]परियोजना सहायक

से बचने का सबसे अच्छा उपाय है कि फलों को पूर्णरूप से पकने के पूर्व ही तोड़ लेनी चाहिए और इससे प्रभावित फलों को छाँटकर अलग कर देना चाहिए। केनसिंगटन नामक प्रजाति इस व्याधि के लिए सहिष्णु है।

7. धूप ताम्रता

फलों का धूप में जलने का सबसे बड़ा कारण है पौधों की आवश्यकता से अधिक छँटाई कर देना जिससे तेज धूप का सीधा प्रभाव निरंतर टहनियों, पत्तों एवं फलों के ऊपर पड़ता है जिसके कारण पत्तियों एवं शाखाओं पर थोड़े सूजन जैसे लक्षण दिखायी देते हैं तथा फल का जो भाग सूर्य की तरफ पड़ता है, उसका रंग काला एवं जलने के समान बदरंग हो जाता है। फलों के बदरंग होने से कीटों एवं कवकों संबंधी कारकों का प्रकोप भी बढ़ जाता है जिससे फल सड़कर गिर जाते हैं। इसके प्रबंधन हेतु हमें निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए - पौधों की छँटाई सही समय तथा सही तरीके से होनी चाहिए, सूक्ष्म पोषक तत्वों एवं सिंचाई प्रबंध का ध्यान होना चाहिए यदि अधिक छँटाई की आवश्यकता हो तो छँटाई के बाद मिट्टी या सफेद रंग से संबंधित पदार्थों का पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। आम के पौधों का रोपण पूर्व-पश्चिम दिशा की तरफ से होनी चाहिए।

8. आम की गुम्मा रोग

आम में गुम्मा रोग जैविक एवं अजैविक दोनों की श्रेणी में आता है अर्थात यह दैहिक व्याधि के साथ-साथ एक रोग भी है जिससे आम के फलत में काफी प्रभाव पड़ता है। यह दो प्रकार का होता है–वानस्पतिक एवं पुष्पीय। वानस्पतिक गुम्मा अधिकतर छोटे पौधों में पौध घर में ही हो जाते हैं। इसमें पौधों का तना थोड़ा सूजकर मोटा हो जाता है तथा पत्तियाँ भी छोटी एवं पतली होकर गुच्छे में बदल जाती हैं जिससे पौधों का शिखर भाग सूखकर गिर जाती हैं। पुष्पीय गुम्मा में बौर की कलियाँ छोटी होने की वजह ये बौर नपुंसक फूलों का एक गुच्छा बन जाता है। इसमें कभी-कभी आम के बौर लंबे और कम घने हो जाते है तथा बौर अधिक भारी तथा गुच्छों में परिवर्तित हो जाते हैं जिनमें फल नहीं लगते। आम में गुम्मा की वजह से कीट (*एकेरिया मैग्निफेरा*) और कवक (*फ्यूजेरियम मोनिलीफार्मी*) का प्रकोप भी बढ़ जाता है। इनका प्रकोप तब बढ़ता है जब अधिकतम तापमान (21-27 डिग्री सेंटीग्रेड) तथा न्यूनतम तापमान (8 डिग्री सेंटीग्रेड) के साथ आर्द्रता 85 प्रतिशत होती है। इसके प्रबंधन हेतु प्रभावित तने, पत्तियों एवं फलों को शुरूआत में ही काट कर अलग कर देते हैं तथा समय-समय पर नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटॉश, जिंक और बोरॉन जैसे पोषक तत्वों का प्रयोग करते रहने से भी इसका प्रभाव कम हो जाता है। पुष्पीय गुम्मा से बचने के लिये कुछ फिनालिक तत्व जैसे-कैटकॉल, साइनैमिक एसिड, टैनिक एसिड आदि का छिड़काव अक्टूबर के प्रथम सप्ताह में ही कर देनी चाहिए तथा एन.ए.ए. (नेप्थालिन एसिटिक एसिड) 200 पी. पी. एम. का प्लैनोफिक्स के साथ अक्टूबर एवं जनवरी-फरवरी में छिड़काव करना चाहिए।

9. अनियमित फलन या द्विवर्षीय फलन

आम की फसल में यह एक गंभीर समस्या है। प्रायः देखा गया है कि प्रथम वर्ष के दौरान आम में अधिक फलत रहती है तथा उसके तुरंत बाद के वर्ष में फलों की संख्या कम हो जाती है। आमतौर पर जब आम के पेड़ों में फल लगे होते हैं तो नन्हीं कलियाँ नहीं निकलती परन्तु तुड़ाई उपरान्त बहुत सारी नयी पत्तियाँ एवं कलिकायें निकलती हैं और आने वाले वर्ष में पुष्प नहीं निकलते क्योंकि उस दौरान वानस्पतिक वृद्धि और नयी कलिका का जन्म होता है। वातावरणीय कारकों के अलावा आम के पौधों में कार्बोहाइड्रेट एवं नाइट्रोजन का अनुपात तथा हार्मोन्स की अनियमितता भी इसके प्रमुख कारण हैं। उत्तर भारत की दशहरी, लंगड़ा, चौसा इत्यादि बहुत सारी महत्वपूर्ण प्रजातियाँ इस व्याधि से प्रभावित हैं। इसके प्रबंधन हेतु सितंबर में पैक्लोब्यूट्राजॉल का (पी. पी. 333)/4 ग्राम प्रति पौध के हिसाब से छिड़काव करने से वानस्पतिक वृद्धि एवं नये पुष्प जल्दी से आ जाते हैं। तुड़ाई के उपरान्त पौधे की छँटाई कर देने से भी वानस्पतिक एवं प्रजनन विकास के बीच संतुलन बना रहता है। स्मजिंग भी इसका एक कारण है जो घरों एवं कारखानों से निकलने वाले धुएँ से होता है। इस कारण बेमौसम फूल आ जाते हैं इसके लिए हमें ईथरल को प्रयोग में लाना चाहिए। प्रवर्धन तकनीक द्वारा पुराने पौधों का जीर्णोद्धार भी अनियमित फलन को नियमित में परिवर्तित कर सकते हैं।

10. फलों का कम लगना एवं गिरना

फलों के कम लगने एवं गिरने के प्रमुख कारण हैं अच्छे परागण का न होना, गर्भाशय की ग्राह्यता कम होना, सम्पूर्ण पुष्प का खराब हो जाना, परागकण का नियमित स्थानांतरण न हो पाना, स्वअनिषेच्यता (*सेल्फ इनकम्पैटिबिलिटी*) तथा पोषण की कमी होने से भी फल गिरते हैं। फलों के आने के समय या उनके

विकास के समय सूखे का असर एवं नियमित सिंचाई का नहीं होना भी फलों के न लगने के कारण हैं जबकि तेज हवा एवं ओलावृष्टि, बीमारियों (चूर्णी फफूँद तथा एन्थ्रेक्नोज) का अधिक असर तथा कीटों का प्रकोप (भुनगा एवं गुजिया) भी फलों के गिरने का कारण बनते हैं। इसके प्रभाव से मुक्ति पाने के लिए फल लगने एवं विकास के समय नियमित सिंचाई, विकास नियंत्रक हार्मोन्स (2, 4-डी. एवं जी. ए. 3) का छिड़काव, एन.ए. ए. 200 पी. पी. एम. का छिड़काव करने से उभयलिंगी पुष्पन की अधिकता होती है और फलों के उत्पादन में भी वृद्धि होती है। उचित समय पर कीटों एवं रोगों का प्रबंधन भी करना चाहिए।

12. आम का काला सिरा या कोएलिया रोग

इससे ग्रस्त फलों का अग्रभाग काला एवं कठोर हो जाता है तथा ऊपरी हिस्सा पीला पड़ जाता है। प्रभावित फलों की वृद्धि रूक जाती है तथा एथिलीन गैस के कारण ऊतक कोमल होकर पकने से लगते हैं। फल अर्ध पका हुआ ही परिपक्व हो जाता है और तत्पश्चात अंतः भाग गहरा भूरा हो जाता है तथा एक भूरे रंग का गोंद की तरह तरल पदार्थ बूँद-बूँद कर बाहर आता है। परिणाम-स्वरूप फल गिर जाते हैं। ये रोग ईंट के भट्ठों की चिमनियों से निकलने वाले धुएँ एवं कुछ गैसें जैसे - कार्बन डाईऑक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड, सल्फर डाईऑक्साइड और एथिलिन के कारण होते हैं। दशहरी प्रजाति में इसका असर अधिक पाया जाता है। हवा के रुख के अनुसार दो किलोमीटर तक फल के प्रभावित होने की संभावना रहती है। इसके नियंत्रण हेतु सबसे अच्छा उपाय यह है कि ईंट भट्ठों को आम के बाग से 2 किलोमीटर या उससे अधिक दूर रखना चाहिए। चिमनियों की ऊँचाई 80 फुट से अधिक रखने तथा मध्य मई तक ईंट भट्ठा न चलने से इसके प्रभाव को कम कर सकते हैं। फूल आने से पहले, फूल आने के समय एवं फल लगने के समय बोरेक्स (0.6 प्रतिशत) एवं कास्टिक सोडा (0.8 प्रतिशत) का छिड़काव करना चाहिए। इसका लक्षण दिखायी देते ही बिना विलम्ब किये बोरेक्स का 10 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से घोल का छिड़काव करना चाहिए।

12. स्पंजी ऊतक

आम के गूदे में थोड़ा खट्टापन लिये हुए थोड़ा सूखे हुए स्पंज की तरह संरचना दिखायी देती है जो खाने योग्य भी नहीं होती, इसे ही स्पंजी ऊतक कहते हैं। सामान्यतः अच्छे फलों के कटने पर भी ये स्पंजी जैसी संरचना गूदों में दिख जाती है। इसकी वजह से फल अच्छे से पक भी नहीं पाते और उनसे एक अजीब सी दुर्गन्ध आती है। इसका प्रकोप बढ़ने का कारण तापमान का अधिक होना, फल को पकाने वाले एन्जाइम की निष्क्रियता, नाइट्रोजन की अधिकता, कैल्सियम की कमी होना, मिट्टी का तापमान अधिक होना तथा फल तुड़ाई उपरान्त तेज धूप का लगना है।

जहाँ अल्फांसों, ओलूर तथा तोतापुरी जैसी प्रजातियाँ इस रोग के लिए सहिष्णु है वहीं अर्का पुनीत प्रजाति इसके लिए रोग रोधी भी होता है। इससे बचाव हेतु फलों का तीन-चौथाई परिपक्व अवस्था में तुड़ाई कर देनी चाहिए। कैल्सियम युक्त रासायनिक खाद जैसे कैल्सियम अमोनियम नाइट्रेट का छिड़काव करना चाहिए तथा तापमान नियंत्रण हेतु मल्चिंग का प्रयोग करना चाहिए।

13. आम के फलों का गुच्छन या झुमका

झुमका रोग प्रायः पर्याप्त परागण करने वाले कीटों की अनुपस्थिति के साथ-साथ पुष्पीकरण के वक्त कीटनाशक का अनियमित छिड़काव, कृत्रिम पायरेथ्रोइड्स का छिड़काव एवं पुष्पन के समय अच्छे मौसम का न होने के कारण होता है। इसके फल एक गुच्छे में बौर के शीर्ष छोर पर 2-3 सप्ताह तक बढ़ते रहते हैं। इस तरह के फलों का आकार सिर्फ मटर के दाने या उससे थोड़े बड़े या टिकोरा की स्थिति में होते हैं तभी से उनका विकास रूक जाता है तथा फल लगने के महीने भर बाद ही गिर जाते हैं। इसके निदान हेतु सर्वप्रथम हमें ध्यान देना होगा कि पुष्पन के समय किसी भी कीटनाशक का छिड़काव करने से बचें। पुराने बागों में कुछ शाखाओं में परागित किस्मों का शिखर रोपण करना चाहिए। सबसे आवश्यक उपाय यह है कि पुष्पन के समय परागण को बढ़ाने हेतु बगीचे में मधुमक्खियों के छत्तों को बढ़ाते है या तो मधुमक्खी पालन बाक्स को प्रयोग में लाते हैं।

14. पत्तियों का झुलसना

प्रभावित वृक्षों की पत्तियों के शीर्ष एवं किनारों पर लाल ईंट के रंग के धब्बे दिखायी देते हैं इससे लगता है कि पत्तियाँ झुलस गयी हैं। इसमें पत्तियाँ गिर जाती हैं जिससे पौधों का विकास भी बाधित होता है और उपज भी कम हो जाती है। नयी पत्तियाँ इसके प्रकोप से दूर रहती हैं। इसका अधिक प्रभाव शीत ऋतु में होता है। यह रोग सामान्यतः मिट्टी में पोटैशियम की कमी एवं क्लोराइड की अधिकता के कारण होता है जिससे दूर से ही पेड़ों पर इसका प्रभाव दिखायी देता है। इसका प्रकोप वहीं अधिक होता है जहाँ क्षारीय मिट्टी हो, खारे पानी से सिंचाई होती हो या मिट्टी में पोटॉश की कमी को दूर करने के लिए पोटॉश उर्वरक का प्रयोग होता हो। इसके निवारण हेतु पुराने गिरे हुए पत्तों को इकट्ठा कर जला देना

चाहिए। क्लोराइड बाहुल्य भूमि में आम के बाग नहीं लगाना चाहिए। खारा पानी, जिसमें क्लोराइड की बहुलता हो, सिंचाई हेतु प्रयोग नहीं करना चाहिए। पोटैशियम क्लोराइड की जगह 5 प्रतिशत पोटैशियम सल्फेट का छिड़काव उसी समय करें जब पौधों पर नयी पत्तियाँ आ रही हों। कभी-कभी 0.1 प्रतिशत मेलाथिऑन का छिड़काव भी प्रभावी होता है।

15. फलों का आंतरिक ऊतक क्षय

फलों का आंतरिक ऊतक क्षय सामान्यतः बोरॉन की कमी से होता है। इसका प्रकोप हल्की बलुई मिट्टी में रोपित किये जाने वाले बागों में विशेष रूप से होता है। इसमें फलों का निचला भाग गहरे भूरे रंग का दिखने लगता है। इसका प्रकोप जब अधिक हो जाता है तो फल का पूरा निचला हिस्सा काला होकर सड़ने लगता है तथा फल लंबवत रूप से फट जाता है जिससे अन्दर तक बीज दिखायी देने लगता है। इस दैहिक व्याधि का प्रकोप आम की दशहरी, बॉम्बे ग्रीन तथा चौसा किस्मों में अधिक दिखायी देता है परन्तु लंगड़ा किस्म में इसका प्रभाव कम देखा गया है। इसके निवारण हेतु बोरॉन का छिड़काव अनिवार्य है। अक्टूबर के माह में पुष्पन के समय ही बोरेक्स 500 ग्राम प्रति पेड़ के हिसाब से डालते हैं। इसके बाद 1 प्रतिशत बोरेक्स फल आने के समय देते हैं। 10-15 दिन के अंतराल पर बोरैक्स का 2 या 3 छिड़काव कर देने मात्र से भी इसका प्रकोप कम किया जा सकता है।

पतंजलि

पतंजलि अत्यन्त विरल व्यक्ति हैं। वे प्रबुद्ध है बुद्ध, कृष्ण और जीसस की भांति; महावीर, मोहम्मद और जरथुस्त्र की भांति, लेकिन एक ढंग से अलग है। बुद्ध, महावीर, मोहम्मद, जरथुस्त्र - इनमें से किसी की दृष्टिकोण वैज्ञानिक नहीं हैं। वे महान धर्म प्रर्वतक हैं, उन्होंने मानव-मन और उनकी संरचना को बिलकुल बदल दिया, लेकिन उनकी पहुँच वैज्ञानिक नहीं हैं।

पंतजलि बुद्ध-पुरूषों की दुनिया के आइंस्टीन हैं। वे अद्‌भुद घटना हैं।

पंतजलि सबसे बड़े वैज्ञानिक हैं, अंतर्जगत के। उनकी पहुँच एक वैज्ञानिक मन की है। वे कोई कवि नहीं हैं। और इस ढंग से वे बहुत विरले हैं, क्योंकि जो लोग अंतर्जगत मे प्रवेश करते हैं वे प्रायः कवि ही होते हैं सदा। जो बहिर्जगत मे प्रवेश करते हैं, अक्सर हमेशा वैज्ञानिक होते हैं।

पंतजलि एक दुर्लभ पुष्प है। उनके पास वैज्ञानिक मस्तिष्क हैं, लेकिन उनकी यात्रा भीतरी है। इसलिए वे पहले और अन्तिम वचन बन गये। वे ही आरम्भ हैं और वे ही अन्त हैं। पांच हजार वर्षो में कोई उनसे जादा उन्नत नहीं हो सका। लगता है उनसे जादा उन्नत हुआ ही नहीं जा सकता। वे अन्तिम वचन ही रहेंगे। क्योंकी यह यह जोड़ असम्भव है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखना और आन्तरिक जगत में प्रवेश करना करीब-करीब असम्भव सम्भावना है। वे एक गणितज्ञ, एक तर्क शास्त्रज्ञ की भांति बात करते हैं और वे हैं हेराक्लतु जैसे रहस्यश्दर्शी।

उनके एक-एक शब्द को समझने की कोशिश करो। यह कठिन होगा। यह कठिन होगा, क्योंकि उनकी शब्दावली तर्क की, विवेचन की है; पर उनको संकेत प्रेम की ओर मस्ती की ओर, परमात्मा की ओर है। उनकी शब्दावली उस व्यक्ति की है, जो वैज्ञानिक प्रयोगशाला मे काम करता है, लेकिन उनकी प्रयोगशाला आंतरिक अस्तित्व की है। अतः उनकी शब्दावली द्वारा भ्रमित न हो और यह अनुभूति बनाये रखो कि वे परमकाव्य के गणितज्ञ है। वे स्वयं एक विरोधाभास है, लेकिन वे विरोधाभासी भाषा हरगिज प्रयुक्त नहीं करते। कर नहीं सकते। वे बड़ी मजबूत तर्कसंगत पृष्ठभूमि बनाए रखते हैं। वे विश्लेषण करते, पर उनका उद्देश्य संश्लेषण हैं। वे केवल संश्लेषण करने को ही विश्लेषण करते हैं।

तो हमेशा ध्यान रखना कि ध्येय तो है परम सत्य तक पहुंचना; केवल मार्ग ही है वैज्ञानिक। इसलिए मार्ग द्वारा दिग्भ्रमित मत होना।

इसलिए पतंजलि ने पश्चिमी मन को बहुत ज्यादा प्रभावित किया है। पंतजलि सदैव एक प्रभाव बने रहें, क्योंकी तुम उन्हें आसानी से समझ सकते हो। लेकिन उन्हे समझना ही पर्याप्त नही है।

वे बुद्धि से बाते करते है, पर उनका उद्देश्य, उनका लक्ष्य हृदय ही है। वे चाहते हैं कि तुम तर्क के द्वारा तर्क के पार चले जाओ।

-ओशो, पतंजलि योग-सूत्र

अमरूद में एकीकृत नाशीकीट प्रबंधन

गुंडप्पा[1] एवं पी.के. शुक्ल[2]

भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

अमरूद एक उच्च गुणवत्ता वाला फल है जो प्रत्येक मौसम तथा हर प्रकार की मृदा में सफलतापूर्वक उगने की क्षमता तथा उच्च विटामिन सी की उपलब्धता के कारण श्रेष्ठ माना जाता है। अमरूद की बागवानी से कम लागत में अधिक लाभ प्राप्त होता है। भारत में अमरूद की बागवानी लगभग 204.8 हजार हेक्टेयर भूमि पर की जा रही है जिससे लगभग 24623 लाख टन उत्पादन प्राप्त होता है। अस्सी से अधिक प्रजातियों के कीटों और माइट के प्रकोप के कारण इसकी उत्पादकता में कमी हो जाती है। अमरूद के प्रमुख कीट निम्नलिखित हैं।

फल मक्खी (*बैक्ट्रोसेरा* प्रजातियाँ)

अमरूद में फल मक्खी सबसे अधिक हानिकारक कीट है। वर्षा ऋतु के मौसम में यह अत्यन्त ही हानिकारक हो जाती है। कई प्रकार की फल मक्खियाँ अमरूद के फल को हानि पहुँचाती हैं। ये हैं *बैक्ट्रोसेरा कोरेक्टा, बैक्ट्रोसेरा डारसैलिस* एवं *बैक्ट्रोसेरा जोनेटा*। ये बहुभक्षी नाशीकीट (फल मक्खी) सम्पूर्ण देश में व्यापक तौर पर देखी जाती हैं और कई प्रकार के फलों पर पलती हैं। फल मक्खी आर्थिक रूप से बहुत महत्वपूर्ण हैं। अंडे पकते फलों में दिये जाते हैं और मैगट गूदे को खाते हैं। प्यूपा जमीन के अन्दर बनता है। उत्तरी भारत में, आम की फसल की तुड़ाई के बाद ये फल मक्खियाँ अमरूद में लगती हैं और इनकी संख्या जुलाई-अगस्त में सबसे अधिक होती है। इसके बाद इनकी संख्या घटती है और मैगट शीत ऋतु में सुसुप्तावस्था में चली जाती हैं।

प्रकोप के लक्षण

अंडे देने के कारण अमरूद के फलों पर हुई क्षति को बहुत छोटे गड्ढों के रूप में देखा जा सकता है। ग्रस्त स्थान पर फल मुलायम पड़ जाते हैं। प्रभावित फल सड़ने लगते हैं तथा पकने से पहले ही गिर जाते हैं। अण्डे दिये जाने के कारण बने छिद्रों द्वारा फलों पर कई रोग कारकों का संक्रमण हो जाता है।

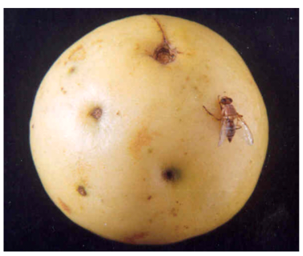

प्रबंधन

- इस नाशीजीव के प्रकोप को आगे बढ़ने से रोकने के लिये ग्रस्त फलों को फल मक्खी के मैगट सहित एकत्र कर नष्ट कर देना चाहिए।
- पेड़ के थालों की गुड़ाई से सुसुप्तावस्था में गये प्यूपा ऊपर आ जाते हैं एवं प्राकृतिक शत्रुओं द्वारा नष्ट कर दिये जाते हैं। इस प्रकार इन नाशीजीवों की संख्या को रोकने में सहायता मिलती है।
- बागों में प्लाईवुड के टुकड़ों (5×5 सेंटीमीटर) को अल्कोहल, मिथाइल यूजीनॉल एवं मेलाथियान (6×4×1) के अनुपात के घोल में दो दिन तक डुबोकर 10 ट्रेप/हेक्टेयर की दर से पेड़ों पर लटकाने से नर मक्खियाँ आकर्षित होकर मर जाती हैं।

छाल भक्षी कीट (*इन्डरबेला टेट्राओनिस* एवं *इ. क्वाड्रीनोटेटा*)

यह नाशीजीव मुख्य तना और शाखाओं में छेद कर छाल को खाता है। यह कीट देशव्यापी है और बहुत से फलों, फूलों एवं वन वृक्षों को क्षति पहुँचाता है। सामान्यतः यह अमरूद के बागों में पाया जाता है। यह नाशी कीट सामान्य तौर पर उन बागों में अधिक पाया जाता है जो उपेक्षित होते हैं और जिनकी ठीक से देखभाल नहीं की जाती है। इस कीट का प्रकोप अप्रैल महीने से माथ (उवजी) निकलने के साथ प्रारम्भ होता है। इसके गिडार प्ररोहों, शाखाओं एवं मुख्य तने में छेद करते हैं। ये दिन में इन आवासीय छिद्रों में रहते हैं तथा रात को बाहर आकर छाल को खाते हैं। प्यूपा मुख्य तने में रहता है। इसके अधिक प्रकोप होने पर पेड़ों की वृद्धि रुक जाती है एवं पुष्पन और फलत प्रभावित होती है।

प्रकोप के लक्षण

इसके प्रकोप की पहचान गिडार द्वारा प्ररोहों, शाखाओं एवं तनों पर बनायी गयी अनियमित सुरंगों से होती है जो रेशमी जालों, जिसमें चबायी हुई छाल के टुकड़े और इनके मल सम्मिलित होते हैं। इनके आवासी छिद्र विशेष कर प्ररोहों एवं शाखाओं के जोड़ पर देखे जा सकते हैं। नये प्ररोह सूख कर मर जाते हैं जिससे पेड़ बीमार सा दिखता है।

[1]वैज्ञानिक एवं [2]वरिष्ठ वैज्ञानिक

प्रबंधन

- इस नाशीकीट के प्रकोप को रोकने के लिए बाग को साफ-सुथरा और स्वस्थ रखना चाहिए।
- समय-समय पर बाग में जा कर नये, सूखे प्ररोहों की जांच करनी चाहिए जिससे शीघ्र ही इस कीट के प्रकोप का पता लग जाये।
- प्रकोप के शुरूआत में ही आवासी छिद्रों को साफ कर उनमें तार डाल कर गिडार को नष्ट कर देना चाहिए।
- अधिक प्रकोप होने पर सुरंगों एवं आवासीय छिद्रों को साफ कर रूई के फाये को 0.25 से 0.5 प्रतिशत डाईक्लोरवास के घोल में भिंगो कर छिद्रों में रख कर, गीली मिट्टी से बन्द कर देना चाहिए ।
- इसके गिडार *बिवेरिया बैसियाना* नामक जैविक नियन्त्रण फफूँद से प्राकृतिक रूप से ग्रसित हो कर मर जाते हैं। अतः इसके जैविक नियन्त्रण हेतु *बिवेरिया बैसियाना* का तनों पर छिड़काव करना चाहिए।

फल भेदक अनार तितली (*ड्यूडोरिक्स* (विइरेकोला) *आइसोक्रेट्स*)

अनार तितली (*ड्यूडोरिक्स आइसोक्रेट्स*) अनार का प्रमुख नाशीकीट है। हाल ही में इस कीट का प्रकोप उत्तर प्रदेश में अमरूद की पैदावार वाले क्षेत्रों और उत्तर भारत और दूसरे स्थानों में बढ़ता हुआ पाया गया है। इस नाशीकीट का प्रकोप अमरूद में बरसाती और शीत ऋतु के फसलों में होता है। बैंगनी-भूरी सी मादा तितली, एक-एक कर चमकदार, सफेद अण्डे फूलों के कैलिक्स और फलों पर देती है। गिडार फल को भेदते हैं और गूदे एवं बीज को खाकर इसे अन्दर से खोखला कर देते हैं।

यह मजबूत शरीर वाले चपटे, छोटे बालों से ढके हुए लगभग 2 सेंटीमीटर तक लम्बे होते हैं। पूर्ण विकसित गिडार बाहर आकर बाहरी छेद के पास या अन्दर ही प्यूपा में परिवर्तित हो जाता है। इस कीट के द्वारा फल खराब हो जाते हैं जिससे हानि होती है। गिडार के अन्दर घुसने और बाहर आने वाले छिद्रों द्वारा विभिन्न रोगाणुओं का संक्रमण भी हो जाता है।

कैस्टर कैप्सूल भेदक (*डाइकोक्रोसिस पन्कटीफिरेलिस*)

यह एक बहुभक्षी कीट है जिसके गिडार अमरूद के फल को हानि पहुँचाते हैं। यह प्राथमिक तौर पर अरण्डी का नाशीकीट है। यह अमरूद और दूसरे फलों, वन वृक्षों को भी हानि पहुँचाता है। इस माथ (उवजी) के गिडार फल भेदक हैं लेकिन ये कलियों और मुलायम प्ररोहों को भी भेदते हैं। इसके पूर्ण विकसित गिडार गुलाबी रंग के होते हैं जिस पर छोटे काले धब्बे होते हैं। गिडार बढ़ते हुए फल के गूदे और बीजों को खाते हैं जिससे फल पकने से पहले ही गिर जाते हैं। फल के निचले हिस्से में प्यूपा-कोष्ठ में प्यूपा बनता है। इस नाशीकीट का प्रकोप बरसाती अमरूद में होता है।

प्रकोप के लक्षण

अमरूद के प्रभावित फल का रूप गिडार के अन्दर जाने वाले छिद्र के पास से खराब हो जाता। गिडार द्वारा छिद्रों से विसर्जित मल को निकलता हुआ देखा जा सकता है। ऐसे फल कमजोर हो जाते हैं और सड़कर गिर जाते हैं।

प्रबंधन

- अमरूद के बाग के पास अनार के बाग नहीं लगाने चाहिए क्योंकि यह इस नाशीकीट का सबसे अधिक पसंद का परपोषी है।
- ग्रस्त फलों को नियमित रूप से एकत्र कर इसे नष्ट करना चाहिए जिससे इसके प्रकोप और फैले नहीं तथा इसे आगे बढ़ने से रोका जा सके।
- इस कीट की रोकथाम के लिए फल के मौसम के प्रारंभ में और फलों के पकने से पूर्व डायमेथोएट (0.06 प्रतिशत) कीटनाशी का छिड़काव करना चाहिए। प्रकोप की अधिकता होने पर 15 दिनों के अन्तराल पर दोबारा छिड़काव किया जा सकता है। अन्तिम छिड़काव के कम से कम 15 दिनों के बाद ही फलों को तोड़ना चाहिए।

टी मास्क्यूटो बग

यह मुख्यतः काजू को हानि पहुँचाने वाला कीट है जो काजू उत्पादन क्षेत्रों में पाया जाता है। साथ ही यह कीट अंगूर, अमरूद और आम को भी हानि पहुँचाता है। इसका प्रकोप जून से फरवरी में प्रारंभ होकर सितंबर से नवंबर तक रहता है। इसके निम्फ और वयस्क मुलायम पत्तियों, शाखाओं और फलों का रस चूसते है जिससे पत्तियों में भूरे रंग के धब्बे पड़ जाते हैं और पत्तियाँ सूख जाती हैं। भूरे और काले रंग के धब्बे फूलों की कलियों में पाये जाते हैं जिससे फलों पर स्केल बन जाते हैं। वयस्क छोटे तथा उनका शरीर लम्बा (7-9 मिलीमीटर) और टांगें तथा ऐंटीना भी लम्बी होती है। निम्फ बालों सहित, सफेद और चीटीं जैसे होते हैं।

प्रबंधन

- बागों को साफ सुथरा रखें।
- अधिक प्रकोप होने पर डायमेथोएट (0.06 प्रतिशत) का 15 दिन के अन्तराल पर दो छिड़ाकव करें।

मिली बग

उपर्युक्त नाशीकीटों के अतिरिक्त कई प्रकार के काक्सिड भी अमरूद की पत्तियों, प्ररोहों एवं फलों पर पाये गये हैं। इनमें से कुछ ही नियमित रूप से अमरूद पर प्रकोप करते हैं। शेष कीटों का यदा-कदा प्रकोप देश के विभिन्न भागों में देखा गया है। *क्लोरोपल्वीनेरिया साईडी, ड्रासीचा मैन्जीफेरी, फेरेसिया विरगेटा, हेमीएसपीडिओप्राक्टस सीनेरस, नाइपीकाकस वाइरोडिस, प्लेनोकाकस सीट्राई, सेसेटिया ओली, से.* काफी आदि सामान्यतः पायी जाने वाली प्रजातियाँ हैं। इसमें से *क. साईडी* मुख्य प्रजाति है जो मध्य एवं दक्षिण भारत में अमरूद की फसल को गंभीर हानि पहुँचाती है।

नाईपीकाकस वाइरीडिस का फलों पर एवं *फेरेसिया विरगेटा* का पत्तियों और प्ररोहों पर प्रकोप यदा-कदा उत्तर भारत में देखा गया है। कभी-कभी *फे. विरगेटा* विशेष कर छोटे पौधों में अधिक संख्या में आता है। इसके वयस्क सफेद, चमकदार, मोम के धागे उत्सिर्जित करते हैं जो शरीर को घेरे रहते हैं। शरीर मोमी-चूर्ण से ढ़का होता है। अण्डे समूहों में अण्डों की थैली में दिये जाते हैं। निम्फ अण्डों से निकलने के बाद पत्तियों एवं प्ररोहों का रस चूसते हैं। सामान्यतः इन कीटों का प्रकोप ग्रीष्म ऋतु में होता है। आम के चूर्णी बग, *डी. मैन्जीफेरी* का प्रकोप शीतकालीन अमरूद की फसल में देखा गया है। निम्फ पत्तियों, प्ररोहों और फलों का रस चूसते हैं। इन कीटों द्वारा विसर्जित मधु के कारण प्रभावित भागों पर काली फफूँद (सूटी मोल्ड) पनपती है। इससे ग्रस्त फल समय पूर्व गिर जाते हैं एवं परिपक्व फल का बाजार भाव घट जाता है।

प्रकोप के लक्षण

अत्यधिक रस चूसे जाने के कारण पत्तियाँ पीली होकर मुरझा जाती हैं और सूखकर झड़ जाती हैं। नये प्ररोह सूख जाते हैं और प्रभावित फल गिर जाते हैं। इन कीटों द्वारा विसर्जित मधु पर काली फफूँद का संक्रमण होने के कारण पेड़ की प्रकाश संश्लेषण क्रिया बाधित होती है।

प्रबंधन

- फल के मौसम के प्रारम्भ में ही या जब फल का मौसम न हो, प्रभावित पत्तियों और नये प्ररोहों को काट कर कीड़ों सहित

नष्ट कर देना चाहिए। इससे नाशीकीट की प्रारम्भिक संख्या में कमी आती है और ये आगे नहीं फैल पाता।

- इन नाशीकीटों को और फैलने से रोकने के लिए बहुत घनी और एक-दूसरे पेड़ को छूती हुई शाखाओं को काट-छाँट देना चाहिए।
- *फे. विरगाटा* के अधिक प्रकोप होने पर 0.06 प्रतिशत डाइमेथोएट का छिड़काव फल के मौसम के प्रारंभ में या फल का मौसम न होने पर करने की संस्तुति की जाती है। प्रकोप की अधिकता होने पर दोबारा छिड़काव 15 दिनों के अन्तराल पर किया जा सकता है।
- गुजिया कीट से बचाव और नियन्त्रण के लिए 400 गेज की 25 सेंटीमीटर चौड़ी एल्काथीन की पट्टी सुतली की सहायता से पेड़ के तने पर बाँधना चाहिए। अधिक प्रकोप होने पर 1.5 प्रतिशत क्लोरपाइरीफ़ॉस चूर्ण 250 ग्राम प्रति पेड़ की दर से पेड़ के चारों तरफ मिट्टी की गुड़ाई कर प्रयोग कर सकते हैं। ऐसा विशेषकर उस समय अवश्य करना चाहिए जब अमरूद का बाग आम के बाग के पास हो।
- परभक्षी *क्रिप्टोलीमस मोन्टरोज़ेरी* को 10 ग्रब प्रति पेड़ की दर से जनवरी-फरवरी में पेड़ों पर छोड़ने से इन मीली वग के प्रकोप में काफी कमी की जा सकती है।

माहू (*एफिस गासीपाई*)

इसका प्रकोप अमरूद की नयी पत्तियों पर होता है और यह रस चूस कर पत्तियों और प्ररोहों के अग्रभाग को हानि पहुँचाते हैं। हालाँकि ये गम्भीर हानि नहीं पहुँचाते। कई प्रकार के कीट विशेष कर सिरफिड एवं काक्सीनेलिड परभक्षी कीट प्रकृति में इनकी संख्या को बढ़ने से रोकते हैं।

प्रकोप के लक्षण

मुरझाई और झुकी हुई पत्तियाँ इस कीट का प्रकोप होना इंगित करती है। चीटियाँ भी इस नाशीकीट के साथ पायी जाती हैं।

प्रबंधन

प्रकोप के प्रारम्भ में ही प्रभावित पत्तियों और प्ररोहों को काट कर कीटों सहित नष्ट कर देना चाहिए। अधिक प्रकोप होने पर 0.06 प्रतिशत डायमेथोएट का छिड़काव करना चाहिए।

स्पाइरेलिंग व्हाइट फ्लाई

इस कीट का भारत में सर्वप्रथम केरल में 1993 में प्रकोप देखा गया था। इसके उपरांत इसका प्रकोप बैंगलुरु, धारवाड़ और महाराष्ट्र में बढ़ रहा है। इस कीट का प्रकोप बैंगलुरु में मार्च से जून तथा महाराष्ट्र में जुलाई-अगस्त तथा नवम्बर से मार्च में अधिक होता है। मादा कीट द्वारा अंडे पत्तियों की निचली सतह में दिये जाते हैं जिनसे लार्वा निकलते है तथा इनमें 3 इन्सटार होते हैं और चौथा इन्सटार प्री प्यूपा में बदल जाता है। वयस्क निकलते समय साफ होता है लेकिन कुछ ही घंटे में इसके ऊपर सफेद चूर्ण पैदा हो जाता है। इसके निम्फ और वयस्क कीट पत्तियों को रस चूसते हैं जिससे पत्तियां गिर जाती हैं और फूल तथा फल कम आते हैं। पत्तियों की निचली सतह में सफेद रूई की तरह परत जम जाती है। यइ एक तरह का मीठा श्राव निकालता है जिस पर सूटी मोल्ड का वर्धन होता है। इससे पत्तियों में प्रकाश संश्लेषण की क्रिया रूक जाती है और पत्तियाँ सूख कर गिर जाती है।

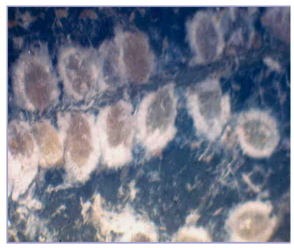

प्रबंधन

- कीट से ग्रस्त पत्तियों को इकट्ठा कर नष्ट कर देना चाहिए।
- बागों में पीले स्टिकी ट्रेप्स (20 ट्रेप/प्रति हेक्टेयर) की दर से लगाना चाहिए जिससे वयस्क कीट आकर्षित होकर चिपककर मर जाते हैं।
- अधिक प्रकोप होने पर डायमेथोएट (0.06 प्रतिशत) का छिड़काव करें।

थ्रिप्स

सेलेनोथ्रिप्स रूब्रोसिक्टस और *रिपिफोरोथ्रिप्स क्रूयेन्टेटस* नामक थ्रिप्स अमरूद को प्रभावित करती हैं। इनका प्रकोप नर्सरी में अधिक होता है। इसके निम्फ पत्तियों की निचली सतह का रस चूसते हैं। निम्फ पीले रंग के तथा इनके उदर के सिरे पर एक चौड़ी पट्टी पायी जाती है। वयस्क में गहरे भूरे, लम्बे और गहरे भूरे आरीनूमा पंख होते हैं। इसका प्रकोप जाड़ों में फल बैठने से पकने तक होता है। अधिक प्रकोप होने पर फलों की गुणवत्ता एवं उत्पादकता प्रभावित होती है।

प्रबंधन

- पीले स्टिकी ट्रैपस या पीले पानी का ट्रैप रखने से इस कीट का आंकलन और नियंत्रण किया जा सकता है।
- अधिक प्रकोप होने पर थायमेथाक्जाम (0.2 ग्राम/लीटर) का छिड़काव करें।

मानवता ही असली धर्म

कभी-कभी ये सोच कर आश्चर्य होता है
बुद्ध ने, महावीर ने, क्राइस्ट ने, राम ने, कृष्ण ने, मोहम्मद ने
जीवन गुजार दिया मानवता की रक्षा में,
और हमने क्या किया ?
मूर्तियाँ या इमारतें बनाईं और आदर्शों को भुला दिया,
दीपक जलाए, मोमबत्तियाँ जलाईं और आत्मस्थ प्रकाश को बुझा दिया.
हम छाया को सच समझ बैठे और असल सच को छुपा दिया,
मृग तृष्णा के पीछे रहे भागते, पर रेत ने रुला दिया.
क्या वाकई धर्म के पैगम्बर ये पैगाम लाये थे,
या फिर परम ज्योति से आलोकित वो, मानवता को रोशन करने आए थे,
ये घंटे, घंटियाँ, मीनारें, स्तूप और विहार,
दे रहे जो आवाजें उन्हें सुनो बार बार,
रचना हम सब सृष्टि की, एक है ये परिवार,
नहीं कोई क्षुद्र है, नहीं कोई श्रेष्ठ,
मानवता ही असली धर्म, जिसे समझना शेष।

–डॉ. नीलिमा गर्ग
अध्यक्ष, तुड़ाई उपरान्त प्रबंधन प्रभाग

जामुन की बागवानी एवं उसका आर्थिक महत्व

ए. के. सिंह[1] एवं कृष्ण कुमार मिश्र[2]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

जामुन एक सदाबहार वृक्ष है। यह मिरटेसी परिवार के अंतर्गत आता है। जामुन का वृक्ष भारत, दक्षिण एशिया के देशों तथा इण्डोनेशिया में पाया जाता है। इसे जामुन, राजामुन, काला जामुन, जमाली, ब्लैकबेरी आदि विभिन्न घरेलू नामों से जाना जाता है। जामुन एक मौसमी फल है जो खाने में अम्लीय एवं कसैला होता है। पकने के बाद इसका स्वाद मीठा हो जाता है। जामुन अपने विभिन्न औषधीय गुणों जैसे टेनिन्स, अल्कालायड्स, स्टेराइड्स, फ्लैवोनायड्स, फैटी एसिड, फिनाल्स, खनिज, कार्बोहाइड्रेट और विटामिन के कारण भी जाना जाता है। जामुन के फल में पोषक तत्वों की मात्रा भरपूर होती है। यह खनिज शार्करा और अन्य फायटोकेमीकल्स के साथ-साथ लोहे का भी अच्छा स्रोत है। जामुन भारत में काफी लोकप्रिय है। जामुन एक ऐसा फल है जिसे मधुमेह रोगी बिना किसी परेशानी के खा सकते हैं। जामुन की गुठली में ब्लड शुगर की अधिकता को नियंत्रित करने वाले अवयव होते हैं। औसतन 100 ग्राम जामुन में 62 किलो कैलौरी ऊर्जा, 1-2 मिलीग्राम लोहा, 15 मिलीग्राम कैल्सियम, 15 मिलीग्राम फास्फोरस, 18 मिलीग्राम विटामिन सी, 48 माइक्रोग्राम कैरोटीन, 55 मिलीग्राम पोटेशियम, 35 मिलीग्राम मैग्नीशियम और 25 मिलीग्राम सोडियम पाया जाता है। जामुन में विटामिन बी और आयरन पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। जामुन एनीमिया (खून की कमी) को दूर करने और रक्त में हीमोग्लोबिन बढ़ाने में भी मदद करता है।

उपयोग

जामुन का फल अपने पोषक तत्वों के अलावा और भी कई तरह से उपयोगी पाया गया है। सूखे के दौरान इसके पत्तों का उपयोग चारे के रूप में भी किया जाता है। जामुन की लकड़ी का धार, कृषि उपकरण तथा रेलवे स्लीपर बनाने में प्रयोग किया जाता है। प्रायः देखा गया है कि इसका पेड़ बगीचे के चारों किनारे पर चार दिवारी के रूप में लगाया जाता है। पाचन के लिए जामुन बहुत ही फायदेमंद फल है और इसे खाने से पेट से जुड़ी कई तरह की समस्याएँ दूर हो जाती हैं। जामुन के पाउडर को खाने से मधुमेह में काफी फायदा होता है। मधुमेह के अलावा इसमें कई ऐसे तत्व पाये जाते हैं जो कैंसर से बचाव में भी कारगर सिद्ध होते हैं।

गुणवक्तायुक्त उपज ली जाने वाली जामुन की उन्नत प्रजातियाँ

सी.आई.एस.एच.जे.-37

यह केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ द्वारा विकसित की गयी प्रजाति है जिसकी उपज लगभग 90-100 किलो ग्राम/पौधा (09 साल पुराना पेड़) होता है। परिपक्वता जून के दूसरे सप्ताह में होती है। फल अंडाकार और औसत वजन 22-24 ग्राम, लम्बाई 3-9 सेंटीमीटर, व्यास 3.03 सेंटीमीटर, गूदा 92 प्रतिशत, कुल घुलनशील ठोस 16-40° ब्रिक्स, विटामिन-सी 49-88 मिलीग्राम/100 ग्र्राम और कुल ऐंटीऑक्सीडेंट की मात्रा 38-30 मिलीग्राम ए.इ.ए.सी. होती है।

सी.आई.एस.एच.जे.-42 (गुठली रहित)

बीज रहित इस जामुन का चयन केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ द्वारा किया गया। इस प्रजाति की उत्पादन क्षमता लगभग 9-10 किलोग्राम/पौधा (09 वर्ष पुराना पेड़) और परिपक्वता जून के दूसरे सप्ताह में होता है। फल का आकार गोल और औसत वजन 6-8 ग्राम, लम्बाई 2-5 सेंटीमीटर गूदा 97.9 प्रतिशत कुल घुलनशील ठोस 14-70° ब्रिक्स, विटामिन-सी 34-14 मिलीग्राम/ग्राम और कुल ऐंटीऑक्सीडेंट की मात्रा 15-54 मिलीग्राम ए.इ.ए.सी. होता है। इस प्रजाति की भंडारण क्षमता 3-5 दिन कमरे के तापमान पर है।

कोंकन बहाडोली

इसका चयन आर.फ.आर.स. वेंगुरला द्वारा किया गया। इसके फल का औसत वजन 14 से 16 ग्राम और कुल घुलनशील ठोस 16^0 ब्रिक्स होती है।

राजामुन

इसका फल बड़ा, लम्बाई 2.5-3.5 सेंटीमीटर, अंडाकार, गाढ़ा नीला, नीला गुलाबी, रसदार, गूदा मीठा और बीज छोटा होता है। फल जून-जुलाई में परिपक्व होते हैं।

[1]प्रधान वैज्ञानिक एवं [2]वरिष्ठ शोध अध्येयता

विलंब से पकने वाली प्रजाति

फल का आकार छोटा, लम्बाई 1.5-2.0 सेंटीमीटर और व्यास 1-1.5 सेंटीमीटर, पकने पर थोड़ा गोल, गाढ़ा नीला या काला रंग का और गुठली अपेक्षाकृत बड़ी होती है। फल अगस्त महीने में परिपक्व होते हैं।

मृदा एवं जलवायु

जामुन मुख्य रूप से उष्णकटिबन्धीय और उपोष्ण जलवायु में सफलतापूर्वक उगाया जाता है। जामुन का पेड़ भारी वर्षा, गर्मी एवं सर्दी ऋतुओं को सहन कर सकता है एवं बाढ़ का सामना भी कर सकता हैं। हालाँकि पौधों को प्रारंभिक अवस्था में पाले से बचाने की जरूरत है। इसकी खेती शुष्क, अर्द्धशुष्क जलवायु, संसाधनों की कमी एवं बंजर भूमि क्षेत्र जहाँ अन्य फसलें उगाना मुश्किल हो उसमें भी किया जा सकता है। जामुन को दोमट मिट्टी पर भी लगाया जा सकता है हालाँकि मिट्टी अच्छी तरह से सूखी होनी चाहिए। जामुन को लवणीय मृदा और बंजर भूमि में भी लगाया जा सकता है। जामुन की बागवानी 10.5 पी.एच. तक क्षारीय भूमि में भी की जा सकती है।

खेत (भूमि) की तैयारी जुताई और समतल करने के द्वारा की जाती है। बाग की स्थापना के लिए पानी की निकासी की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। इसे आमतौर पर वर्गाकार प्रणाली में 8×8 मीटर की दूरी पर (150 पौधा/हेक्टेयर) लगाया जाता है। गड्ढे आमतौर पर गर्मी के महीने में 90×90×90 सेंटीमीटर की गहराई तक खोदे जाते हैं। पौध रोपण बरसात के समय में करना चाहिए। पौध रोपण करते समय मिट्टी का पेड़ी अन्दर और कलम बंधे स्थान को जमीनी स्तर से ऊपर रखना चाहिए। रोपण अधिकांशतः शाम के समय किया जाना चाहिए और रोपण के बाद सिंचाई भी करनी चाहिए। रोपण के लिए सबसे अच्छा समय जुलाई-अगस्त है। सघन बागवानी के लिए दूरी 5×5 मीटर (400 पौधा/हेक्टेयर) होनी चाहिए।

प्रवर्धन

जामुन में वनस्पति प्रवर्धन को बढ़ावा देने की आवश्कता है। केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ में वनस्पति प्रवर्धन के विभिन्न तरीके विकसित किये गये हैं जिसमें कोमल शाखा बंधन तकनीक इसके लिए अधिक उपयुक्त पायी गयी है।

कोमल शाखा बंधन बांधने का काम प्रत्येक वर्ष किया जा सकता है। इस विधि में 6-7 इंच लम्बा सायन लेना चाहिए मातृ पौधे से सायन को अलग करने से 7-10 दिन पहले पत्तियों को हटा देना चाहिए इससे अधिक सफलता मिलती है। कलम बांधने के लिए फरवरी-मार्च एवं जुलाई-अगस्त माह उपयुक्त होता है। मूलवृन्त को पॉलिथीन बैग के मिट्टी के स्तर से लगभग 9 इंच ऊपर से काट देते हैं और उसमें वी आकर का कट (2-5 इंच की गहराई तक) कर लेते हैं। सायन को भी समान आकार की लम्बाई (2-5 इंच) कट कर लेते हैं। उसके बाद मूलवृन्त और सायन को एक साथ कटे हुए स्थान पर मिलाकर 100 गेज की पॉलिथीन से कसकर बांध दिया जाता है।

जामुन में काट-छाँट एवं फैलाव प्रबंधन

पौधों के फैलाव का प्रबंधन प्रारंभिक अवस्था में ही किया जाता है। नये पौधों के मुख्य ढाँचे को विकसित करने के लिये जमीन से 60 सेंटीमीटर ऊपर 3-5 स्वस्थ शाखाओं को ऊपर जाने दिया जाता है। यह काट-छाँट के द्वारा किया जाता है। पौधे के आकार को छँटाई के द्वारा नियंत्रित किया जाता है और फैलाव के प्राथमिक, माध्यमिक और तृतीयक अवस्था को प्राप्त करने के लिये अनुत्पादक शाखाओं को हटा दिया जाता है। जामुन में नियमित काट-छाँट की आवश्यकता होती है। इसकी सूखी, कमजोर और रोगजनित शाखाओं को हटाते रहना चाहिए। केंद्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ में इसके कटाई-छँटाई के विभिन्न तकनीक का इस्तेमाल किया गया जिसमें खुला केन्द्र और पॉमेट प्रणाली अच्छा पाया गया है।

पानी और पोषक तत्व प्रबंधन

सामान्यतः जामुन के पौधों को 20 किलोग्राम गोबर की खाद प्रति पेड़ पौध रोपण के समय एवं फल देने वाले पौधे को 50-60 किलोग्राम गोबर की खाद प्रति पेड़ की वार्षिक दर के अतिरिक्त 125 ग्राम नाइट्रोजन, 50 ग्राम फास्फोरस, 50 ग्राम पोटाश प्रति पेड़ प्रति वर्ष देना लाभकारी है। सिंचाई सितंबर-अक्टूबर और फरवरी-मार्च के महीने में की जानी चाहिये। यह फूल खिलने, फल लगने एवं गुणवक्तायुक्त उत्पादन में मदद करता है।

फूल एवं फलन

सामान्यतः फूल 6 से 10 माह की पुरानी टहनी पर गुच्छों में आते हैं। उत्तर भारत में फूल मार्च-अप्रैल में आते हैं। आमतौर पर फूल मार्च के पहले सप्ताह से आना शुरू होता है और अधिकतम फूल 15 मार्च से 21 अप्रैल तक आता है। प्रत्येक पुष्पगुच्छ में 40-100 फूल होते हैं। आकार के आधार पर फलों को दो प्रकार में विभाजित किया गया है, एक गोल आकर का दूसरा अंडाकार होता है। अंडाकार आकार का फल समतल और सर्वोच्च होता है। अंडाकार फल का वजन अधिक, बीज अपेक्षाकृत छोटा और पेक्टिन की मात्रा अधिक होती है।

कीट एवं रोग निदान

कीट प्रबंधन

पत्ती खाने वाला कीट : यह कीट पत्तियों को खाकर पेड़ को पत्ती रहित कर देता है। कीट को नियंत्रित करने के लिये डाइमेथोएट 30 ई.सी. (0.06 प्रतिशत) या मैलाथियॉन (0-05 प्रतिशत) का छिड़काव करना चाहिए।

छाल खाने वाला कीट : लार्वा तना में सुरंग बनाकर रहते हैं। इससे प्रभावित पेड़ के उपज में गिरावट आ जाती है और पौधे मरने लगते हैं। इस कीट का प्रबंधन, बागों की स्वच्छता बनाये रखने और छेद में 2.0 मिलीलीटर पेट्रोल का इंजेक्शन लगा कर और जुताई के द्वारा किया जा सकता है। डाइमेथोएट 30 ई.सी. (0.06 प्रतिशत) या ऐसीफेट (1.5 ग्राम/लीटर) त्रैसाप्ताहिक अंतराल के छिड़काव से भी कीट को प्रभावी ढंग से नियंत्रित कर सकते हैं।

जामुन लीफ माइनर : यह कीट अप्रैल से सितंबर तक पौधों को अधिक नुकसान पहुँचता है। यह कीट चमकीला पत्ती पर ऊपर की ओर एक संकीर्ण धागानुमा होता है। इस कीट का नियंत्रण प्रभावित पत्तियों को जलाकर उसके बाद डाइमेथोएट 30 ई.सी. (0.06 प्रतिशत) का छिड़काव कर कर सकते हैं।

फल मक्खी : फल मक्खी से प्रभावित फल विक्रय के लिए अनुपयुक्त हो जाते हैं। संक्रमित फलों को एकत्रित कर बाग़ से दूर मिटटी में दबा देना चाहिए ताकि प्रभावित फलों के कीट मिट्टी में दबने से नष्ट हो जायें और बाकी फलों को प्रभावित होने से बचाया जा सके।

रोग प्रबंधन

पत्ती धब्बा और फल विगलन : प्रभावित पत्तियों पर छोटे बिखरे हुए धब्बे हल्के भूरे या लाल भूरे रंग की दिखायी देते हैं।

इस रोग से प्रभावित फल सड़ने और सूखने लगते हैं। डायथेन 2.78 (0.2 प्रतिशत) के छिड़काव से रोग पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

परिपक्वता एवं तुड़ाई

जामुन में फल विकास के तीन विभिन्न अवस्था को देखा गया है। पहले चरण के दौरान (15-52 दिन फल लगने के बाद) विकास दर धीमी हो जाती है। द्वितीय चरण में (52-58 दिन फल लगने के बाद) वृद्धि दर काफी तेजी से होता है और तृतीय चरण में (58-60 दिन फल लगने के बाद) धीमी वृद्धि के साथ फल के वजन में वृद्धि, नमी की मात्रा और कुल शर्करा में थोड़ी वृद्धि) करता है।

फल की तुड़ाई पकने के बाद प्रतिदिन करनी चाहिए। फल को एक-एक कर हाथ से तोड़ना चाहिए। जामुन के फल को आमतौर पर रोज तोड़ना चाहिए और उसी दिन बाजार में बेच दिया जाना चाहिए क्योंकि जामुन के फल की भण्डारण क्षमता कम होती है। फल तुड़ाई के समय जमीन पर नहीं गिरना चाहिए अन्यथा फल की गुणवत्ता कम हो जाती है।

विपणन एवं आर्थिक महत्व

फल की भंडारण क्षमता कम होने के कारण विपणन की समस्या होती है इसलिए जामुन का फल तुड़ाई उपरांत प्रतिदिन फल मंडी में बेचा जाता है। लगभग 75 प्रतिशत किसान मंडी में न जाकर गांव में ही कम दाम पर फुटकर व्यापारी को बेच देते हैं। अतः आर्थिक महत्व की दृष्टि से जामुन के फल को मंडी में उचित कीमत पर ही बेचना चाहिए। चूँकि जामुन का फल उत्पादन थोड़े समय में ज्यादा मात्रा में होता है और भंडारण क्षमता कम होती है। अतः इसके फल से बनने वाले उत्पाद जैसे - जैम, जेली, जूस, स्क्वैश, पाउडर, किशमिश, सिरका अवश्य बनाना चाहिए जिससे फल का उचित उपयोग एवं मूल्य प्राप्त किया जा सके।

समस्याग्रस्त क्षेत्रों में फलोत्पादन के द्वारा अतिरिक्त आय का सृजन

देवेन्द्र पाण्डेय[1], अवनीश पाण्डेय[2], धीरु कुमार तिवारी[3], शिल्पा सिंह[4] एवं निकिता नेहाल[5]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

हमारे देश के निर्धन लोगों को खाद्य सुरक्षा उपलब्ध कराना एक अत्यंत ही चुनौतीपूर्ण कार्य है। यह चुनौती अधिक विराट तब दिखने लगती है जब हमारे समक्ष जलवायु परिवर्तन तथा उपजाऊ भूमियों के अपरदन जैसी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। भारत की मृदाएँ या तो बेकार हैं या फिर किसी अन्य कारण से वे अपनी क्षमता के अनुकूल उत्पादन नहीं कर पा रही हैं। इस प्रकार की मृदाओं को समस्याग्रस्त या अनुपजाऊ मृदा कहा जाता हैं। बढ़ती हुई जनसंख्या के घनत्व के कारण उपजाऊ भूमि का क्षेत्रफल सिकुड़ता जा रहा है। इन सारी समस्याओं के निदान, खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने तथा अतिरिक्त आय की प्राप्ति के लाभ हैं। ये फसलें विभिन्न प्रकार की जलवायु के लिए उपयुक्त हैं तथा सस्य फसलों की तुलना में उत्पादन भी अधिक देती है। शुष्क कृषि क्षेत्र, वर्षा पर निर्भर कृषि एवं पहाड़ी क्षेत्र, रेगिस्तानी एवं तटीय क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के लिए फलोत्पादन अत्यधिक लाभकारी सिद्ध हो रहा है। कुछ फल वृक्ष ऐसे हैं जिसकी वैज्ञानिक खेती से ऊसर, बंजर एवं परती पड़ी भूमि का योजनाबद्ध तरीके से विकास संभव है। समस्याग्रस्त क्षेत्रों में फलोत्पादन के विषय में निम्नलिखित सुझाव दिया गया है।

सारणी-1: भारत में विभिन्न प्रकार की समस्याग्रस्त मृदाओं का क्षेत्रफल।

क्रमांक	समस्याग्रस्त क्षेत्र का प्रकार	क्षेत्रफल (मिलियन हेक्टेयर)
1.	जल एवं वायु अपरदन मृदा	141.25
2.	लवणीय एवं समुद्र तटीय क्षेत्र	5.50
3.	क्षारीय मृदा	4.50
4.	जल पल्लवित मृदा	8.53
5.	नालीदार एवं खड्ड भूमि	3.94
6.	नदी तटीय एवं टोरेन्टस क्षेत्र	2.73
7.	अनुपभूमि क्षेत्र	4.91
	कुल क्षेत्र	171.36

समस्याग्रस्त क्षेत्र में बागवानी के लाभ :

1. समस्याग्रस्त क्षेत्रों में फलोत्पादन के द्वारा अधिक उत्पादन एवं आय की प्राप्त की जा सकती है।
2. समस्याग्रस्त क्षेत्र में कृषि के साथ पशुपालन, मुर्गीपालन एवं मत्स्य पालन इत्यादि किया जा सकता है।
3. इससे चारा एवं लकड़ी की प्राप्ति।
4. बहुवार्षिक होने के कारण यह जमीन को पूरे वर्ष घेरे रहता है जिससे बरसात के पानी का सही इस्तेमाल होता है।
5. फल वृक्ष लगाने से भूमि के कटाव को भी रोका जा सकता है।
6. प्रति इकाई क्षेत्र से अधिक उत्पादकता एवं लाभ।
7. फल वृक्षों में जल की कमी के साथ-साथ सूखा सहन करने की अद्भुत क्षमता का होना।
8. कीट-व्याधियों का अपेक्षाकृत कम प्रकोप।

[1]प्रधान वैज्ञानिक एवं [2,3,4,5]वरिष्ठ अनुसंधान अध्येता

9. कम मात्रा में खाद-पानी की आवश्यकता का होना।
10. ऊबड़-खाबड़ तथा बेकार पड़ी जमीन का सही उपयोग।
11. फल वृक्षों की काश्त से पूरे वर्ष रोजगार उपलब्ध होना।
12. गाँव के लोगों की पोषण समस्या को काफी हद तक कम किया जा सकता है।

उपजाऊ फल वृक्षों का चयन : विभिन्न प्रकार की समस्याग्रस्त मृदाओं में व्याप्त विभिन्न प्रकार के जैविक एवं अजैविक कारक, पौधों की बढ़वार एवं उपज को प्रभावित करते हैं। अतः आवश्यक है कि फल वृक्षों का चयन समस्याग्रस्त क्षेत्र के हिसाब से ही किया जाये।

शुष्क क्षेत्रों में फलोत्पादन को बहुत से वातावरणीय कारक प्रभावित करते हैं। मुख्य रूप से कम वर्षा ही सफल फलोत्पादन के मार्ग में बाधक होती है। अतः हमें ऐसे फल वृक्षों का चयन करना चाहिए जिन्हें कम जल की आवश्यकता हो। वृक्षों की वृद्धि एवं पुष्पन हो तथा फलन ऐसे समय पर होते हो जिस समय जल उपलब्ध होते हो। वृक्षों की जड़ें गहरी हों, क्षेत्र विशेष के लिए अनुकूल हों, सूखा अवरोधी हो, लवणीय-क्षारीय जल के प्रति सहिष्णु हों, आर्थिक एवं पर्यावरणीय दृष्टि से भी लाभकारी हों।

इसी प्रकार लवणीय मृदाओं हेतु ऐसे फल वृक्षों का चयन करना चाहिए जो नुकसानदायक लवणों को कम मात्रा में ग्रहण करें एवं अपवर्जन, उत्सर्जन, तनुता प्रभाव एवं परासारणी सन्तुलन द्वारा नुकसानदायक लवणों को कम करें। इन सब विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए आँवला, बेल, बेर, करौंदा, जामुन, लसोड़ा, अमरूद, फालसा, खिरनी, शरीफा, अनार, खजूर, चीकू, अंजीर, इमली, कैर, शहतूत, सहिजन, कैथा, नींबू इत्यादि फसलों का चयन करना चाहिए।

उपयुक्त किस्मों का चयन : फलों की सफल बागवानी हेतु उपयुक्त किस्मों का चयन अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। कुछ प्रमुख फलों की लवणों एवं सूखे से कम प्रभावित होने वाली किस्में निम्नलिखित प्रकार की हैं।

फल	उपयुक्त किस्में
आँवला	चकैइया, कंचन, कृष्णा, नरेन्द्र आँवला-6, नरेन्द्र आँवला-7
बेल	नरेन्द्र बेल-5, नरेन्द्र बेल-9, सी.आई.एस.एच-बेल-1, सी.आई.एस.एच-बेल-2, गोमा याशी
बेर	बनारसी काराका, गोला, कैथली, थार भुवराज इत्यादि
अंगूर	ब्यूटी सीडलेस
अनार	गणेश, जोधपुर रेड, जालोर सीडलेस
नीबू	विक्रम, प्रमालिनी, साई सरबती
लेमन	कागजी कलान, पंत लेमन-1
करौंदा	नरेन्द्र सेलेक्सन, थार कमल, पंत सुदर्शन, पंत मनोहर, पंत सुवर्णा
जामुन	लोकल सेलेक्सन, पारस, रा जामुन, कोंकण बहडोली
खजूर	हालवी, बरही, मेडझूल, जैदी, शामरान
अंजीर	पूना, ब्लैक इशाचिया
अमरूद	सरदार
शरीफा	बालानगर, मैमथ, लाल सीताफल, अर्का साहन
इमली	औरंगाबाद, राहुरी, पेरियाकुलम के सेलेक्सन, गोमा प्रतीक

बागवानी एवं उद्यमिता विकास

जितेन्द्र कुमार[1]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागबानी संस्थान, लखनऊ

उद्यमिता क्या है ? उद्यमी व्यक्ति कौन होता है तथा उद्यमिता की शुरुआत कैसे करते हैं ? ऐसे अनेक प्रश्न हमारे मन में प्रकट होते हैं ? यह समय की मांग है और जब बात कृषि विज्ञान में उद्यमशीलता के विकास की हो तो यह विचार और भी अधिक प्रासंगिक हो जाता है कि कृषि को हमने भारतीय संस्कृति के रूप में स्वीकार किया है। बदलते परिदृश्य में कृषि ने संस्कृति से व्यापार का भी रूप ले लिया है। इसलिए भारतीय किसानों और कृषि व्यावसायियों को उद्यमशीलता कौशल को विकसित करना चाहिए। उद्यमिता मूल रूप से एक व्यक्ति की मनोस्थिति को दर्शाता है। यदि कोई व्यक्ति चाहे तो वह उद्यमी बन सकता है। उद्यमी वह व्यक्ति है जो नवाचार के साथ एक नये व्यवसाय, परियोजना या गतिविधि की शुरुआत कर उसे प्रबंधित करता है और व्यवसाय की सफलता के दौरान जोखिम के लिए भी तैयार रहता है। संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए सरकार उद्यमशीलता को बढ़ावा दे रही है। यह दुनिया उद्यमियों से परिपूर्ण है। स्टीव जॉब्स, बिल गेट्स और मार्क जुकरबर्ग सरीखे गणमान्य उद्यमी जब महाविद्यालय में पढ़ते थे तभी उन लोगों ने ऐप्पल, माइक्रोसॉफ्ट और फेसबुक पर कार्य करना प्रारंभ कर दिया था। आज इन महान उद्यमियों को किसी परिचय की आवश्यकता नहीं है। उद्यमी बनना मुश्किल नहीं है, किन्तु इस कार्य को पूरा करने के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं को समझने की आवश्यकता है।

- एक विचार
- एक योजना
- योजना के अनुरूप निष्पादन

किसी भी व्यवसाय की शुरुआत करने से पूर्व सही विचार या अवधारणा का चयन किया जाना चाहिये और फिर पर्याप्त अनुसंधान करने के पश्चात यह सुनिश्चित करना अत्यावश्यक है कि चयनित विचार या अवधारणा संभव है या नहीं। किसी भी नये उद्यम में सफलता पाना संभव है। बशर्ते उसके लिए सावधानीपूर्वक योजना बनाकर कड़ी मेहनत करने को तैयार रहे। एक बागवानी उद्यम की स्थापना के लिए अनेक बागवानी फसलों की गहन जानकारी एवं उनके प्रबंधन के साथ-साथ निवेश की भी आवश्यकता होती है। किसी भी उद्यमिता की शुरूआत बहुत बड़े स्तर से न कर इसे छोटे स्तर पर शुरू किया जाना चाहिये जिससे एक नये विचार को विकसित किया जा सके। बुनियादी सुविधाओं जैसे पर्याप्त जमीन, फसल के संसाधन और बड़ी फसलों और अतिरिक्त भंडारण को संसाधित करने के लिए विचार करना अत्यावश्यक है।

बागवानी उद्यम एक उत्तम जीवन शैली का विकल्प प्रदान कर सकता है। यह भी ध्यान रखना अत्यन्त जरूरी है कि एक उद्यम से लाभ प्राप्त करने के लिए अनेक वर्ष लग सकते हैं। ढाँचा स्थापित करने, नियमित रूप से कटाई-छँटाई, कीट एवं रोग प्रबंधन एवं सिंचाई आदि मूलभूत कार्यों के लिए पूंजी की आवश्यकता के साथ-साथ कुशल श्रमिकों की भी आवश्यकता होती है।

एक सफल बागवानी उद्यम की स्थापना के लिए फसल और व्यवसाय संरचना के प्राथमिक कारणों की जानकारी एवं बागवानी फसलों के उत्पादन को बढ़ाने के लिए गहन प्रबंधन की आवश्यकता होती है जिसके लिये निम्नलिखित पहलू महत्वपूर्ण है।

- सिंचाई और पोषण संबंधी क्या संभावनाएं हैं?
- मृदा के स्वास्थ्य को कैसे प्रबंधित किया जा सकता है ?
- फसल को परिचालित करने की आवश्यकता क्यों हैं एवं कितनी बार उसी जमीन पर एक ही फसल पैदा कर सकते हैं तथा कौन-कौन सी वैकल्पिक फसलें उपलब्ध हैं एवं इन फसलों से कितनी आय प्राप्त कर सकते हैं ?
- संभावित कीट और रोग क्या हैं? इनका प्रबंधन कैसे किया जाता है ?
- जंगली पौधे एवं खरपतवार को कैसे नियंत्रित किया जा सकता है ?
- साल के उपयुक्त समय, जलवायु, मिट्टी या बाजारों के लिए सही विविधतापूर्ण फसलों का प्रारंभिक चयन कर ऊँची कीमतों को कैसे पाया जा सकता है ?
- सभी बागवानी फसलों के तुड़ाई उपरान्त प्रबंधन के लिए विशेष ग्रेडिंग एवं पैकेजिंग उपकरण की आवश्यकता होती है। क्या आप फसल की परिपक्वता, शीतलन, सुखाने, पैकेजिंग और भंडारण की आवश्यकताओं से भलीभाँति परिचित हैं ?
- महंगाई से निपटने के लिए मशीनरी, उपकरण एवं इमारतों

[1]शोध सहयोगी, बौद्धिक संपदा अधिकार प्रकोष्ठ

की लागत और अन्य आवश्यकताओं हेतु दूसरों के साथ साझा किया जा सकता है?

- यदि आप न्यूनतम या पूर्ण प्रसंस्करण की सोच रहे हैं तो आपको खाद्य सुरक्षा को समझने की आवश्यकता है?
- क्या आप अच्छे संचारक हैं, क्या आप लोगों से अच्छे से संवाद करने में निपुण है क्योंकि अपने उत्पाद को बाजार में सफलतापूर्वक अच्छे दामों में बेचने के लिए यह बहुत जरूरी है। सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण सही कर्मचारियों का चयन, नियोजन एवं उनका प्रबंधन है। आपको उद्योग पर लागू होने वाले सुरक्षा नियमों को भी समझना होगा।
- विपणन में इलेक्ट्रॉनिक प्रचार प्रसार हेतु एक वेबसाइट की आवश्यकता होती है क्योंकि सूचना प्रौद्योगिकी अब प्रत्येक व्यवसाय का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन चुकी है।
- यदि आपको बागवानी में विशेषज्ञता हासिल नहीं है तो आप बागवानी सलाहकार से सहायता प्राप्त कर सकते हैं, जो फसल के प्रबंधन में सहायक हो सकता है एवं व्यापार के क्षेत्रों जैसे विपणन (मार्केटिंग) या वित्त में सहायता एवं सफलता सुनिश्चित करने के लिए सार्थक सिद्ध हो सकता है।

अधिकांश बागवानी फसलों को अच्छी तरह से विकसित करने के लिए कुछ पर्यावरणीय विशेषताओं को भी जानने की आवश्यकता होती है।

मृदा प्रकार : अनेक बागवानी फसलों को अपेक्षाकृत उपजाऊ मिट्टी एवं अच्छे जल निकासी की आवश्यकता होती है। जिस मिट्टी में फसल उगाने की योजना बना रहे हैं वह किस प्रकार की फसल के लिए उपयुक्त है और यह उपज क्षमता को कितना प्रभावित कर सकती है। मिट्टी के भौतिक एवं रासायनिक गुण प्रबंधन के लिए आपके पास कौन-कौन सी प्रबंधन तकनीकें उपलब्ध हैं। बागबानी फसलों जैसे कि सब्जियों, जड़ी-बूटियों या फलों की सिंचाई के लिए अधिक लवणता वाली मिट्टी उपयुक्त नहीं होती है।

पानी की उपलब्धता/गुणवत्ता : बागवानी फसलों में बड़े पैमाने पर खेती की तुलना में अधिक पानी की आवश्यकता होती है। कई फसलों को नियमित रूप से सिंचाई की आवश्यकता होती है और अगर गर्म या तूफानी मौसम है तो संभावित रूप से कई बार सिंचाई की अधिक मांग होती है।

जलवायु : अधिकतर बागवानी फसलें विशेष जलवायु परिस्थितियों में वृद्धि एवं प्रजनन करती हैं। विभिन्न प्रकार की किस्मों के लिए अलग अलग मौसम की आवश्यकता होती है कुछ फसलों के लिए न्यूनतम गर्म या शीतलता जबकि कुछ किस्मों के लिए चरम ठंड और गर्म की आवश्यकता होती है। वर्ष के अलग अलग मौसम के दौरान विभिन्न किस्मों की फसलों का उपयोग करके उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है। ग्रीन हाउस या अन्य फसल संरक्षण संरचनाओं की सहायता से लगभग सभी प्रकार की नवांकुर फसलों को संरक्षित किया जा सकता है।

उद्यमिता विकास हेतु बागवानी के क्षेत्र में निम्नलिखित कारक भी अत्यंत महत्वपूर्ण होते हैं जो इस उद्योग को अधिक लाभप्रद एवं सफल बना सकते हैं।

शीतलक और भंडारण : बागवानी फसलों में आमतौर पर विशिष्ट भंडारण की आवश्यकता होती है अन्यथा सही से भण्डारण न करने पर ये नष्ट हो सकते हैं। कुछ उत्पादों को ठंडे तापमान पर संगृहीत करने और विशिष्ट वायु प्रवाह या वातावरण की आवश्यकता होती है। ज्यादातर बागवानी फसलें एथिलीन के प्रति संवेदनशील होती हैं अतः इन फसलों को अन्य के साथ भण्डारित नहीं किया जा सकता है। अगर आपके क्षेत्र में कोई भंडार है तो आप इसकी सेवायें ले सकते हैं।

बाजार के लिए परिवहन : अनेक बागवानी उत्पादों का जीवन काफी कम होता है। इसलिये आपको अपने उत्पाद को वांछित बाजार में या उपभोक्ताओं तक अच्छी गुणवत्ता में यथाशीघ्र पहुंचाने के लिए परिवहन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अपने व्यवसाय की स्थापना से पहले आपको यह पता लगाना होगा कि क्या परिवहन उपलब्ध है यदि हाँ तो यह आपके उत्पाद को परिवहन के लिए कितना लाभकारी होगा।

पैकेजिंग : कुछ बागवानी फसलों को न्यूनतम पैकेजिंग की आवश्यकता होती है और इसे थोक या फुटकर में बेचा जा सकता है। पैकिंग, विशेष रूप से बनी होनी चाहिए जो नमी को रोकने और वजन को सहने के लिए मजबूत हो। आपके उत्पाद की पैकिंग करने हेतु कौशल होना चाहिए लेकिन यदि नहीं है, तो पता करें कि इस क्षेत्र में कौन व्यक्ति आपके लिए यह सेवा प्रदान कर सकता है।

किस्में एवं उनकी प्रामाणिकताएँ

रोपण सामग्री की खरीद करते समय किस्मों की प्रामाणिकता का ध्यान रखना अति आवश्यक है तथा सभी फसलों के उच्च उत्पादन के लिए सही जीनोटाइप का चयन करना महत्वपूर्ण है।

निगरानी, रिकार्डिंग और समीक्षा

समस्त क्रियाकलापों जैसे लागत, आपूर्ति शृंखला और बाजार की जानकारी, सफलताओं और विफलताओं, सूचना के स्रोत,

उत्पादन और प्रसंस्करण आदि का रिकार्ड रखना चाहिए। यदि संभव हो तो आसान जानकारी के लिए केंद्रीय डेटाबेस में यह जानकारी संकलित की जानी चाहिए।

विपणन शोध (मार्केट रिसर्च) बागवानी उद्यम को सफल बनाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है साथ ही यह भी निर्धारित करने में मदद करता है कि आपका बागवानी उद्यम कितना सफल होगा। इसके लिए कुछ बिंदुओं पर ध्यान केंद्रित करना आवश्यक है जो निम्नानुसार हैं।

- बाजार में आपके उत्पाद की मांग किस समय अधिक होती है और विपणन अनुसंधान आंकड़े आपके उत्पाद की संभावित मांग के बारे निर्णय लेने में आपकी कैसे सहायता कर सकते हैं। विश्लेषण के लिए आपको अपने प्रतिस्पर्धियों के बारे में जानकारी होनी चाहिए जैसे वह कितनी संख्या में हैं और क्या कर रहे हैं? बाजार में कितनी प्रतिस्पर्धा है, क्या आगे विस्तार के लिए जगह है बाजार की अस्थिरता क्या है? अगर बाजार में उत्पाद की मात्रा में वृद्धि हुई तो कितना मूल्य नीचे गिर जाएगा? आप बाजार के किस हिस्से को केंद्रित करना चाहते हैं? क्या आप एक विशेष उत्पाद या वस्तु का निर्माण कर रहे हैं?
- सामान्य तौर पर किसी वस्तु की पेशकश करने और कीमतों पर दूसरों के साथ प्रतिस्पर्धा की तुलना में बाजार में जगह बनाने और स्थापित होने के लिए यह अधिक लाभदायक और टिकाऊ होता है तथा बाजार के रुझान को समझने के लिए भी यह उपयोगी है ताकि आप अपने व्यवसाय के सबसे अधिक अवसरों को पूरा कर सकें।
- इस बात का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है कि आपके सभी उत्पाद चयनित बाज़ार के लिए गुणवत्ता की विशिष्टताओं को पूरा कर रहे हैं या नहीं। आप दूसरे या तीसरे ग्रेड के उत्पाद का क्या करेंगे, क्या अपशिष्ट पदार्थ के साथ कुछ नवप्रवर्तन करने पर बनने वाले उत्पाद से कोई व्यवसाय हो सकता है?
- यदि बाजार में किसी उत्पाद की कोई मांग है तो यह निर्धारित करना महत्वपूर्ण है कि क्या उत्पाद विनिर्दिष्ट (प्रोडक्ट स्पेसीफिकेशन) हो सकता है? अधिकांश उपभोक्ताओं और बाजारों में उत्पाद की प्रस्तुति और गुणवत्ता की कुछ उम्मीदें होंगी और कई बागवानी फसलों को गुणवत्ता आश्वासन (क्यू ए) योजनाओं का पालन करना होगा। यह भी उम्मीद की जा सकती है कि उत्पाद पूरे साल उपलब्ध होगा या कुछ समय की अवधि के लिए।
- क्या आप उस उत्पाद या सेवा को प्रतिस्पधाएँ मूल्य पर आपूर्ति कर सकते हैं? स्थापना और चालू उत्पादन की लागत क्या है और आप अपने उत्पाद के लिए क्या अपेक्षित मूल्य प्राप्त करेंगे?

इन सवालों के उत्तर ग्राहकों, अन्य व्यवसायों या थोक विक्रेताओं से बात कर प्राप्त किया जा सकता है। आप पहले से ही एकत्रित की गयी सूचनाओं का उपयोग कर अपने बाजार की खोज कर सकते हैं, जैसे सरकारी आंकड़े और व्यापार प्रकाशन। एक सफल बागवानी व्यवसाय को ग्राहकों एवं बाज़ार की जरूरतें और अपेक्षित लाभ से भलीभाँति परिचित होना चाहिए। इस प्रकार बागवानी के माध्यम से सफल उद्यमिता विकसित की जा सकती है।

पौधशाला की प्रारंभिक अवस्था

ग्रीन हाउस पौधशाला

मशरूम उत्पादन विविधीकरण : आवश्यकता एवं महत्व

प्रभात कुमार शुक्ल[1]

भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

मशरूम का उत्पादन एवं उपभोग ईसा से लगभग 500-1000 वर्ष पूर्व किये जाने के प्रमाण उपलब्ध हैं। इसकी व्यापारिक खेती का शुरूआत सत्रहवीं शताब्दी में फ्राँस में हुई। भारत में मशरूम की व्यापारिक खेती सन 1960-1970 के मध्य में पर्वतीय क्षेत्रों में की गयी। कालान्तर में इसकी खेती मैदानी एवं समुद्र तटीय क्षेत्रों में भी की जाने लगी। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नयी दिल्ली के अनुसंधान प्रयासों से एक तरफ प्रचलित शीतकालीन बटन मशरूम (*एगेरिकस बाइस्पोरस*) की उत्पादकता में वृद्धि हुई और साथ-ही-साथ शीतकालीन ढ़िगरी (*प्लूरोटस* प्रजातियाँ) एवं ग्रीष्मकालीन दूधिया (*कैलोसाइब इंडिका*) एवं पुवाल मशरूम (*वोलवेरिल्ला वोलवेसिया*) का व्यापारिक खेती में समावेश हुआ। भोज्य के आलावा मशरूम की कुछ प्रजातियाँ (*कोरिओलस वर्सीकलर* और *गानोडर्मा ल्यूसिडम*) विशेष औषधीय उद्देश्यों की पूर्ति भी करती हैं। औषधीय मशरूम का विशेष प्रक्रिया द्वारा औषधीय तत्वों के लिए प्रयोग किया जाता है। मशरूम की उपयोगी प्रजातियों के अतिरिक्त अनेक ऐसे जहरीले मशरूम भी होते हैं जिनके खाने या ग्राह अंगों के सम्पर्क भर से मृत्यु की स्थिति आ सकती है। अतः अपरिचित मशरूम से दूर रहना चाहिए।

मशरूम स्पान (बीज)

बटन मशरूम

ढ़िगरी मशरूम

दूधिया मशरूम

मशरूम के स्वास्थ्यवर्धक एवं औषधीय गुणों के कारण इसे जापान में 'अमरता का भोजन' एवं भारत में 'स्वास्थ्य भोजन' के रूप में जाना जाता है। मशरूम का सेवन मनुष्य में रोग प्रतिरोधी क्षमता उत्पन्न करता है। मशरूम की विभिन्न प्रजातियों में स्वास्थ्यवर्धक पोषक तत्वों की प्रचुर मात्रा पायी जाती है (तालिका-1)। इसमें उपस्थित कार्बोहाइड्रेट में स्टार्च की अनुपस्थिति इसे मधुमेय एवं हृदय रोगों के नियंत्रण में सहायक बनाती है। मशरूम में उपस्थित रेशा हमारी पाचन क्रिया को सुचारू बनाता है। इसकी वसा में उपस्थित अधिक लिनोलिइक अम्ल (61-70 प्रतिशत) एवं कोलेस्ट्राल की अनुपस्थिति इसे उच्च रक्तचाप एवं हृदय रोगों के रोगियों हेतु आदर्श आहार का रूप प्रदान करती है। मशरूम प्रोटीन में सभी 9 आवश्यक अमीनों अम्ल पाये जाते हैं (तालिका-2)। ताजे मशरूम में थियामिन (बी1), राइबोफ्लेविन (बी2), नियासिन, बायोटिन, फोलिक अम्ल, विटामिन बी12 एवं एस्कार्बिक अम्ल (विटामिन सी) प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। मशरूम में पोटेशियम, फास्फोरस, सोडियम, मैग्नीशियम और कैल्सियम प्रचुर एवं ताँबा, जिंक, लोहा, मैंगनीज, कैडमियम एवं लेड सूक्ष्म मात्रा में पाये जाते हैं (तालिका-3)।

1. वरिष्ठ वैज्ञानिक

तालिका - 1 : विभिन्न मशरूम प्रजातियों में पोषक तत्वों की औसत मात्रा (प्रतिशत)।

प्रजाति (वैज्ञानिक नाम)	शुष्क भार	प्रोटीन	कार्बोहाइड्रेट	वसा	खनिज	रेशा	कैलोरी
बटन (*ए. बाईस्पोरस*)	9.9	2.9	5.00	0.30	0.80	0.9	36
पुवाल (*वोलवेरिल्ला वोलवेसिया*)	9.9	2.1	4.70	1.00	1.00	1.1	36
दूधिया (*कैलोसाइब इण्डिका*)	9.9	2.4	5.15	0.34	1.4	0.6	39
ढ़िगरी (*प्लूरोटस फ्लोरिडा*)	6.0	1.6	3.10	0.09	0.52	0.7	16
ढ़िगरी (*प्लूरोटस सेजोरकाजू*)	9.8	2.5	5.20	0.20	0.60	1.3	35
ढ़िगरी (*प्लूरोटस ओस्ट्रिएटस*)	7.1	1.9	3.82	0.12	0.56	0.9	19
ढ़िगरी (*प्लूरोटस फ्लेबेलेटस*)	8.0	2.0	4.21	0.15	0.83	0.8	21
ढ़िगरी (*प्लूरोटस इरिन्जी*)	6.8	2.2	2.98	0.10	0.62	0.9	17
आलू (तुलना हेतु)	25.3	1.6	22.60	0.10	0.60	0.4	97

तालिका - 2 : मशरूम में उपस्थित आवश्यक अमीनो अम्ल (39 प्रतिशत में)।

अमीनो अम्ल	बटन मशरूम	ढ़िगरी मशरूम	पुवाल मशरूम
ल्यूसिन	7.5	7.0	4.5
आइसोल्यूसिन	4.5	4.4	3.4
वेलाइन	2.5	5.3	5.4
ट्रिप्टोफेन	2.0	1.2	1.5
लाइसिन	9.1	5.7	7.1
थ्रिओनिन	5.5	5.0	3.5
फिनाइल एलेनिन	4.2	5.0	2.6
मेथियोनिन	0.9	1.8	1.1
हिस्टीडीन	2.7	2.2	3.8

तालिका - 3 : ढ़िगरी मशरूम में खनिज तत्वों की मात्रा।

प्रजाति	पोटाश	फास्फोरस	मैग्नीशियम	सोडियम	कैल्शियम	लोहा	कैडमियम	जिंक	ताँबा	लेड
	(मिली ग्राम प्रति 100 ग्राम शुष्क भार)					(भाग प्रति दस लाख)				
पी सेजोर-काजू	3260	760	221	60	20	12.4	0.3	29	12.2	3.2
पी. फ्लोरिडा	4660	1850	192	62	24	18.4	0.5	11.5	15.8	1.5

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि अन्य फसलों की भाँति ही मशरूम भी मौसम के अनुसार पैदा होने वाली प्रजातियाँ हैं। साथ ही तालिका 1-3 में प्रस्तुत विवरण से मशरूम की प्रजातियों की गुणवत्ता और विविधता स्पष्ट होती है। मानव भोजन को पौष्टिक और स्वास्थ्यवर्धक बनाने हेतु इसमें विविध प्रकार के मशरूम का समावेश महत्वपूर्ण है। उत्तर प्रदेश के अधिकांश क्षेत्रों में मशरूम का उत्पादन एंव प्रचुर उपलब्धता अत्यन्त सीमित समय (दिसंबर से फरवरी) के लिए होती है। इस कमी को पूरा करने हेतु विविध मशरूम उत्पादन करना आवश्यक है। शीतकाल में बटन मशरूम के साथ-साथ ढ़िगरी और ग्रीष्मकाल में दूधिया मशरूम की खेती

को अपनाकर वर्ष में 8-10 महीनों तक मशरूम का उत्पादन कर वर्ष भर नियमित रोजगार प्राप्त किया जा सकता है। उपरोक्त परिप्रेक्ष्य में ढ़िगरी और दूधिया मशरूम की खेती करने हेतु आवश्यकताएँ और विधि का संक्षिप्त विवरण देना प्रासंगिक है जिससे कृषक बंधु इन मशरूम को अपना सकें।

मशरूम उत्पादन हेतु प्रारम्भिक तैयारियाँ

मशरूम उत्पादन की सफलता बीज की उपलब्धता सुनिश्चित कर बाजार की माँग को ध्यान में रखकर पूरे वर्ष मशरूम उत्पादन करने में निहित है। मशरूम उत्पादन का कार्य अधिक श्रमशील नहीं है। अधिकांश कार्य महिलाओं द्वारा भी किया जा सकता हैं। चूँकि यह एक वैज्ञानिक खेती है, इसे प्रारम्भ करने से पूर्व प्रशिक्षण प्राप्त करना आवश्यक है। साथ-ही-साथ अच्छे उत्पादन हेतु अर्जित अनुभव भी महत्वपूर्ण है। अतः शुरुआत हमेशा ही छोटे स्तर से करनी चाहिये। इससे योजनाबद्ध कार्यक्रम के साथ व्यापारिक उन्नति होती है।

मशरूम की सघन खेती द्वारा 12×12 फीट के उत्पादन कक्ष से प्रति वर्ष अधिकतम 400 किलोग्राम उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। ढ़िगरी और दूधिया मशरूम के लिए प्रति तीन उत्पादन कक्ष के अनुपात में एक-एक बिजाई एवं कवक जाल फैलाव कक्ष की आवश्यकता होती है। अतः सर्वप्रथम वार्षिक उत्पादन लक्ष्य निश्चित करना चाहिए। उसी के अनुरूप मशरूम उत्पादन गृह का निर्माण करना चाहिए। उत्पादन गृह के क्षेत्रफल एवं वार्षिक पोषाधार की आवश्यकता के अनुरूप भण्डार कक्ष का निर्माण भी आवश्यक है। मशरूम उत्पादन हेतु निर्वाध स्वच्छ जल आपूर्ति व्यवस्था भी आवश्यक है। वर्ष भर बटन मशरूम उगाने हेतु आर्द्रता युक्त वातानुकूलन की व्यवस्था करते हैं। बटन-मशरूम कम्पोस्ट बनाने हेतु साधारण या पास्तुरीकरण सुविधा युक्त कम्पोस्टिंग अहाता भी आवश्यक है।

मशरूम उत्पादन हेतु कच्चा एवं पक्का दोनों प्रकार का कक्ष प्रयोग किया जा सकता है। कक्ष के आकार के अनुसार आमने सामने की दीवारों में आवश्यक क्षेत्रफल वाले खिड़कियाँ एवं रोशनदान होने चाहिये जिनसे कक्ष में पर्याप्त प्रकाश एवं वायु का आवागमन हो सके। मशरूम की थैलियाँ व्यवस्थित करने हेतु कक्ष पूर्ण क्षमता उपयोग करते हुए चार तल वाली ताखें (रेक्स) खड़ी करनी चाहिए। ताखें बाँस या जी.आई. एंगिल से तैयार की जाती हैं। ताखों के तलों के बीच 45 सेंटीमीटर की दूरी एवं दो ताखों के बीच एक मीटर की दूरी रखना चाहिये। कक्ष में समुचित प्रकाश व्यवस्था, पंखा, हाइग्रोमीटर, तापमाँपी, आर्द्रता उत्प्रेरक यंत्र (ह्यूमिडीफायर) आदि की व्यवस्था करना चाहिये। उपरोक्त भवन व्यवस्था करने के उपरांत पोषाधार, छिड़काव मशीन, ताखें, पॉलिथीन चादर और थैलियाँ, ड्रम, सुतली, रसायन, बीज आदि की व्यवस्था करना चाहिए।

मशरूम स्पान (बीज)

मशरूम उत्पादन हेतु प्रयोग किये जाने वाला स्पान गेहूँ के दानों में उगा हुए कवक जाल होता है। इसे बीज उत्पादन प्रयोगशाला में तैयार किया जाता है।

ढ़िगरी मशरूम (*प्लूरोटस फ्लोरिडा, पी. सेजोरकाजू* आदि)

ढ़िगरी मशरूम शीतकाल में सामान्य तापक्रम (10-28° सेल्सियस) पर अक्टूबर से मार्च तक गेहूँ के भूसे या धान के पुवाल पर उगाया जाता है। इसको उगाने की विधि अत्यन्त सरल एवं कम खर्चीली है।

उत्पादन विधि

पोषाधार (भूसा) का उपचार : भूसे में उपस्थित हानिकारक जीवों एवं उनके बीजों का नाश करने हेतु भूसे का उपचार निम्नलिखित में से किसी एक विधि द्वारा करना चाहिये।

गर्म पानी द्वारा : भूसे को 80° सेल्सियस से अधिक गर्म पानी में एक घंटे तक उपचारित कर उसी पानी में 14-16 घंटे भीगनें दें।

रासायनिक : इस विधि से उपचार हेतु 200 लीटर क्षमता के ड्रम में 135 लीटर पानी भरकर उसमें 10.0 ग्राम बेविस्टीन एवं 160 मिलीलीटर फार्मेल्डिहाड घोलकर भूसे को दबा-दबा कर डुबोना चाहिये। ड्रम को वायुरोधी ढक्कन से मजबूती से बंद करना चाहिये।

उपचारित भूसे को 14-16 घंटे भीगने के बाद तार की बड़ी चलनी पर जल रिसाव हेतु पलट देना चाहिये। एक घंटे के जल रिसाव के उपरान्त भूसे को पॉलिथीन की चादर या स्वच्छ एवं विसंक्रमित पक्के फर्श पर लगभग 1.0 इंच मोटा फैलाकर धूप में सुखाना चाहिए। भूसे को समान रूप से सुखाने हेतु उलट-पलट आवश्यक है। उचित नमी (65-70%) अवस्था पर भूसे को एकत्र कर बिजाई हेतु कक्ष में ले जाना चाहिये।

बिजाई : बिजाई हेतु एक किलोग्राम भूसे को पॉलिथीन थैलियों में भरकर दबाने एवं समतल करने के बाद 30 ग्राम स्पान समान रूप से छिटक दें। इस सतह पर एक किलोग्राम भूसे की दूसरी तह बनाकर 30 ग्राम स्पान बिखेर दें। तत्पश्चात एक किलोग्राम

भूसे की अन्तिम तह बिछाकर ऊपर से नीचे की ओर बलपूर्वक दबाते हैं। तैयार थैली का मुँह सुतली से बाँधकर बाँस की ताख पर स्थापित करें। साथ ही थैली के अन्दर उत्पन्न होने वाली जल वाष्प की मुक्ति हेतु थैली के नीचे के दोनों कोनों को थोड़ा-थोड़ा काटें एवं ऊपरी भाग पर विसंक्रमित सुई द्वारा 20-25 छिद्र उत्पन्न करें। तैयार थैलियों में कवक वृद्धि का प्रतिदिन निरीक्षण करें।

फसल प्रबंधन : बिजाई के 20-25 दिन बाद कवक जाल फैल जाता है। पूर्ण कवक जाल फैलाव के बाद थैलियों को उत्पादन कक्ष में रखकर पॉलिथीन को काटकर हटा देते हैं और दिन में चार-पाँच बार जल का छिड़काव पूरे फसल काल में करते रहते हैं। पॉलिथीन हटाने के 7-10 दिन बाद मशरूम कलिकायें उत्पन्न होना प्रारंभ होती हैं। उत्पादन के समय कक्ष की वायु में 80 प्रतिशत से अधिक आर्द्रता एवं तापमान 15-28° सेल्सियस के मध्य रहना चाहिये। आर्द्रता एवं तापमान के साथ कक्ष में कार्बन डाईआक्साइड की मात्रा को संतुलित रखने हेतु सीमित वायु संचार व्यवस्थित करना चाहिये।

तुड़ाई एवं उपज : मशरूम फलकाय के किनारे मुड़ने लगे तो उसे थोड़ा सा घुमाकर खींच लेना चाहिये। प्रत्येक तुड़ाई के 7-10 दिन बाद पुनः मशरूम उगता है एवं 40-50 दिन के फसल काल में 4-7 बार तुड़ाई होती है। फसल तुड़ाई के समय ही फलकाय के निचले भाग को तेज धार वाले चाकू से थोड़ा सा काटकर ही थैली में डालना चाहिये। समुचित प्रबंधन से की गयी फसल से 75 किलोग्राम मशरूम प्रति 100 किलोग्राम भूसा औसत उपज प्राप्त होती है।

तुड़ाई उपरान्त प्रबंधन : तुड़ाई किये हुए मशरूम को आवश्यकतानुसार छिद्र युक्त पोलीप्रोपेलीन थैलियों में भरकर बंद कर देना चाहिये। यदि आवश्यक हो तो इसे 5° सेल्सियस पर 2-3 दिन तक भंडारित कर सकते हैं।

दूधिया मशरूम (*कैलोसाइब इंण्डिका*)

दूधिया मशरूम सामान्य तापक्रम (25-40° सेल्सियस) पर मार्च के द्वितीय पखवाड़े से अक्टूबर माह के अन्त तक सफलतापूर्वक उगाया जाता है।

उत्पादन विधि

पोषाधार (भूसा) का उपचार : भूसे में उपस्थित हानिकारक जीवों एवं उनके बीजों का नाश करने हेतु भूसे का उपचार गर्म पानी द्वारा या रासायनिक विधि से ढ़िगरी मशरूम की तरह करना चहिये। उचित नमी (60-65 प्रतिशत) अवस्था पर भूसे को एकत्र कर बिजाई हेतु कक्ष में ले जाना चाहिये।

बिजाई : बिजाई हेतु 1200 ग्राम गीले भूसे को पॉलिथीन थैलियों में भरकर दबाने एवं समतल करने के बाद 30-40 ग्राम स्पान समान रूप से छिटक दें। इस सतह पर 1100 ग्राम भूसे की दूसरी तह बनाकर 30-40 ग्राम स्पान बिखेर दें। तत्पश्चात 700 ग्राम भूसे की अन्तिम तह बिछाकर ऊपर से नीचे की ओर बलपूर्वक दबाते हैं। तैयार थैली को ढ़िगरी मशरूम की तरह ताख पर स्थापित कर एवं थैलियों में कवक वृद्धि का निरीक्षण प्रतिदिन करें।

आवरण मृदा बिछाना : कृषि या बाग की 25 किलोग्राम दोमट मृदा एवं 25 किलोग्राम पुरानी-सड़ी हुई गोबर की खाद को आपस में मिलाकर फार्मेल्डिहाइड के 2.0 प्रतिशत घोल से गीला कर पॉलिथीन थैलियों में भरकर बंद करें। तीन दिन के पश्चात उपचारित मृदा को विसंक्रमित पॉलिथीन चादर पर फैलाकर फार्मेल्डिहाइड की गंध समाप्त होने तक दो-दो घंटे के अन्तराल पर उलट-पलट करते हैं। मृदा मिश्रण को जल वाष्प से भी उपचारित कर सकते हैं। पूर्ण कवक जाल फैलाव के उपरांत 0.5 सेंटीमीटर मोटी आवरण मृदा थैली का मुँह खोलकर बिछाना चाहिये।

फसल प्रबंधन : बिजाई के 15-20 दिन उपरान्त कवक जाल फैल जाता है और आवरण मृदा बिछाने के 10-12 दिन बाद मशरूम कलिकायें उत्पन्न होना प्रारम्भ होता है।

तुड़ाई एवं उपज : मशरूम फलकाय की लम्बाई 10-15 सेटीमीटर एवं भार 70 ग्राम के आसपास हो तो उसे थोड़ा सा घुमाकर खींच लेना चाहिये। तुड़ाई के समय ही फलकाय के निचले भाग को तेज धार वाले चाकू से थोड़ा सा काटकर सीधे पानी में डालना चाहिये। समुचित प्रबंधन से की गयी फसल से 75 किग्रोग्राम प्रति 100 किलोग्राम भूसा औषत उपज प्राप्त होती है।

तुड़ाई उपरान्त प्रबंधन : तुड़ाई किये मशरूम को 0.1 प्रतिशत साइट्रिक अम्ल एवं 1.0 प्रतिशत साधारण नमक के घोल में डुबोने के बाद स्वच्छ कपड़े पर 30 मिनट तक फैलाना चाहिये। आवश्यकतानुसार छिद्र युक्त पोलीप्रोपेलीन थैलियों में मशरूम को भरकर बंद कर देना चाहिये। भंडारण आवश्यक होने पर 5° सेल्सियस पर 10 दिन तक एवं सामान्य (25-30° सेल्सियस) पर 2 दिन तक रख सकते हैं।

ढ़िगरी और दूधिया मशरूम फसल उत्पादन की समस्याएँ: लगातार खेती करने पर विभिन्न प्राकृतिक शत्रु बाधा उत्पन्न करते हैं जिनसे बचाव एवं नियंत्रण के द्वारा लगातार अच्छा उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

विभिन्न प्रकार के फफूँद उपचारित भूसे में उसे सुखाने या बिजाई के समय संक्रमण करते हैं जिससे कवक जाल फैलाव के समय मशरूम के जाल के स्थान पर संक्रमण कारी फफूँद उगकर

थैलियाँ व्यर्थ कर देते हैं। इनसे बचाव हेतु भूसे का समुचित उपचार एवं हाथ-पैर पॉलिथीन चादर आदि की सफाई पर विशेष ध्यान दें। संक्रमित थैली को हटाकर भूमिगत करें।

कुछ कवक आवरण मृदा के ऊपर उगकर मशरूम की उपज को हानि पहुँचाते हैं। आवरण मृदा में संक्रमण होने पर उसे हटाकर 2 प्रतिशत फार्मेल्डिहाइड का हल्का छिड़काव करना चाहिये जिसके 2-4 घंटे बाद नयी मृदा बिछाने पर पुनः उत्पादन होता है।

गन्दे हाथ-पैर एवं भंडारित जल के प्रयोग से जीवाणु जनित समस्याएँ कवक जाल फैलाव एवं फलकाय के स्वास्थ को प्रभावित करती हैं। अतः सफाई रखें और ताजे जल का प्रयोग करें।

यदि डिप्टेरियन एवं फोरिड मक्खियाँ उपचारित भूसे में अंडे देती हैं तो कवक जाल फैलाव और यदि उत्पादन कक्ष में प्रवेश पा जाती हैं तो मशरूम फलकाय को क्षति पहुँचाती हैं। उत्पादन कक्ष में प्रवेश रोकने हेतु खिड़कियों आदि पर 35 मेश की जाली लगायें तथा दरवाजा सदैव बंद रखें। कक्ष में उपस्थित मक्खियों के नियंत्रण हेतु पीले रंग के कागज-प्रकाश-ट्रेप लगायें एवं अधिकता की स्थिति में डाईक्लोरवोस कीटनाशक 0.1 प्रतिशत सांध्रता पर दीवारों आदि पर छिड़कें। ध्यान रखें कि इस कीटनाशक विष को उगते हुए मशरूम पर न छिड़कें।

सामान्य सावधानी के रूप में प्रत्येक फसल समाप्त होने पर उत्पादन कक्ष को पूर्णतः खाली एवं साफ कर फार्मेल्डिहाइड के 4 प्रतिशत के घोल का छिड़काव करें।

ढ़िगरी और दूधिया मशरूम फसल उत्पादन का प्रवाह चित्र

नया, रोग-कीट रहित गेहूँ का भूसा या पुवाल

↓

भूसे का उपचार (गर्म पानी (85° सेल्सियस) द्वारा एक घंटे या कार्बेन्डाजिम-7.5 ग्राम + फार्मेल्डिहाइड 125 मिलीलीटर प्रति 100 लीटर पानी में 14-16 घंटे)

↓

धूप में सुखाना (1.5-2.0 सेंटीमीटर मोटा फैलाकर 4-6 घंटे)

↓

बिजाई (ढ़िगरी 65-70 और दूधिया 60-65 प्रतिशत नमी पर गीले भूसे के 2-2.5 प्रतिशत की दर पर)

↓

कवक जाल फैलाव (ढ़िगरी 22-26° सेंटीमीटर और दूधिया 28-32° सेल्सियस तापक्रम पर 20-22 दिन में)

↓

पूर्ण कवक जाल फैलाव के उपरांत ढ़िगरी मशरूम के लिए पॉलिथीन थैली काटकर हटाना और दूधिया मशरूम के लिए थैली का मुहँ खोलकर आवरण मृदा बिछाना

↓

फलकाय उत्पन्न होना (ढ़िगरी 14-28° सेल्सियस दूधिया 25-40° सेल्सियस तापक्रम, 80-90 प्रतिशत नमी पर 7-10 दिन में)

↓

तुड़ाई (पानी छिड़कनें से पहले)

↓

सफाई एवं थैलीकरण (फलकाय को कम से कम चोट पहुँचाते हुए)

↓

भंडारण और विपणन (ताजा मशरूम-4-5° सेल्सियस पर ढ़िंगरी 2 और दूधिया 7 दिन तक)

मसाला वर्गीय फसलों के प्रमुख कीट तथा उनका प्रबंधन

घनानन्द तिवारी[1], बी.पी. शाही[2] एवं अशोक[3] कुमार
श्रीराम फर्टिलाइजर्स एण्ड केमिकल्स, बरेली कृषि विज्ञान केन्द्र, सहारनपुर

प्राचीनकाल से ही भारत को मसालों की भूमि के नाम से जाना जाता रहा है। भारत का मसालों के उत्पादन एवं खपत दोनों ही दृष्टि से विश्व में प्रथम स्थान है। इलायची, अदरक, हल्दी, काली मिर्च, जायफल, वैनिला, जावित्री, मिर्च लौंग, केसर, प्याज, लहसुन, पुदीना, दालचीनी, तेजपत्ता, सौंफ, जीरा, धनिया, मेथी आदि भारत में पैदा की जाने वाली प्रमुख मसाला वर्गीय फसलें हैं। स्वाद तथा मनमोहक सुगंध के कारण मसालों की उपयोगिता होती है जिसके कारण ये मसाले भोज्य पदार्थों में जब डाले जाते हैं तो वे उनको स्वादिष्ट, सुगंधित एवं मनमोहक बनाते हैं। मसालों में सुगंध उनमें पाये जाने वाले तेल के कारण होती है जबकि बहुत से मसालों में कुछ 'एल्कलॉइड भी पाये जाते हैं जिसके कारण उनमें विशेष प्रकार का तीखापन अथवा चरपराहट होती है जो भोजन को और अधिक स्वादिष्ट बनाती है।

कुछ ऐसे भी मसाले हैं जिनका प्रयोग भोज्य पदार्थों में स्वाद की वृद्धि के साथ-साथ उनके परिरक्षण के लिए भी किया जाता है। राई एवं हल्दी का प्रयोग कई प्रकार के अचार में परिरक्षण के लिये किया जाता है जो अचार को परिरक्षित करने के साथ-साथ उनके स्वाद मे भी वृद्धि करता है। उपरोक्त गुणों के साथ-साथ सभी मसालों में औषधीय गुण के कारण इनका उपयोग रोगों की दवाओं के रूप में प्राचीनकाल से ही होता आ रहा है। घरेलू दवाओं के अलावा मसालों का उपयोग आयुर्वेदिक तथा यूनानी पद्धति की बहुत सी औषधियों में भी किया जाता है।

भारत में मसालों की खेती अन्य फसलों की तुलना में कम क्षेत्रफल में की जाती है। भारतीय किसान उन्नत किस्म के बीज, उपयुक्त उर्वरक एवं अन्य उपायों को अपनाकर भी मसाले का अधिकाधिक उत्पादन करने के अपने लक्ष्य में अभी भी सफल नहीं हो पा रहे हैं जिसका एक प्रमुख कारण इनमें लगने वाले कीट हैं। मसालों में कीटों का प्रकोप फसल की बोआई से लेकर कटाई तक होता है जिसके कारण फसल की पैदावार काफी कम हो जाती है। अतः अधिक एवं गुणवत्तायुक्त उत्पादन के लिए समयानुसार इन कीटों का नियंत्रण आवश्यक हो जाता है जिससे फसल की प्रचुर पैदावार मिल सके।

[1,2]विषय विशेषज्ञ एवं [3]तकनीकी अधिकारी

(क) अदरक के प्रमुख कीट

तना बेधक कीट

इस कीट का प्रौढ़ मध्यम आकार का पीलापन लिए हुए सफेद रंग का पतंगा होता है। मादा कीट पत्तियों के निचली सतह पर अण्डे देती है जिससे 6-7 दिन में सूड़ी निकलती है। इसके मुखांग काटने और चबाने वाले होते हैं जो पौधे के ऊपरी तने में छेद कर प्रवेश कर जाती हैं और नीचे की तरफ सुरंग बनाते हुए भीतरी पदार्थ को खाती हैं। इससे प्रभावित पौधे पूरी तरह से सूख जाते है।

प्रबंधन

1 खेत की ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करनी चाहिए।

2 ग्रस्त पौधों एवं टहनियों को नष्ट कर देना चाहिए।

3 आवश्यकता होने पर इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस. सी. अथवा कार्बेरिल 50 डब्लू. पी. 0.2 मिलीलीटर प्रति लीटर की दर से 10-12 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें।

4 डी.डी.वी.पी. की 150-350 ग्राम मात्रा या प्रोफेनफास 50 प्रतिशत की 400-500 मिलीलीटर या डाईफेन्थ्युरान की 250-350 ग्राम मात्रा प्रति एकड़ की दर से प्रयोग करें।

राइजोम मैगट

इस कीट का प्रौढ़ आकार में काफी छोटा होता है जिसका केवल एक जोड़ा अग्र पंख ही पाया जाता है। इस कीट की मैगट अवस्था हानिकारक होती है जिसके मुखांग काटने एवं चबाने वाले होते हैं। मैगट कन्द में घुसकर मुलायम ऊतकों को खाते रहते हैं जिसके परिणामस्वरूप अदरक में सड़न आ जाती है। जब इनका प्रकोप अधिक हो जाता है तो ऐसी स्थिति में पूरा का पूरा पौधा ही सूख जाता है। पौधों की छोटी अवस्था में मैगट पौधे के ऊपरी राइजोम में भी क्षति पहुँचाता है। अदरक के अलावा यह कीट इलायची को भी नुकसान पहुँचाता है।

प्रबंधन

1. गर्मियों में खेत में गहरी जुताई करनी चाहिए।

2 अदरक में मिट्टी चढ़ाते समय 20 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर

की दर से दानेदार कार्बोफ्यूरान-3 जी को पक्तियों में डालकर हल्की मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए।

3. मोनोक्रोटोफास 36 ई.सी. को एक मिलीलीटर प्रति लीटर पानी की दर से 10-12 दिन के अंतराल पर 2-3 छिड़काव करना चाहिए।

4 इमामेक्टिन बेन्जोएट की 60-70 ग्राम मात्रा प्रति एकड़ की दर से प्रयोग करें।

(ख) जीरा तथा अजवाइन के कीट

लाल बालदार सूड़ी

यह एक बहुभक्षी स्वभाव का कीट होता है जिसका सूड़ी हानिकारक होती है। इसका मुखांग काटने एवं चबाने वाला होता है। पूर्ण विकसित सूड़ी लाल भूरे रंग की होती है और इसके शरीर पर लंबे बाल पाये जाते हैं। प्रौढ़ कीट मध्यम आकार का पतंगा होता है। इसके अग्र पंख सफेद रंग के होते हैं तथा पीछे वाले पंख पर काले निशान पाये जाते हैं। मादा कीट पत्तियों की निचली सतह पर अण्डे देती है जिससे 3-4 दिन में सूड़ियाँ निकलती हैं। शुरू में ये सतह में खाती है और बाद में पूरे खेत में फैल जाती है। ये इतनी तेजी से खाती हैं कि कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि पूरा का पूरा खेत पशुओं के द्वारा चर लिया गया हो। सूड़ी जमीन में जाकर प्यूपा में बदल जाती है।

प्रबंधन

1. गर्मी में जुताई करने से खेत में प्यूपा आदि नष्ट हो जाते हैं।

2 अण्डों/सूड़ी के गुच्छों को हाथ से पत्ती सहित तोड़कर नष्ट कर देना चाहिए।

3 आवश्यकतानुसार इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.सी. अथवा क्वीनालफास 25 ई.सी. 2 मिलीलीटर/लीटर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

कुतरा या कटुआ कीट

यह एक रात्रिचर तथा बहुभक्षी स्वभाव का कीट होता है जो दिन के समय जमीन में छिपे रहते हैं। ये रात्रि में जमीन से बाहर आकर नये उगे छोटे पौधों को जमीन की सतह से काट देते हैं जिससे काफी हानि होती है। वयस्क कीट भूरे रंग का होता है जबकि सूड़ी स्लेटी रंग की व 2.5-3.0 सेंटीमीटर लंबी होती है। इस कीट की सूड़ी नुकसान पहुँचाती है जिसका मुखांग काटने और चबाने वाला होता है। इस कीट की सूड़ी खाता कम है परन्तु काटकर हानि अधिक पहुँचाता है। इनका प्रकोप ढेले वाले खेतों में बहुत ही अधिक होता है।

प्रबंधन

1. गर्मियों में खेत की जुताई करने से प्यूपा आदि नष्ट हो जाते हैं।

2 अधिक मात्रा में सिंचाई करने से सूड़ियाँ मर जाती हैं।

3 खेतों में प्रकाश प्रपंच (लाइट ट्रेप) लगाकर वयस्क पतंगो को आकर्षित कर नष्ट कर देना चाहिए।

4 जमीन में आखिरी जुताई के समय मैलाथियान या कार्बारिल धूल 25-30 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से मिलाना चाहिए।

5 आवश्यकता होने पर फोरेट 10 जी या कार्बोफ्यूरान 3 जी की 8-10 किलोग्राम मात्रा प्रति एकड़ की दर से प्रयोग करें।

(ग) हल्दी के हानिकारक कीट

प्ररोह बेधक या ऊतक बेधक

यह हल्दी को अत्यधिक नुकसान पहुँचाने वाला कीट हैं। इस कीट की सूड़ी हानिकारक होती है जो बढ़ते हुए प्ररोह को बेधती है जिससे पौध में मृत गोप बनता है। बाद में सूड़ियाँ कलियों में भी छेद कर उन्हें खाती हैं। इस प्रकार पूरा का पूरा पौधा ही मर जाता है।

प्रबंधन

1. ग्रस्त पौधे को उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए।

2. बी.टी.1 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़कना चाहिए।

3. फसल पर डायमेथोएट 30 ई.सी. अथवा मेथाइल डेमेटान 25 ई.सी.1.5 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करना चाहिए।

हल्दी की पर्ण कुंचन तितली

इस कीट की मादा पत्तियों की निचली सतह पर अंडे देती हैं जिनसे लगभग एक सप्ताह में सूड़ी निकलती है। इनका रंग हरा होता है जो पत्तियों को मोड़कर उन्हें भीतर से खाना शुरू कर देती हैं। पूरे खेत में इस तरह से मुड़ी हुई पत्तियाँ स्पष्ट दिखायी देती हैं जिससे उनकी बढ़वार रुक सी जाती है। लगभग 2 सप्ताह में सूड़ियाँ पूर्ण विकसित हो जाती हैं तथा प्यूपा में बदल जाती है और इस प्यूपा से लगभग एक सप्ताह में प्रौढ़ तितली निकल आती है।

प्रबंधन

1. प्रकोप की प्रारंभिक अवस्था में सूड़ियों को पकड़ नष्ट कर देना चाहिए।
2 नीम का सत (नीम सीड कर्नल इक्स्ट्रेक्ट) 5 प्रतिशत दो बार छिड़काव करना चाहिए।
3 आवश्यकता पड़ने पर क्वीनालफास 25 ई.सी. 2 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करना चाहिए।

थ्रिप्स

इस कीट के निम्फ एवं वयस्क दोनों ही अवस्था मुलायम पत्तियों का रस चूसते हैं जिससे पत्तियाँ पीली पड़कर गोलाई में मुड़ जाती है तथा बढ़वार भी रुक जाती है। दिन की तेज रोशनी में पर्ण आवरण में यह कीट छिपा रहता है तथा सुबह एवं शाम को काफी सक्रिय पाया जाता है। हल्दी में इस कीट का अधिक प्रकोप देखा गया है।

प्रबंधन

1. अधिक सुग्राही किस्मों को नहीं लगाना चाहिए।
2. नाइट्रोजन उक्त उर्वरकों का अधिक मात्रा में प्रयोग नहीं करना चाहिए।
3. 5 प्रतिशत एन.एस.के.ई. का दो बार छिड़काव करना चाहिए।
4. अधिक प्रकोप होने की दशा में प्रमुख कीटनाशक जैसे क्वीनालफास 25 ई.सी. 2 मिलीलीटर अथवा मोनोक्रोटोफास 36 ई.सी. या इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. की 1 मिलीलीटर मात्रा प्रति लीटर की दर से छिड़काव करना चाहिए।
5. लैम्डासायहेलाथ्रिन 5 ई.सी. की 100-200 मिलीलीटर मात्रा प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करना चाहिए।
6. टाईएजोफास 40 ई.सी. की 600-800 मिलीलीटर मात्रा प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करना चाहिए।
7. प्रोफेनफास 50 प्रतिशत की 400-500 मिलीलीटर मात्रा प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करना चाहिए।
8. बुप्रोफेन्जिन की 400-500 मिलीलीटर मात्रा प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करना चाहिए।

सिगरेट बीटिल

यह कीट भंडार गृह का एक प्रमुख कीट है। इस कीट का प्रकोप भंडार में भयंकर रूप से पाया जाता है। इस कीट के ग्रब (गिडार), सफेद, मांसल एवं रोयेदार होते हैं जबकि प्रौढ़ कीट अंडाकार और हल्के लाल रंग का भृंग होता है। इसके शरीर के ऊपरी सतह पर छोटे-छोटे रोये पाये जाते हैं।

प्रबंधन

1. भंडारण से पूर्व भंडार गृह को अच्छी तरह साफ कर कीट रहित कर लेना चाहिए।
2 भंडारण से पूर्व हल्दी के राइजोम को अच्छी तरह से सूखा लेना चाहिए।
3 हल्दी को भंडारण में ई.डी.बी. से धूमन करना चाहिए। धूमन से पहले गोदाम को अच्छी तरह से बन्द कर देना चाहिए।

(घ) धनिया, मेथी एवं सौंफ के कीट

माहू

माहू धनिया के साथ-साथ मेथी और सौंफ को भी नुकसान पहुँचाने वाला एक प्रमुख कीट है। यह छोटा तथा मुलायम शरीर वाला कीट होता है। इस कीट के प्रौढ़ एवं निम्फ दोनों ही पौधे के पत्तियों, तनों पुष्पक्रम एवं कलियों पर झुण्ड में रहकर रस चूसते हैं जिससे पौधे की बढ़वार रुक जाती है। बाद में ये पौधे पीले पड़कर सूख जाते हैं। नुकसान करने के साथ-साथ यह कीट अपने शरीर से चिपचिपा मीठा पदार्थ भी छोड़ते हैं जिस पर काली फफूँद जम जाती है। इसके फलस्वरूप पौधों की प्रकाश संश्लेषण की क्रिया प्रभावित होती है।

प्रबंधन

1. शुरु में आक्रमण ग्रस्त भागों को तोड़कर नष्ट कर दें।
2. फसल में नाइट्रोजन का अधिक प्रयोग न करें।
3. आक्रमण होने पर परभक्षी कीट क्राइसोपर्ला कार्निया 50,000 अण्डे प्रति हेक्टेयर की दर से खेत में छोड़ना चाहिए।
4. नीम के बीज का अर्क (5 प्रतिशत) या 1.25 लीटर नीम का तेल 100 लीटर पानी में मिलाकर छिड़कना चाहिए।
5. दवा का छिड़काव दोपहर दो बजे के बाद करना चाहिए जब मधुमक्खियों की संख्या खेत में कम होती है।

6. इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. की 1 मिलीलीटर मात्रा प्रति लीटर पानी की दर से या मोनोक्रोटोफास की 500 मिलीलीटर मात्रा अथवा 1.0 लीटर डाईमेथोएट 30 ई.सी. को 300 लीटर पानी मे मिलाकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

(ङ) काली मिर्च के कीट

पोलू भृंग

प्रौढ़ भृंग आकार में छोटा एवं चमकीला पीले रंग का होता है। मादा भृंग काली मिर्च के सरस फलों में छेदकर उनमें अंडे देती हैं। इस प्रकार अंडे देने की क्रिया से सरस फलों को हानि होती है। इन अंडों से 7-10 दिनों में हल्के पीले रंग के ग्रब निकल आते हैं जो सरस फलों को खाना प्रारंभ कर देते हैं जबकि प्रौढ़ भृंग पत्तियों एवं फलों को खुरच कर खाते हैं। एक ग्रब लगभग 2-3 सरस फलों को खा जाते हैं। प्यूपा बनने से पहले ग्रब भूमि पर गिरते है और वहीं प्यूपा में बदल जाते हैं।

प्रबंधन

1. गर्मियों में खेत की गहरी जुताई करनी चाहिए।
2. भूमि में कार्बेरिल या फेनवेलरेट धूल 25-30 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से बोआई से पूर्व मिलाना चाहिए।
3. प्रकोप बढ़ने पर मोनोक्रोटोफास 36 ई.सी. एक मिलीलीटर प्रति लीटर की दर से छिड़काव करना चाहिए।
4. प्रोफेनफास 50 प्रतिशत की 400-500 मिलीलीटर या डाईफेन्थ्युरान की 250-350 ग्राम मात्रा प्रति एकड़ की दर से प्रयोग करें।

प्ररोह बेधक

इस भृंग की सूड़ी लता के शीर्षस्थ नर्म प्ररोहों को छेदकर उनके अन्दर के ऊतकों को खाती है। कीट गस्त प्ररोह काले पड़कर सूख जाते है। कीट का प्रकोप मानसून के समय, छोटी लताओं में अधिक होता है।

प्रबंधन

1. ग्रस्त प्ररोहों को तोड़कर नष्ट कर देना चाहिए।
2. इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. अथवा क्वीनालफास 25 ई. सी. के 2 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करना चाहिए।
3. डी.डी.वी.पी. की 150-350 ग्राम मात्रा या प्रोफेनफास 50 प्रतिशत की 400-500 मिलीलीटर या डाईफेन्थ्युरान की 250-350 ग्राम मात्रा प्रति एकड़ की दर से प्रयोग करें।

पत्ती वृण (*लीफ गाल*)

यह कीड़ा लता की पत्तियों पर आक्रमण करता है जिससे पत्तियाँ नीचे की तरफ मुड़ जाती हैं तथा उनके किनारों पर गांठ बन जाती है जिनमें ये कीड़े समूहों में रहते हैं।

प्रबंधन

1. नीम के तेल का 3 प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिए।
2. आवश्यकता होने पर मोनोक्रोटोफास 36 ई.सी.1 मिलीलीटर प्रति लीटर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

(च) मिर्च के प्रमुख कीट

थ्रिप्स

प्रौढ़ कीट लगभग 1 मिलीमीटर लम्बा, कोमल तथा हल्के पीले रंग का होता है। इस कीट के अर्भक पंख रहित होते हैं। इसमें लगे निम्फ (अर्भक) एवं प्रौढ़ कीट दोनों ही अपने मुखांगों की सहायता से पत्तियों का रस चूसते हैं जिससे प्रभावित भाग पीलापन लिए सफेद रंग में बदल जाता है तथा बाद में भूरा दिखायी देने लगता है। इस कीट की संख्या जब अधिक बढ़ जाती है तो उस समय पौधे की बढ़वार रुक जाती है तथा पत्तियाँ सिकुड़कर ऐंठ जाती हैं। निम्फ एवं प्रौढ़ प्रायः पत्तियों की निचली सतह पर पाये जाते हैं जो सुबह और शाम के समय अधिक सक्रिय दिखायी देते हैं।

प्रबंधन

1. अत्यधिक ग्राही किस्मों की पैदावार नहीं करनी चाहिये।
2. एन.एस.के.ई. 5 प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिए।
3. क्वीनालफास 25 ई.सी., 1.5-2.0 मिलीलीटर या मोनोक्रोटोफास 36 ई.सी या इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. की 1.0 मिलीलीटर मात्रा/लीटर की दर से छिड़काव करना चाहिए।
4. लैम्डासायहेलाथ्रिन 5 ई.सी. की 100-200 मिलीलीटर मात्रा/एकड़ की दर से छिड़काव करना चाहिए।
5. टाईएजोफास 40 ई.सी. की 600-800 मिलीलीटर मात्रा/एकड़ की दर से छिड़काव करना चाहिए।

6. प्रोफेनफास 50 प्रतिशत की 400-500 मिलीलीटर मात्रा/एकड़ की दर से छिड़काव करना चाहिए।
7. बुप्रोफेन्जिन की 400-500 मिलीलीटर मात्रा/एकड़ की दर से छिड़काव करना चाहिए।

माहू

माहू का शरीर काफी मुलायम, अंडाकार तथा शरीर की लंबाई लगभग 2 मिलीमीटर होती है। उदर पर दो नुकीली मधु नलिकायें पायी जाती हैं जिससे मीठा द्रव स्रावित होता रहता है। यह कीट कालोनी बनाकर पौधों के ऊपर दिखायी देता है। माहू के अर्भक (निम्फ) एवं प्रौढ़ दोनों ही अपनी चूसने वाले मुखांगो की सहायता से मुलायम पत्तियों, शाखाओं, फलों आदि का रस चूसते हैं जिससे पौधों की बढ़वार एक कर पत्तियाँ सिकुड़ जाती है जो बाद में पीली पड़कर सूख जाती हैं। अधिक प्रकोप होने पर उपज में भारी कमी आ जाती है।

प्रबंधन

1. नाइट्रोजन एवं पोटाश युक्त उर्वरकों को संतुलित मात्रा में उपयोग करें।
2. फसल में कीट के साथ-साथ परभक्षी कीट जैसे सिरफिड, क्राइसोपर्ला तथा कोक्सीनेला आदि पाये जाते हैं। इन परभक्षी कीड़ों का संरक्षण करना चाहिए।
3. नीम के तेल 3 प्रतिशत या नीम की निबोली सत 5 प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिए।
4. आवश्यकता होने पर सायपरमेथ्रिन 25 ई.सी. अथवा डायमेथोएट 30 ई.सी. 1.5-2.0 मिलीलीटर/लीटर की दर से छिड़काव करना चाहिए।
5. आवश्यकता पड़ने पर थायोमेक्जाम ई.सी. की 80 ग्राम मात्रा या प्रोफेनफास 50 प्रतिशत की 400-500 मिलीलीटर या डाईफेन्थ्युरान की 250-350 ग्राम मात्रा प्रति एकड़ की दर से प्रयोग करें। रसायनों का छिड़काव हमेशा सायंकाल में ही करना चाहिए।

कटुवा कीट

जीरा तथा अजवाइन के हानिकारक कीट की भाँति।

टारसोनेमिड माइट

प्रौढ़ काफी छोटे, मुलायम और पीले रंग के अटिपादी होते हैं। इनके पृष्ठ भाग पर सफेद रंग की धारियां पायी जाती हैं। प्रौढ़ अष्टपादी (माइट) में चार जोड़े पैर मिलते हैं जबकि शिशु में सिर्फ 3 जोड़े पैर मिलते हैं। माइट मिर्च की फसल में पर्ण कुंचन (लीफ कर्ल) रोग फैलाते हैं। क्षतिग्रत पौधे की पत्तियाँ मुड़कर ऐंठ जाती है तथा आकार में छोटी रह जाती है। प्रभावित पौधों पर फल बहुत ही कम बनते हैं तथा पौधा मुर्दे के समान हो जाता है। इस रोग को मिर्च का मुर्दा रोग भी कहते हैं।

प्रबंधन

1. डायमेथोएट 30 ई.सी. रसायन की 1.5 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी की दर से 2-3 छिड़काव 10-12 दिन के अंतराल पर करना चाहिए। फलत की दशा में इस दवा का छिड़काव बंद कर देना चाहिए। अगर इस दवा का छिड़काव करना ही पड़े तो हरी फलियों को 7-8 दिन के बाद ही तोड़ना चाहिए।
2. चूना-गंधक की धूल का बुड़काव करना चाहिए।

(छ) दालचीनी के प्रमुख कीट

दालचीनी की तितली

यह नये पौधों एवं नर्सरी का प्रमुख कीट है जो प्रायः मानसून के बाद दिखायी देती है। कीट बड़े आकार का एवं दो रंगो का होता है। पहले का शरीर सफेद एवं धब्बेदार काले भूरे पंख तथा दूसरे का नीले निशानयुक्त काले रंग के पंख होते हैं। इस कीट के सूड़ी हानिकारक होती है जिनका मुखांग काटने तथा चबाने वाला होता है। ये कोमल पत्तियों को खाती हैं। अधिक प्रकोप होने पर पत्तियों की केवल शिरायें ही दिखायी देती हैं जिसके फलस्वरूप पौधों की बढ़वार रुक जाती है और काफी हानि होती है। पूर्ण विकसित सूंड़ी लगभग 2.5 सेंटीमीटर लंबा तथा बगल में काले धारी सहित हल्के पीले रंग की होती है।

प्रबंधन

हल्दी की तितली के प्रबंधन की तरह से।

पर्ण सुरंगक कीट

वयस्क मक्खी चमकीली स्लेटी रंग एवं छोटे आकार की होती है पूर्ण विकसित मैगट हल्के स्लेटी रंग का लगभग 10 मिलीमीटर लम्बा होता है। ये पत्तियों में सुरंग बनाकर पत्तियों के हरे भाग को खाती हैं जिससे पत्तियों के ऊपरी सतह पर सफेद धारियाँ एवं छाले जैसी दिखायी देती हैं। इसके प्रकोप के कारण पौधे में प्रकाश संश्लेषण की क्रिया बाधित होती है जिससे पत्तियाँ और पौधे कमजोर हो कर सूख जाते हैं।

प्रबंधन

माहू के प्रबंधन की तरह से।

(ज) वैनिला के प्रमुख कीट

चूसक कीट (*हेलियोमोरफा स्पीसीज*)

इस कीट के निम्फ एवं वयस्क दोनों ही तने के ऊपरी पुष्पक्रम का रस चूसते हैं जिससे पौधे पीली पड़ जाते हैं तथा उनकी बढ़वार रुक जाती है।

प्रबंधन

माहू के प्रबंधन की तरह से।

स्केल कीट

इस कीट के निम्फ एवं वयस्क दोनों ही मुलायम पत्तियों एवं तनों का रस चूसते हैं जिससे पत्तियाँ पीली पड़कर मुड़ जाती हैं तथा बढ़वार रुक जाती है।

प्रबंधन

माहू के प्रबंधन की तरह से।

(झ) जायफल के प्रमुख कीट

परिरक्षक शल्क कीट (*प्राटोपर्लीविनेरिया मैन्जीफेरी*)

इस कीट के वयस्क अंडाकार एवं भूरे रंग के होते हैं। यह नर्सरी पौधों का प्रमुख कीट है। इस कीट के निम्फ एवं वयस्क दोनों ही मुलायम और नयी पत्तियों तथा तनों का रस चूसते है जिससे पत्तियाँ पीली हो जाती हैं तथा तना सूख जाता है।

सफेद शल्क कीट (*स्युडोलाकेस्पिस कोकीरीली*)

इस कीट के वयस्क भूरी सफेद, सपाट और मछली के शल्क के आकार के होते हैं। इस कीट के निम्फ एवं वयस्क दोनों ही मुलायम नर्सरी पौध के पत्तियों के निचले हिस्से में आपस में मिलकर झुण्ड मे चिपककर पत्तियों का रस चूसते हैं जिससे पत्तियों पर पीली धारी तथा धब्बा पड़ जाता है अधिक प्रकोप होने पर पत्तियाँ सूख जाती हैं और बढ़वार रुक जाती है।

प्रबंधन

माहू के प्रबंधन की तरह से।

काले शल्क कीट (*सैसीशीय नाइग्रा*)

यह नये पौधों एवं नर्सरी का प्रमुख कीट है तथा यह प्रायः खेत में नये पौधों को नुकसान पहुँचाता है। इस कीट की निम्फ एवं वयस्क दोनों ही आपस में मिलकर झुंड में या काले गुम्बद के आकार के होते हैं। इस कीट के निम्फ एवं वयस्क दोनों ही मुलायम पत्तियों एवं तनों का रस चूसते हैं अधिक प्रकोप होने पर शाखाओं पर म्लानि और सूखापन आ जाता है। जिसके फलस्वरूप पौधों की बढ़वार रुक जाती है और काफी हानि होती है।

प्रबंधन

1. माहू के प्रबंधन की तरह से।

'मधुशाला'

धर्मग्रन्थ सब जला चुकी है, जिसके अंतर की ज्वाला,
मंदिर, मसजिद, गिरिजे, सब को तोड़ चुका जो मतवाला,
पंडित, मोमिन, पादिरयों के फंदों को जो काट चुका,
कर सकती है आज उसी का स्वागत मेरी मधुशाला।

–हरिवंश राय 'बच्चन'

किन्नो के प्रमुख कीट एवं उनका प्रबंधन

दीपक कुमार जैन[1], ए.एस.जोधा[2] एवं हेमन्त स्वामी[2]
[1,2]कृषि विज्ञान केन्द्र, बड़गांव, उदयपुर एवं
[3]कीट विज्ञान विभाग, राजस्थान कृषि महाविद्यालय, उदयपुर

किन्नो मुख्य रूप से संतरे (मेंडरिन) की एक किस्म है जो सिट्रस नोबिलिस X सिट्रस डिलिसिओसा का हाइब्रिड (संकर) है। जूस की गुणवत्ता, अच्छी खुशबू तथा पर्याप्त विटामिन-सी की उपलब्धता के कारण यह काफी लोकप्रिय है एवं इसका निर्यात भी किया जाता है। भारत में इसे पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश, जम्मु-कश्मीर एवं उत्तर प्रदेश में मुख्य रूप से उगाया जाता है। कपास तथा गेहूँ उगाने वाले किसान भी इसकी खेती की ओर उन्मुख हैं। वर्ष 2013-14 में राजस्थान में किन्नो 14616 हेक्टेयर में उगाया गया जिसमें 1.82 लाख टन उत्पादन हुआ, वहीं पंजाब में 46000 हेक्टेयर से 9.88 लाख टन तथा हरियाणा में 19402 हेक्टेयर में 2.31 लाख टन उत्पादन हुआ। इस वर्ष लगभग 4000 हेक्टेयर क्षेत्रफल और बढ़ने की सम्भावना है। किन्नो एक पौष्टिक फल है जिसमें 31.0 मिलीग्राम प्रति 100 मिलीलीटर विटामिन-सी, 40.0 मिलीग्राम/100 मिलीलीटर कैल्सियम एवं अन्य सूक्ष्म तत्व पाये जाते हैं। बाजार में इसका फल अक्टूबर से मार्च तक उपलब्ध रहता है। परन्तु इसमें विभिन्न प्रकार के कीटों का आक्रमण होता है जिनकी सही समय पर सही पहचान कर यदि निदान नहीं की जाये तो फसल या उद्यान पूर्णतः चौपट भी हो जाता है। अतः प्रस्तुत जानकारी से समय रहते किसान भाई उचित प्रबंधन कर अधिक लाभ अर्जित कर सकते हैं।

किन्नो के प्रमुख कीट एवं उनका प्रबंधन

1. **पर्ण सुरंगक (लीफ माइनर)** – इस कीट का साधारणतया सितंबर-अक्टूबर तथा मार्च-अप्रैल में आक्रमण दिखायी पड़ने लगता है। वर्षा ऋतु में इसका प्रकोप ज्यादा होता है। इस कीट का वयस्क लगभग 2 मिलीमीटर लम्बा, झालीनुमा पंख वाला सफेद चमकीला होता है। वयस्क के अगले पंखों पर भूरी धारियाँ एवं किनारों पर काला धब्बा होता है जबकि पिछले पंख पूर्णतः श्वेत जो 4-5 मिलीमीटर तक फैले होते है। कोमल पत्तियों को हिलाने पर वयस्क को देखा जा सकता है। मादा अपने अंडे मध्यशिरा के निकट एक-एक कर देती हैं जो महीन पानी की बूंद जैसे होते हैं जो 3-4 दिन में लार्वा (लट) में बदल जाते हैं। अंडों से निकली सूंड़ियाँ (लटे) नर्सरी एवं उद्यानों में तुरन्त पत्तियों की अन्दर की सतह से हरा पदार्थ (क्लोरोफिल) खाना शुरु कर देती हैं जिससे चमकीली सर्पिलाकार टेढ़ी-मेढ़ी सुरंग पत्तियों की नीचली सतह पर दिखायी पड़ती है। जब सूंड़ियाँ पूर्ण विकसित हो जाती हैं तो पत्ती पर सुरंग में के किनारे पर प्यूपावस्था में चली जाती है। इसका कुल जीवन चक्र लगभग 2-3 सप्ताह का होता है। जब इस कीट का आक्रमण कम होता है तो पत्ती पर एक ही सुरंग दिखायी देती हैं परन्तु जब आक्रमण अधिक होता है तो बहुत सारी सुरंगे दिखायी देती हैं। ये पत्ती की ऊपरी सतह एवं तरुण टहनियों पर भी दिखायी देती हैं। ग्रस्त पत्तियाँ ऐंठकर मुरझा जाती है एवं सिकुड़ जाती है जिससे प्रकाश-संश्लेषण क्रिया भी प्रभावित होती है। इस कीट द्वारा ग्रस्त पौधे में कैंकर बीमारी का प्रकोप भी ज्यादा होता है क्योंकि इससे रोग को बढ़ावा मिलता है।

2. **सिट्रस साइला** – मार्च-अप्रैल में फूल आने एवं फल बैठने की अवस्था में इस कीट का प्रकोप भयंकर होता है। यह 3-4 मिलीमीटर लंबा भूरा धब्बेदार, पारदर्शी, पंख वाला होता है। इस कीट के अंडे चमकीले पीले होते हैं जो कोंपलो पर दिये जाते हैं। अंडों से निकले शिशु (निम्फ) हरे-पीले जबकि बाद की अवस्थाओं में चमकीले नारंगी हो जाते हैं। इस कीट के निम्फ (शिशु) तथा वयस्क दोनों ही नयी पत्तियों तथा पौधों के कोमल भागों से रस चूसते हैं। साथ ही जहरीला पदार्थ स्रावित करते हैं जिससे पत्तियाँ सिकुड़ जाती है और फिर पत्तियाँ गिर जाती हैं। इस कीट का प्रकोप वर्षा एव बसन्त ऋतु में ज्यादा होता है। यह कीट चिपचिपा पदार्थ स्रावित करते हैं जिसमें फफूँद का आक्रमण भी हो जाता है। यह 'हरा' विषाणु की बीमारी भी फैलाते हैं।

3. **सफेद मक्खी (व्हाइट फ्लाई)** – इस कीट के शिशु (निम्फ) तथा वयस्क दोनों ही हानिकारक होते हैं जो पौधों के कोमल भागों एवं पत्तियों से रस चूसते हैं जिससे पौधे की बढ़वार रुक जाती है तथा पत्तियाँ पीली होकर गिर जाती हैं। साथ ही ये एक मधुरस (चिपचिपा पदार्थ) भी स्रावित करती हैं जिससे फफूँद का आक्रमण भी पौधों पर होता है तथा

[1,2]विषय विशेषज्ञ एवं [3]सहायक व्याख्याता

प्रकाश संश्लेषण में पौधों को बाधा उत्पन्न होती है। सफेद मक्खी का वयस्क 1.5 मिलीमीटर सफेद होता है जिसकी आँखे लाल सिकुड़ी हुई होती हैं। यह पत्तियों की निचली सतह पर 150-200 अंडे देता है जो लगभग 10 दिन में पक जाते हैं।

4. **काली मक्खी (ब्लेक फ्लाई)** – इसके वयस्क राख जिनका उदर चमकीला लाल हैं, काला होता है। नर वयस्क लगभग 0.8 मिलीमीटर तथा मादा वयस्क 1.2 मिलीमीटर लंबी होती है। शिशु (निम्फ) चमकीले काले, कांटे जैसे पंखदार के होते हैं। वयस्क मादा मार्च-अप्रैल में चौड़ी पत्तियों पर पीले भूरे लगभग 15-22 के झुण्ड में चक्राकार रूप में अंडे देती हैं। अंडे 7-14 दिनों में परिपक्व हो जाते हैं जिनसे निम्फ निकलकर पत्तियों का रस चूसते हैं एवं पत्तियों की निचली सतह पर झुके (व्यवस्थित) होते हैं, जिससे पत्तियाँ सिकुड़ने या मुड़ने लगती है। इससे फूल कलिका एवं विकसित फल अपरिपक्व अवस्था में गिरने लगती है। पौधों की वृद्धि भी रुक जाती है। ये कीट मधुस्राव भी स्रावित करते हैं जिससे काली फफूँद विकसित हो जाती है जो पूरे पौधे की सतह घेर लेती हैं। इस तरह प्रकाश-संश्लेषण रुक जाता है जिसका प्रभाव पौधे की वृद्धि, फल एवं फूल बनने पर भयंकर पड़ता है। साल में इनकी दो पीढ़ियाँ होती हैं। प्रथम पीढ़ी से वयस्क मार्च-अप्रैल तथा द्वितीय पीढ़ी से जुलाई-अक्टूबर तक वयस्क निकलते हैं।

5. **नींबू की तितली (लेमन बटरफ्लाई)** – अण्डों से निकली लटें (सुंडियाँ) हानिकारक होती हैं जो निकलते ही पत्तियों को खाना शुरु कर देती हैं। कभी-कभी तो पत्ती की मध्य शीरा ही शेष रह जाती है। यह चिड़ियों के बीट की तरह या पत्तियों के रंग के समान होती है जिससे एकाएक इसे नहीं देखा जा सकता।

6. **एफिडस या मोयला** – इस कीट के भी वयस्क एवं शिशु दोनों ही हानिकारक हैं जो पौधों के कोमलांगों, शाखाओं एवं कलिकाओं का रस चूसते हैं जिससे प्रभावित पौधों की पत्तियाँ पीली होकर मुड़ने, अनियमित आकार तथा सूखने लगती है। पौधा बौना रह जाता है। मोयला भी मधुस्राव स्रावित करते हैं जिससे फफूँद विकसित हो जाती है जो पौधे के विकास एवं प्रकाश-संश्लेषण में बाधा उत्पन्न करती है। फूल आने के समय इसका आक्रमण फल बैठने पर प्रभाव डालना है। यह विषाणु जनित शीघ्र पतन (ट्रिसटेजा) रोग को फैलाने में वाहक (वेक्टर) का कार्य करता है। प्रत्येक वयस्क लगभग 1-3 सप्ताह तक 5 शिशु प्रतिदिन पैदा करता है (पार्थीनो जेनिटीकली)। एक पीढ़ी का जीवन-चक्र 6-8 दिन का होता है। पौधे पर पीढ़ी दर पीढ़ी वृद्धि होती रहती है।

7. **फल चूसक पतंगा** – इस कीट का वयस्क ही हानिकारक है, जिसका शरीर हल्का नारंगी भूरा, अगले पंख गहरे भूरे, पिछले पंख नारंगी लाल जिन पर दो काले पेच घुमावदार होते हैं। वयस्क (मोथ, शलभ) रात्रि में सक्रिय रहता है जो फलों का रस चूस लेता है जिससे फल सड़न भी हो जाता है। साथ ही अन्य रोगजनकों का आक्रमण भी शुरु हो जाता है एवं फल पकने से पूर्व ही गिर जाता है। जुलाई से अक्टूबर तक यह सक्रिय रहता है। वयस्क खरपतवारों पर अंडे देता है जिनसे 8-10 दिन पश्चात काली भूरी जिस पर पीले लाल धब्बे वाली सूंडियाँ निकलती है। सूंड़ी अवस्था 28-35 दिन तथा प्यूपावस्था 14-18 दिन (पत्ती को लपेटकर) होती है।

8. **छालभक्षक कीट** – अधिकांशतः यह कीट पुराने एवं अव्यवस्थित किन्नो उद्यानों में पाया जाता है। अक्टूबर से अप्रैल तक दो जुड़ी शाखाओं के यहाँ गुहा (टनल) तथा लकड़ी का बुरादा जैसा निकलना इस कीट के आक्रमण की पहचान है। मई-जून में इसका वयस्क सक्रिय रहता है। मादा ढीली शाखाओं, तनों पर छाल में अंडे देती हैं जो 8-10 दिन में परिपक्व होकर सूंड़ियों में बदल जाते है। सूंडी 50-60 मिलीमीटर तक लंबी, हल्की भूरे रंग की गहरे रंग की सिर वाली होती है। यह छाल खाता है एवं पेड़ में नाली (गुहा) बना देता है। यह सूंडी दिन में नलीका (गुहा) में छिपी रहती है तथा रात्रि में सक्रिय हो जाती है। एक ही समय पौधे के विभिन्न भागों पर सूंड़ियों के आक्रमण से छोटी-छोटी शाखाएँ गिर जाती है। पेड़ों पर इस तरह सुराख या छिद्र से अन्य कीड़ों एवं बीमारियों को बढ़ावा मिलता है। अधिक आक्रमण पर पौधे की वृद्धि रुक जाती है एवं फल कम बैठते हैं।

9. **माइट्स** – मई-जून के माह में लंबे सूखे के दौरान माइट्स का आक्रमण भी ज्यादा होता है। इसके शिशु एवं वयस्क दोनों पत्तियों को चीर देते हैं जिसमें जगह-जगह धब्बे बन जाते हैं। नर्सरी अवस्था में ज्यादा प्रकोप से पत्तियाँ पूर्णतः गिर जाती हैं। प्रभावित फल छोटा एवं पीला पड़ जाता है।

प्रति वयस्क पत्तियों की निचली सतह पर मध्य शिरा के समीप एक-एक कर 50 अंडे देती है जो सप्ताह भर में पक जाते हैं। अंडों से निकला लार्वा हल्का पीला भूरा होता है, जिसके 3 जोड़ी पैर होते हैं। यह 3-4 दिनों तक रस चूसते हैं और त्वचा विमोचन कर लेते है। इस अवस्था में इनके 4 जोड़ी पैर होते हैं। मादा लगभग 10-15 दिन तक जीवित रहती हैं। गर्मियों में 17-20 दिन में इसका जीवन-चक्र पूर्ण होता है। फलों पर इसका प्रकोप आसानी से पहचाना जा सकता है।

10. मिलीबग – इस कीट के भी निम्फ तथा वयस्क दोनों ही कोमल शाखाओं तथा फल से रस चूसते हैं जिससे पौधा पीला पड़ने लगता है तथा सूखकर मर जाता है। यह कीट एक लसलसा पदार्थ स्रावित करता है जिससे कवक का आक्रमण शुरु हो जाता है जो फल एवं पौधे के ग्रस्त भाग को पूरा ढ़क लेता है। अधिक आक्रमण पर तो फूल से फल ही नहीं बनता है। वर्ष में एक पीढ़ी होती है।

11. मूलग्रन्थि सूत्रकृमि – इस सूत्रकृमि का प्रकोप जड़ों पर होता है जिन पर गाठें बन जाती हैं जिससे पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं पौधे की वृद्धि रुक जाती है। टहनियाँ सूखने लगती है। पेड़ पर फल छोटे एवं कम लगते है तथा वो जल्दी गिर जाते है। प्रबंधन हेतु 20 ग्राम कार्बोफ्यूरान 3 जी प्रति पेड़ के हिसाब से मिट्टी में मिला दें।

मासिक छिड़काव तालिका

क्र.सं.	माह	विवरण एवं प्रबंधन	कीट
1	फरवरी-मार्च	फल तुड़ाई के बाद फरवरी के अन्त या मार्च के प्रथम सप्ताह से सिट्रस साइला का आक्रमण प्रारंभ हो जाता है जिसे बगीचों के बॉर्डर पर देखा जा सकता है। तभी हमें लेंकेनीसिलियम लेकेनाई (1×10^7 कोनीडिया प्रति मिलीलीटर) या डायमेथोएट 30 ई.सी. 2.5 मिलीलीटर/लीटर पानी के हिसाब से छिड़कें। यह इसके प्रथम एवं द्वितीय निम्फ अवस्था को अच्छी तरह नियंत्रित कर लेता है। यदि मार्च के प्रथम सप्ताह में फिर भी यदि आक्रमण दिखे तो इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. (4 मिलीलीटर/10 लीटर पानी) का छिड़काव करें। यदि जरूरत हो तो 8 दिनों के पश्चात डायमेथोएट का मोयला, साइला एवं लीफ माइनर के लिए छिड़काव करें। इसके अलावा इमिडाक्लोप्रिड के छिड़काव के 10 दिन पश्चात थायोमेथाक्साम 25 डब्ल्यू.जी.3 ग्राम प्रति 10 लीटर पानी छिड़काव भी प्रभावी होता है। साथ ही 5 प्रतिशत प्रभावित पौधे हो तो तुरन्त ट्राइजोफोस 40 ई.सी. 2.5 मिलीमीटर प्रति लीटर पानी का छिड़काव करें।	सिट्रस साइला, एफीडस (मोयला), लीफ माइनर (पर्ण सुरंगक)।
2	अप्रैल (फल बैठने के पश्चात)	उद्यानों में 10 पीले चिपचिपे पाश प्रति हेक्टेयर लगायें। यदि पत्तियों की निचली सतह पर सफेद मक्खी की संख्या 5-10/ट्रेप/सप्ताह से ज्यादा हो और साथ ही 5 प्रतिशत प्रभावित पौधे हो तो, तुरन्त ट्राइजोफोस 40 ई.सी. 2.5 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी का छिड़काव करें। इससे अंडे एवं प्रथम अवस्था निम्फ मर जायेंगे। 8-10 दिन पश्चात इथियान 50 ई.सी. 2 मिलीलीटर/लीटर पानी का छिड़काव करें। ओरोफन्जिन/ बाविस्टीन + 2-4 डी को 0.4 ग्राम प्रति 10 ग्राम + 0.1 ग्राम प्रति 10 लीटर के मिश्रण का छिड़काव फल गिरने की समस्या से मुक्ति हेतु करें। उद्यान में यदि चौड़ी पत्ती वाली फसल या कपास बो रखी हो तो 2-4 डी की जगह जिबरेलिक एसीड काम में लें। यदि गमोसिस का आक्रमण दिखायी दे तो एलीयट 80 डब्ल्यू.पी. 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी का छिड़काव करें।	सिट्रस साइला, लीफ माइनर, सफेद मक्खी, फल गिरना, गमोसिस।

क्र.सं.	माह	विवरण एवं प्रबंधन	कीट
3	मई-जून	यदि सफेद मक्खी का फिर भी आक्रमण है तो ट्राइजोफास 40 ई.सी. 2.5 मिलीलीटर/लीटर पानी या एसीटामीप्रिड 12 ग्राम प्रति 15 लीटर पानी का छिड़काव करें। फल गिरने की समस्या हो तो बाविस्टीन 50 डब्ल्यू.पी. 1 मिलीलीटर/लीटर पानी का छिड़काव करें या प्लोनोफिक्स हार्मोन्स को 1 मिलीलीटर प्रति 4-5 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।	सफेद मक्खी, माइट्स, फल गिरना।
4	जुलाई-अगस्त	इस समय सायला, लीफ माइनर एवं सफेद मक्खी की संख्या तेजी से बढ़ने लगती है। इस हेतु थायोमेथाक्जाम 25 डब्ल्यू.जी. 3 ग्राम प्रति 10 लीटर पानी तथा ट्रायजोफास 40 ई.सी. 2.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी एवं 2-4 डी + टिल्ट 25 ई.सी. / 0.1 + 1 ग्राम प्रति लीटर पानी का छिड़काव करें। 15 दिन के पश्चात बाविस्टीन 50 डब्ल्यू.जी. का 1.5 ग्राम प्रति लीटर पानी का छिड़काव करें। थाले की मिट्टी पलटते रहे ताकि अंडे मिली बग के नष्ट हो सकें। मोनोक्रोटोफास 1 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी छिड़कें ताकि लेमन बटर फ्लाई पर प्रबंधन किया जा सकें।	सफेद मक्खी, सायला, लीफ माइनर, फल गिरना, मिली बग, लेमन बटर फ्लाई।
5	सितंबर	यदि फिर भी सफेद मक्खी एवं शूटी मोल्ड (काली फफूंद) का प्रकोप दिखायी देता है तो ट्राइजोफोस (1 मि.ली.) 40 ई.सी. + जिराम 80 डब्ल्यू.जी. (1 मिलीलीटर) प्रति लीटर पानी के हिसाब से छिड़कें। क्षतिग्रस्त शाखाओं को हटाये तथा डाइक्लोरोवास 5-10 मि.ली. छिद्रों में इन्जेक्शन से डालकर रूई या चिकनी मिट्टी से बन्द कर दें ताकि छाल भक्षक कीट की सूंड़ी मर जाये। सितंबर तक थालों की मिट्टी पलटते रहे, मिली बग के अण्डे नष्ट हो जाये। गमोसिस का आक्रमण दिखायी दे तो एलीयट 80 डब्ल्यू.जी. 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी का छिड़काव करें। रोको 70 डब्ल्यू.जी. 1 ग्राम प्रति लीटर का सितंबर के अन्त में फल गिरने की समस्या हो तो छिड़काव करें।	सफेद मक्खी, सिट्रस साइला, छाल भक्षक कीट, स्केब, फल गिरना, गमोसिस, शूटी मोल्ड, मिली बग।
6	अक्टूबर	यदि सितंबर में ट्राइजोफास का छिड़काव किया है तो सिट्रस सायला पुनः नहीं दिखेगा परन्तु फिर भी यदि दिखे तो थायोमेथाक्जाम 25 डब्ल्यू.जी. 3 ग्राम प्रति 10 लीटर पानी का छिड़काव करें। जमीन पर गिरे फलों को इकट्ठा कर गड्ढे में दबा दें। देर शाम के समय बगीचों में धुआ करें। नीम आयल (1 प्रतिशत) या मेलाथियान 2 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी का छिड़काव करें ताकि फल चूसक पतंगा का प्रबंधन किया जा सके। केंकर एवं स्कैब के प्रबंधन के लिए स्ट्रेप्टोसाइक्लिन तथा कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 1 ग्राम + 25 ग्राम प्रति 10 लीटर पानी का छिड़काव करें।	सायला, स्केब, केन्कर, फल चूसक पतंगा।

सहिजन : एक बहुपयोगी पौधा

आभा सिंह[1] एवं पवन सिंह गुर्जर[2]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

सहिजन मोरिंगेसी परिवार का एक बहुपयोगी पौधा है जिसके सभी भाग जैसे–फल, पत्ती, बीज, फूल, छाल, जड़ आदि का उपयोग किसी न किसी रूप में होता है। औषधीय एवं पोषक तत्वों से भरपूर इस पौधे का बहुत महत्व है क्योंकि इसकी पत्तियों, फलियों एवं बीजों में आवश्यक एवं महत्वपूर्ण पादप रसायन पाये जाते हैं। कहा जाता है कि सहिजन में संतरे की तुलना में सात गुना विटामिन सी, गाजर की तुलना में दस गुना विटामिन ए, दूध की तुलना में सत्रह गुना कैल्सियम, योगर्ट की तुलना में नौ गुना प्रोटीन, केले की तुलना में 15 गुना पोटैशियम तथा पालक की तुलना में 30 गुना लौह तत्व पाया जाता है। अतः कुपोषण के स्थायी उन्मूलन की दिशा में यह एक कारगर उपाय साबित हो सकता है।

सहिजन (वैज्ञानिक नाम मोरिंगा ओलिफेरा) को विश्व के किसी भी उष्ण एवं उपोष्ण जलवायु वाले वातावरण में उगाया जा सकता है। सहिजन को बीज एवं कटिंग दोनों माध्यम से लगाया जा सकता है परंतु बीज द्वारा उगाए गये पौधे जल्दी स्थापित हो जाते हैं तथा अच्छी पैदावार देते हैं। सहिजन एक ऐसा पौधा है जिसका उपयोग कृषि, पशुओं का चारा, सब्जी, बायोगैस, डाई, शहद साफ करने, दवाई, सजावट, पानी साफ करने एवं खाद्य तेल आदि के रूप में होता है। सहिजन के पौधे में बहुत अधिक विविधता पायी जाती है जो फलियों की लंबाई, बीज के वजन, फलियों की बाह्य रचना बीज के आकार, पोषक तत्वों की भिन्नता तथा गुणवत्ता आदि के रूप में देखने को मिलती है।

सहिजन मुख्य रूप से बहुपयोगी औषधीय पौधे के रूप में उगाया जाता है जो पोषण की दृष्टि से भी बहुत महत्वपूर्ण है। आर्थिक दृष्टि से भी सहिजन का पौधा बहुत महत्वूपर्ण एवं इसके विभिन्न भागों का उपयोग खाद्य एवं पोषण, पशुओं का चारा, प्राकृतिक कॉगुलेन्ट, वानिकी पदार्थों एवं विभिन्न उर्वरकों के रूप में होता है।

भारत में सहिजन के पल्प का उपयोग पेपर बनाने में, छाल का उपयोग मसाले के रूप में, पत्तियों, फूल एवं फलियों का उपयोग खाद्य के रूप में (सब्जी, साँभर, अचार, सूप एवं सॉस) में किया जाता है। सहिजन के फूलों का उपयोग चाय बनाने के लिए भी होता है। सहिजन के फूलों से प्राप्त शहद अच्छी गुणवत्ता वाला होता है। सहिजन के ताजा बीजों का प्रयोग हरी मटर की तरह किया जाता है या फिर इसके बीजों से उच्च गुणवत्ता वाला तेल निकाला जाता है जिसे बेन तेल कहते हैं। इसका उपयोग कला, सलाद, साबुन, जलाने के लिए एवं बालों की सज्जा आदि के लिये किया जाता है। सहिजन के केवल एक या दो बीज से एक लीटर पानी को साफ एवं पीने लायक बनाया जा सकता है।

सहिजन की पत्तियाँ, बीज एवं फलियाँ पोषण की दृष्टि से उच्चकोटि की हैं जिनमें क्रूड प्रोटीन, कैल्सियम, लौह तत्व, पोटैशियम, मैंगनीज आवश्यक विटामिन्स, ऐंटीऑक्सीडेन्स एवं ऐंटीइनफ्लेमेटरी तत्व काफी अच्छी मात्रा में पाये जाते हैं। हाल के वर्षों में सहिजन की पत्तियों जिनमें प्रोटीन, कैल्सियम, जिंक, पोटैशियम, लौह तत्व, विटामिन ए आदि प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। इसका उपयोग बच्चों में कुपोषण दूर करने तथा गर्भवती एवं धातृ महिलाओं के आहार की गुणवत्ता बढ़ाने में किया जाता रहा है। सहिजन की स्थायी एवं स्थानीय उपलब्धता होने से यह बच्चों में कुपोषण दूर करने का सस्ता एवं कारगर माध्यम हो सकता है।

भारत के दक्षिणी भाग में सहिजन का उपयोग एवं उत्पादन बहुतायत में होता है परंतु उत्तरी एवं पूर्वी भारत में इसका उत्पादन, उपयोग एवं संबंधित जानकारी बहुत कम है। अतः इस दिशा में जागरूकता फैलाने की जरूरत है।

सहिजन की पत्तियों को सूखाकर काफी समय तक इसका उपयोग खाद्य के रूप में किया जा सकता है। सूखी हुई पत्तियों की पोषक तत्वों की गुणवत्ता बरकरार रहती है जिसका विभिन्न खाद्यों जैसे दाल, सब्जी, सूप, उपमा, मिठाईयों, अचार, दोसा, इडली आदि में विभिन्न मात्राओं में मिलाकर उपयोग किया जा सकता है तथा इससे बच्चों एवं महिलाओं के कुपोषण को कम किया जा सकता है।

सहिजन औषधीय गुणों से भी भरपूर है और इसकी पत्तियाँ तथा अन्य सभी भाग मधुमेह, उच्च रक्तचाप, डायरिया, कैंसर, मलेरिया, कोलेस्ट्राल, अल्सर कम करने आदि रोगों को नियंत्रित करने की दिशा में कारगार साबित हो रहे हैं।

[1]वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं [2]वैज्ञानिक

वाणिज्यिक दृष्टि से सहिजन के बीज का बहुत महत्व है। इससे तेल निकाला जाता है। इस तेल में ओलिक अम्ल, टोकोफेरॉल एवं स्टीरॉल्स की मात्रा अधिकता में पायी जाती है। बेन तेल का उपयोग जैतून तेल के बदले खाद्य के रूप में, परफ्यूम, साबुन आदि बनाने में किया जाता है। एक प्राकृतिक कॉगुलन्ट के रूप में भी सहिजन के बीज का वाणिज्यिक महत्व है।

सहिजन की गुणवत्ता को देखते हुए भारत में इसपर अनुसंधान की बहुत जरूरत है। सहिजन में पाये जाने वाले पोषक तत्वों का उपयोग विभिन्न प्रकार से हो सकता है। इस दिशा में काम करने की जरूरत है। सहिजन के बीज के प्राकृतिक कॉगुलेन्ट एवं पानी साफ करने के गुण के वाणिज्यिक उपयोग की दिशा में भी काम करने की जरूरत है। सर्वाधिक महत्वपूर्ण है कि आश्चर्यजनक एवं बहुपयोगी पौधे का ग्रामीण स्तर पर व्यापक प्रचार एवं प्रसार किया एवं इसके पोषक एवं औषधीय गुणों की जानकारी जागरूकता कार्यक्रमों के माध्यम से प्रसारित की जाये जो ग्रामीण स्तर पर कुपोषण दूर करने की दिशा में अच्छा कदम साबित होगा।

'माँ मुझे भी आने दो'

(कन्या भ्रूण हत्या पर आधारित)

माँ इस दुनियाँ में आप मुझे भी आने दो,
अपनी ममता की छाँव मुझे भी पाने दो।
मानुंगी आभार अगर मेंरी भी सुन लो
अच्छा और बुरा क्या हैं कुछ तुम भी सुन लो,
कुमारी कन्या आदि काल से रही हैं पूज्य,
पाप लगे न भ्रूण हत्या का मुझको चुन लो
माँ इस दुनियाँ में आप मुझे भी आने दो,
अपनी ममता की छाँव मुझे भी पाने दो।
पापा आप भी विरत पाप से हो जायेगें
दादी अम्मा भी मुक्त पाप से हो जायेगें
अब ईश कृपा से आओ हम सब मिल जाये
अपनी बगियां में आप मुझे खिल जाने दो।।
माँ इस दुनियाँ में आप मुझे भी आने दो,
अपनी ममता की छाँव मुझे भी पाने दो।
माना भैया सबकी आँखो का तारा हैं
वो वंश वृद्धि का साधन हैं उजियारा हैं
यदि वो सूरज हैं मैं चन्दा बन जाऊंगी
स्निग्ध चादंनी भरूँ जहाँ नभ की कारा हैं।।
माँ इस दुनियाँ में आप मुझे भी आने दो,
अपनी ममता की छाँव मुझे भी पाने दो।
पापा का हर सपना साकार करूँगी
अन्तर्मन से सबको मैं प्यार करूँगी
कर्तव्यों से कभी न मुख को मोड़ुंगी
जितना होगा जन-जन का उपकार करूँगी।
माँ इस दुनियाँ में आप मुझे भी आने दो,
अपनी ममता की छाँव मुझे भी पाने दो।
माँ मैं तुम्हारे आगंन की नन्ही सी कली हूँ
मुझे भी लेने दो आकार धरा के आगन में
माँ आशीष अपना मुझको भी आने दो
माँ इस धरती पर सौरभ को बिखराने दो।।
माँ इस दुनियाँ में आप मुझे भी आने दो,
अपनी ममता की छाँव मुझे भी पाने दो।

–रेखा चौरसिया
सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी

देशी गाय और भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था

राम अवध राम[1]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

ऋग्वेद में ऋषि भारद्वाज ने छठे अध्याय के 28वें लोक में गाय को ईश्वर की उपाधि दी है। अथर्व वेद के 10वें संस्करण के श्लोक संख्या 10 में गाय को विष्णु कहा है। अथर्व वेद, चरक संहिता, रजनी घुन्तु, वृघाभागा भटट्, अमृत सागर, भाव प्रकाश, सुश्रुत संहिता इत्यादि ग्रन्थों में गोमूत्र के औषधीय गुणों का वर्णन किया गया है। गोमूत्र चिकित्सा से अनेक साध्य एवं असाध्य रोगों का उपचार किया जाता है। गोमूत्र चिकित्सा से मधुमेह, उच्च रक्त चाप, दमा, छाल रोग एवं हृदयाघात जैसी बीमारियों का भी उपचार संभव है। छाजन, मूर्छा, कैंसर, बवासीर, अवसन्न, गठिया, सिर दर्द, आधासीसी, टेंटुआ, नासूर, अम्लता, कब्ज एवं कान के रोगों की चिकित्सा करने का सत्य उपलब्ध है।

भारतीय संस्कृति में गाय का एक विशेष स्थान है। गाय बहुत कम मात्रा में चारा ग्रहण करती है परन्तु अधिक मात्रा में दूध, गोबर एवं गोमूत्र प्रदान करती है। पीपल एवं तुलसी के पेड़ से जिस प्रकार से वायु प्रदूषण कम होता है ठीक वैसे ही गाय की उपस्थिति में वायु प्रदूषण कम होता है। गाय के गोबर के जलते हुए उपले पर घी की आहुति देने से भारी मात्रा में वायु प्रदूषण कम होता है। गाय के गोबर से विभिन्न प्रकार की जैव नियामक एवं खादें बनायी जाती हैं जिससे फसलों का टिकाऊ उत्पादन किया जा सकता है। गोमूत्र में तांबा होता है जो शरीर में स्वर्ण का रूप धारण करता है जिससे शरीर के विकार दूर हो जाते हैं। गाय का कूबड़ एवं सींग पिरामिड का कार्य करते हैं जो विभिन्न ग्रहों एवं सूर्य से ऊर्जा ग्रहण कर दूध, मूत्र एवं गोबर में प्रवाहित करते हैं।

गावो विश्व मातरम्

गाय उन्नति एवं समृद्धि का साधन है, बहुत सारे गुणों के आधार पर वह स्वयं की माँ से भी श्रेष्ठ है। –महात्मा गाँधी

गाय अपने जीवनकाल में 4,10,440 लोगों के एक समय के भोजन की आवश्यकता की पूर्ति कर सकती है। नवजात शिशुओं के लिये तो गाय का दूध एक सम्पूर्ण भोजन है।

मातृ सर्व भूतानाम्

गावः सर्व सुख प्रदा

देश में गाय की संख्या लगभग 150 लाख है। एक गाय प्रति वर्ष औसतन 200 लीटर दूध प्रदान कर सकती है। यदि गायों के खान-पान एवं स्वास्थ्य की उचित देखभाल की जाये तो प्रत्येक गाय प्रति वर्ष 1100 लीटर तक दूध दे सकती है। हमारे देश में दूध के उत्पादन की लागत अन्य देशों की अपेक्षा बहुत ही कम है।

समुद्र मंथन के समय जिन पाँच शक्तियों का उद्भव हुआ था उनमें कामधेनु नामक गाय प्रमुख थी। सन् 2003 में राष्ट्रीय पशु आयोग के अन्तर्गत न्यायाधीश जी. एम. लोधा ने रिपोर्ट प्रस्तुत की। जिसमें उन्होंने गाय को ग्रामीण अर्थव्यवस्था से जोड़ा एवं गाय के संरक्षण के लिये सख्त कानून बनाने की सिफारिश की थी।

वेदों के अनुसार गाय के पाँच उत्पाद मनुष्य के स्वास्थ्य हेतु लाभदायक हैं। आयुर्वेद के अनुसार गाय के दूध में वसा, कार्बोहाइड्रेट, खनिज एवं विटामिन पाये जाते हैं तथा मस्तिष्क को पुष्ट एवं विकिरण किरणों से बचाव की क्षमता भी पायी जाती है। गोघृत का उपयोग विभिन्न मानव विकारों के उपचार हेतु किया जाता है। घी का यज्ञ में उपयोग कर वायुवीय प्रदूषण को कम किया जा सकता है। गोमूत्र में जीवाणु एवं कवक रोधी प्रवृत्ति पायी जाती है। गोमूत्र में मानव शरीर में रोगों के विरुद्ध प्रतिरोधी क्षमता वृद्धि करने की भी क्षमता पायी जाती है जिसकी औषधीय क्षमता से संबंधित दो पेटेन्ट दायर किए गये हैं। गोमूत्र, नीम एवं लहसुन के, कीट एवं व्याधि प्रतिरोधिता पर विश्वव्यापी एकाधिकार दायर किये जा गये हैं। साहीवाल गाय के दूध में पाये जाने वाले जीवाणु की कवक प्रतिरोधी एवं अजैव तनाव प्रतिरोधिता पर भी अमेरिका में पेटेन्ट दायर किया गया है।

वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद ने गोबर, गोमूत्र, शहद एवं गोघृत से बनाये गये अमृत पानी पर पेटेन्ट दायर किया है। गोमूत्र के रासायनिक विश्लेषण से पता चलता है कि इसमें नाइट्रोजन, सल्फर, फास्फेट, सोडियम, मैग्नीज, कार्बोलिक अम्ल, लौह, सिलिका, क्लोरीन, मैग्नीशियम, मेल्सी अम्ल, साइट्रिक अम्ल, सक्सीनिक अम्ल, कैल्सियम, नमक, विटामिन ए, बी, सी, डी, ई, खनिज, लैक्टोज, एन्जाइम, क्रिटेमाइन, हार्मोन एवं स्वर्ण पाये जाते हैं। मनुष्य बीमार तभी होता है जब शरीर में उपरोक्त तत्वों की कमी या अधिकता हो जाती है। अतः गोमूत्र के सेवन से उपरोक्त तत्वों का शरीर में संतुलन बना रहता है जिससे मनुष्य की बीमारियों का निराकरण किया जा सकता है।

[1]प्रधान वैज्ञानिक

देशी एवं विदेशी गायों में भिन्नता

देशी गाय के गर्दन के पीछे कूबड़ होता है जो बैल/सांड़ में अधिक वृहत होता है। यह हल से जुताई करने में सहायक होता है। देशी गाय का आकार सामान्यतया औसत होता हैं एवं गाय में गल कंबल होता है जिससे उसमें अधिक गर्मी सहन करने की क्षमता होती है। देशी गाय के सींग होते हैं। थन का आकार औसत होने के कारण थनैला रोग का संक्रमण कम होता है। देशी गायें दूध कम देती हैं परन्तु दूध की मात्रा, प्रजनन एवं अच्छे खानपान से बढ़ायी जा सकती है।

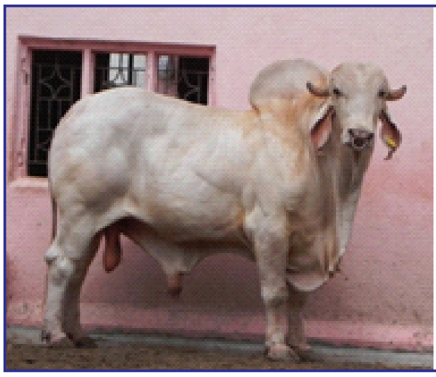

देशी गायों का पालन सस्ता होता है क्योंकि वे चारागाह में चर कर भी निर्वाह कर सकती हैं। कम चारे के बावजूद उनका दुग्ध उत्पादन प्रभावित नहीं होता है। देशी गायों को किसी विशेष प्रकार के संरचना या घर की आवश्यकता नहीं होती है। ये किसी भी प्रकार के आवास में रह सकती हैं। इन गायों की उन्मुक्त प्रणाली सशक्त होती है जिससे इनमें विभिन्न प्रकार की बीमारियों का संक्रमण नहीं होता है। देशी गायों के दूध में खनिज, विटामिन एवं हार्मोन्स अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। देशी गायों के बछड़े बड़े होकर बैल के रूप में खेती के काम में सहायक होते हैं। जुताई के साथ-साथ वे खेत में गोबर एवं मूत्र प्रवाहित करते हैं जिससे भूमि की उर्वराशक्ति में वृद्धि होती है। जुताई के अतिरिक्त इनका उपयोग खाद्यान्न की ढुलाई एवं रहट द्वारा सिंचाई हेतु भी किया जाता है। देशी गायें जलवायु के अनुरूप ढल जाती हैं जिसके कारण चारे के पाचन के पश्चात कम मात्रा में मीथेन, कार्बन डाई-ऑक्साइड, अमोनिया एवं कार्बन मोनोऑक्साइड का उत्सर्जन होता है। देशी गाय के दूध, घी, मट्ठा, मूत्र एवं गोबर से विभिन्न प्रकार की औषधियाँ बनायी जाती हैं जिससे अनेक प्रकार की बीमारियों का उपचार किया जाता है। सामान्यतः देशी गायों का पालन पारिवारिक दूध की आवश्यकता के लिये किया जाता है। देशी गाय का मूत्र एवं पंचगव्य, पंचामृत्र में उपयोग किया जाता है जिसके उपयोग से मनुष्य की प्रजनन क्षमता में वृद्धि होती है। तपेदिक रोगी को देशी गाय के पास सोने से लाभ मिलता है तथा रोगी के मस्तिष्क की क्षमता में भी वृद्धि होती है। चरने वाली गायों का गोबर एवं गोमूत्र औषधीय गुणों वाला होता है तथा इसमें दुर्गन्ध नहीं होती है। देशी गायें गन्दे स्थान पर रह कर भी स्वस्थ रह सकती हैं।

विदेशी नस्ल की गायें

इन गायों में कूबड़ एवं गल कंबल नहीं पाया जाता है तथा सींग भी नहीं होती है। इन गायों का आकार एवं वजन अधिक होता है। गायों में दूध उत्पादन क्षमता अधिक होता है तथा इनके बछड़े शिथिल एवं विशालकाय होते हैं। कृषि कार्यों में इनका उपयोग नहीं किया जा सकता है। ये अधिक गर्म जलवायु सहन नहीं कर सकतीं जिसके कारण इनका स्वास्थ्य एवं दुग्ध उत्पादन प्रभावित होता है। संकर गायों के लिए आधुनिक ढांचे की आवश्यकता होती है जिसमें गर्मी में ठंडा करने हेतु पंखे एवं कूलर लगे होते हैं। इन गायों की उन्मुक्त प्रणाली कमजोर होती है जिससे विभिन्न बीमारियों का संक्रमण होता रहता है। इन गायों का दुग्ध उत्पादन अधिक होता है जिससे थनैला रोग का संक्रमण अधिक होता है। इन गायों द्वारा बीमारियों का प्रसारण अधिक होता है। विदेशी गायों का दूध पतला होता है जिससे इसकी पोषक क्षमता कम होती है। विदेशी गायें विभिन्न विषाणु जनित बीमारियों के प्रति सहिष्णु होती हैं।

विदेशी गायों द्वारा अधिक मात्रा में मीथेन, अमोनिया एवं कार्बन डाईऑक्साइड का उत्सर्जन किया जाता है जिससे वायु प्रदूषण में वृद्धि होती है एवं इन गायों के दूध में बीटा कैसोमारफीन पाया जाता है जो सीधे पीने योग्य नहीं होता है। संकर गायों के दूध एवं अन्य उत्पादों से किसी भी प्रकार की औषधि नहीं बनायी जा सकती है। इनमें व्यावसयिक दुग्ध उत्पादन हेतु ऑक्सीटोसिन टीके का उपयोग अधिक प्रचलित है। संकर गायों का प्रबंधन खर्चीला एवं क्लिष्ट होता है एवं इनका दुग्ध उत्पादन जलवायु, स्थान एवं खानपान से प्रभावित होता है।

ए1 प्रकार के दूध की विशेषता

सन 1970 में आस्ट्रेलिया में होलिस्टीन गायों को भारी संख्या में डेरी हेतु आयात किया गया था। परन्तु कुछ वर्षों के पश्चात दुग्ध उत्पादकों ने अनुभव किया कि दूध का सेवन करने वाले उपभोक्ताओं के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव हो रहा है। तत्पश्चात दुग्ध उत्पादकों ने जर्सी गायों को व्यावसायिक दुग्ध उत्पादन हेतु चयन किया। न्यूजीलैंड में ए1 एवं ए2 प्रकार के दूध की पहचान की प्रक्रिया शुरू की गयी। चूहों पर ए1 प्रकार के दूध का प्रयोग किया गया जिसके फलस्वरूप मधुमेह रोग का संक्रमण पाया गया। संकर गायें ए1 प्रकार के दूध का उत्पादन एवं देशी गायें ए2 प्रकार के दूध का उत्पादन करती हैं। वर्तमान में यह सिद्ध हो चुका है कि ए1 प्रकार का प्रोटीन मधुमेह, दिल की बीमारी, एलर्जी, पेट संबंधी बीमारियों, धमनी अवरोध, अचानक शिशु मृत्यु, स्वलीनता, पागलपन आदि का कारक है। डा. मोनिका सोधी के अनुसार ए1 प्रकार के दूध के सेवन से मधुमेह एवं हृदय संबंधी रोगों में वृद्धि होती है जबकि ए2 प्रकार के दूध के सेवन से उपरोक्त बीमारियों का निराकरण होता है।

विदेशी प्रजाति की गायें जिनमें रूपान्तरित डी.एन.ए. पाया जाता है ए1 प्रकार के दूध का उत्पादन करती हैं। प्रोटीन के चयापचयन की अवधि में दूध का विघटन विभिन्न प्रकार के पेप्टाइड में होता है। इन पेप्टाइड का रूपान्तरण अमीनो अम्ल में होता है जिसका अवशोषण शरीर के रक्त में होता है। परन्तु सभी पेप्टाइड का विघटन अमीनो अम्ल में नहीं हो पाता है। कुछ पेप्टाइड मल-मूत्र के साथ बाहर आ जाती हैं एवं कुछ का रक्त के साथ अवशोषण होता है। किन्तु रक्त में इनका स्वरूप पेप्टाइड जैसा ही रहता है। ए1 प्रकार के दूध के पेप्टाइड का मानव शरीर में अवशोषण होता है उस पेप्टाइड को बीटा कैसोमारफीन कहते हैं। यह यौगिक अफीम उत्पादन करने वाले पौधों में अधिक मात्रा में पाया जाता है जो विभिन्न प्रकार के रोगों का कारक होता है। एक लीटर ए1 प्रकार के दूध में 24-32 ग्राम कैसीन पाया जाता है जिसमें 9-12 ग्राम बीटा कैसोमारफीन होता है।

विदेशों में कृषक एवं दुग्ध उद्योग ए2 प्रकार के दुग्ध उत्पादन में पूर्णतः परिवर्तित होना चाहता है। भारत में राष्ट्रीय पशु अनुवांशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल के अध्ययन के पश्चात यह पता चला है कि देश में देशी गायें ए2 प्रकार के दूध का उत्पादन करती हैं। ए2/ए2 दुग्ध उत्पादन के लिए ए2/ए2 गाय एवं ए2/ए2 सांड की आवश्यकता होती है।

ए1 प्रकार के दूध का मानव स्वास्थ्य पर आभाव

बच्चों में 3-4 वर्षों तक इस प्रकार के दूध का उपयोग करने से मस्तिष्क में रक्त अवरोध का विकार उत्पन्न हो सकता है। बीटा कैसोमारफीन से बच्चों में मधुमेह एवं अचानक मृत्यु के लक्षण पाये गये हैं। वयस्कों में बीटा कैसोमारफीन से हृदय संबंधी विकारों, मधुमेह, मस्तिष्क विकार एवं स्थूलांत्र कोप इत्यादि की आशंका बनी रहती है तथा पारकिन्सन एवं खंडित मनोवृति रोग से प्रभावित हो सकता है।

देशी गायों की विशेषतायें

देशी गाय मनुष्य के पूरे परिवार एवं कृषि की आवश्यकताओं की प्रतिपूर्ति करती है। इनके बछड़ों का उपयोग भार वहन के लिए किया जाता है। गाय के उत्पादों से विभिन्न प्रकार के कीड़ों एवं बीमारियों से फसलों की सुरक्षा की जाती है। गाय परिवार का एक अभिन्न अंग है। इसको खाने के लिए वही वस्तुएँ दी जाती हैं जो मनुष्य के लिए व्यर्थ होती हैं जैसे घास, भूसा,

खली इत्यादि। राष्ट्रीय पशु अनुवांशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल के अनुसार भारत की सभी देशी नस्ल की गायों में से 22 के उत्पादों की गुणवत्ता अधिक होती है। ये गायें ए2 प्रकार के दूध का उत्पादन करती हैं। ए2 एलील से ओमेगा 6 वसा अम्ल की प्रतिपूर्ति होती है। संकर नस्ल की गायें ए1 प्रकार के दूध का उत्पादन करती हैं जिसमें ओमेगा 6 वसा अम्ल की उपलब्धता नहीं पायी जाती है।

देशी गाय के दूध की विशेषता

आयुर्वेद के अनुसार देशी गाय के घी से बच्चों के मस्तिष्क का समुचित विकास होता है। घी के नियमित उपयोग से शरीर में लाभदायक कोलेस्ट्राल में वृद्धि होती है जो वसा एवं विटामिन के अवशोषण में सहायक होती है। त्वचा पर गाय के घी के लेपा से निखार आता है। देशी गाय के दूध में अमीनो अम्ल पाया जाता है जो प्रोटीन के पाचन में सहायक होता है। गाय का दूध गुर्दे की क्रियाशीलता में वृद्धि करता है। दूध में विद्यमान विटामिन बी-2, बी-3 एवं ए से मनुष्य के उन्मुक्त प्रणाली में सुधार होता है। दूध के नियमित सेवन से पाचन, नासूर, कैंसर, हृदय संबंधी बीमारियों से बचाव होता है। गाय का दूध विटामिन बी-2, बी-3 एवं ए का अच्छा श्रोत होता है जिसके उपयोग से रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि होती है। गाय का दूध शरीर की अम्लता को कम करता है, आमाशय को छालों से सुरक्षित करता है तथा त्वचा एवं स्तन कैंसर से बचाव करता है। गाय के दूध के नित्य सेवन से मोटापा कम होता है तथा कोलेस्ट्राल की मात्रा संतुलित होती है। यह मधुमेह को नियंत्रित करता है तथा दूध की शर्करा मधुमेह रोगियों के लिए लाभप्रद होती है। गाय का दूध एक श्रेष्ठ नैसर्गिक ऐंटीऑक्सीडेंट होता है तथा जैव उपलब्धता की दृष्टि से श्रेष्ठ होता है। इसमें विशेष प्रकार का कैल्सियम पाया जाता है जो बड़ी आँत को कैंसर कारक रसायनों से सुरक्षा प्रदान करता है। गाय का दूध महिलाओं में मासिक धर्म के कष्टों से रक्षा करता है तथा आधासीसी के दर्द से बचाव करता है।

गाय के 100 ग्राम दूध में 0-93 ग्राम फास्फोरस, 1-2 ग्राम कैल्सियम, 0.002 ग्राम लौह तत्व तथा वेनेडियम, क्रोमियम, अभ्रक एवं शीशा पाया जाता है। इसमें लगभग 25 प्रकार के खनिज विद्यमान होते हैं जिसमें आयोडीन भी शामिल है। यह शरीर में शक्ति के साथ-ही-साथ ठंड से सुरक्षा प्रदान करता है।

गाय का दूध संपूर्ण भोजन होता है जिसमें 21 तरह के अमीनो अम्ल, 11 प्रकार के वसा अम्ल, 6 प्रकार के विटामिन, 25 खनिज, 2 प्रकार की शर्करा, 4 प्रकार का फास्फोरस, 19 प्रकार के नाइट्रोजन यौगिक एवं अनेक प्रकार के एन्जाइम पाये जाते हैं।

साहीवाल गाय के दूध को पौधों की वृद्धि के प्रोत्साहन, रोग कारक कवकों के प्रबंधन, जैव एवं अजैव तनाव के प्रति सहनशील, मृदा में फास्फोरस घुलनशीलता में वृद्धि इत्यादि के लिए अमेरिका में पेटेन्ट दायर किया गया है।

गाय का 450 ग्राम दूध, 4 अण्डे एवं 250 ग्राम मांस के बराबर होता है। डॉ. डेल ई. वाडन के अनुसार गाय के दूध एवं मूत्र में कैंसर रोधी यौगिक सी.एल.ए. पाया जाता है। गाय के दूध में 4.7 प्रतिशत सुपाच्य कार्बोहाइड्रेट, 3.5 प्रतिशत श्रेष्ठ वसा, 3.5 प्रतिशत प्रोटीन, 0.8 प्रतिशत खनिज, लवण एवं शेष भाग जल होता है। इसके अतिरिक्त कैल्सियम, फास्फोरस, मैग्नीशियम, सिलिकान तथा विटामिन ए., बी., सी., डी. तथा ई. पाया जाता है। गाय के दूध में कैरोटीन नामक विटामिन पाया जाता है जो अन्य किसी पशु के दूध में नहीं पाया जाता है। भारतीय गाय के दूध में प्रोलीन अमीनो अम्ल पाया जाता है जो आइसोल्यूसिन अमीनो अम्ल के साथ होता है। इस प्रकार के दूध को ए2 श्रेणी में रखा गया है। इस प्रकार के दूध में ओमेगा-3 वसा अम्ल पाया जाता है जिससे विभिन्न प्रकार के रोगों से बचाव होता है। ए2 प्रकार के दूध में स्ट्रोनियम पाया जाता है जो शरीर की उन्मुक्त प्रणाली को मजबूत तथा हानिकारक विकिरण से सुरक्षा प्रदान करता है।

ए2 प्रकार के दूध में बीटासीजिन पाया जाता है जो ए1 प्रकार के दूध में नहीं पाया जाता है। आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, अमेरिका, कनाडा एवं ब्रिटेन में हजारों परिवारों के लिखित प्रमाण-पत्रों ने यह सिद्ध कर दिया है कि ए1 प्रकार के दूध के सेवन के बाद जब ए2 प्रकार के दूध का सेवन शुरू किया गया तो शिशुओं में ए1 प्रकार के दूध के सेवन से आयी बीमारियों का निराकरण हुआ। इस प्रकार ए1 एवं ए2 प्रकार के दूध की गुणवत्ता से परिचित होने के पश्चात आस्ट्रेलिया, ब्रिटेन, न्यूजीलैंड देशों में ए2 प्रकार के दूध विपणन का व्यवसाय प्रमुख हो गया है।

घी की विशेषता

यावज् जीवेत्, सुखम जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पीवेत्

गाय के घी के नित्य सेवन से सीरम कोलेस्ट्राल में कमी आती है। इसके उपयोग से ट्राइग्लिसराइड में वृद्धि होती है तथा लिपिड की ऑक्सीकरण क्रिया में कमी आती है। गाय के घी में संयुग्म लिनोलिक अम्ल पाया जाता है जो कैंसर प्रतिरोधी होता है। घी में उपस्थित सघन लिपो प्रोटीन रक्त नलिकाओं के जाल को हटाने में सक्षम होता है एवं रक्त संचार को सुगम बनाता है। गोघृत से हवन करने पर ऑक्सीजन का उत्सर्जन होता है। गाय के घी के नित्य सेवन से निष्फल कोलेस्ट्राल की मात्रा में वृद्धि नहीं होती है। रूसी वैज्ञानिक के अनुसार गोघृत हानिकारक विकिरण से शरीर की सुरक्षा करता है। जब गाय का घी चावल एवं उपले के साथ जलाया जाता है तो इससे इथिलीन ऑक्साइड, प्रोपाइलीन ऑक्साइड एवं

फार्मलडिहाइड का उत्सर्जन होता है जिससे वातावरण का निर्जर्मीकरण होता है। गाय के घी के नित्य उपयोग से आँख की दृष्टि एवं पाचन क्रिया में सुधार, त्रिदोष का निर्वारण, मस्तिष्क बलवर्धक, सुंदरता में वृद्धि, दमा का निराकरण तथा रक्त का शोधन होता है।

गोमूत्र की विशेषता

आसवित गोमूत्र में नाइट्रोजन, सल्फर, अमोनिया, ताँबा, लौह, यूरिया, यूरिक अम्ल, फास्फेट, सोडियम, पोटैशियम, मैग्नीज, कार्बोलिक अम्ल, कैल्सियम, नमक, विटामिन ए, बी, सी, डी एवं ई, लैक्टोज एन्जाइम, पानी, हाइपूरिक अम्ल एवं क्रियेटनिन पाये जाते हैं। गोमूत्र में जो चिकित्सीय गुण पाये जाते हैं उनका विभिन्न औषधियों में प्रयोग किया जाता है। गोमूत्र का उपयोग प्रायः परिशोधन एवं रोगाणुओं से मुक्ति के लिए किया जाता है। पांच वर्ष पुराना गोमूत्र अन्य रासायनिक निर्जर्मीकरण करने वाले पदार्थों की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होता है। गोमूत्र में सबसे अधिक पानी होता है तथा कुछ मात्रा यूरिया एवं खनिज, नमक, हारमोन एवं एन्जाइम की भी होती है। अतः यह विषकारक नहीं होता हैं। प्राचीन भारतीय काव्यों में गोमूत्र से विभिन्न रोगों से निवारण हेतु विस्तार से वर्णन किया गया है। गोमूत्र एक विशेष प्रकार का निर्जर्मीकारक एवं जीवाणुनाशक है। अतः इसके उपयोग से रोग फैलाने वाले कारकों का नाश होता है।

गोमूत्र का उपयोग पंचगव्य, अमृत पानी, जीवामृत आदि जैव नियामक बनाने तथा फसल उत्पादन में किया जाता है। गोमूत्र का प्रयोग मधुपालन में भी सफलतापूर्वक किया जाता है। मधुमक्खी के छत्ते में विभिन्न हानिकारक जीवाणुओं से बचाव के लिए गोमूत्र का उपयोग किया जाता है। गोमूत्र में मच्छरों को आकर्षित करने की प्रवृत्ति पायी जाती है। अतः मच्छरों से निराकरण हेतु गोमूत्र का उपयोग किया जाना चाहिए। एक विश्वस्तरीय पेटेन्ट गोमूत्र, लहसुन एवं नीम के समिश्रित तरल को कीट एवं बीमारियों के प्रबंधन हेतु पंजीकृत किया गया है।

आयुर्वेद में गोमूत्र को विषनाशक एवं त्रिदोषनाशक माना गया है। गोमूत्र के रासायनिक विश्लेषण से पाया गया है कि इसमें 24 प्रकार के ऐसे तत्व पाये जाते हैं जिनसे मानव की विभिन्न प्रकार की बीमारियों का उपचार किया जा सकता है। गोमूत्र से 108 प्रकार के रोगों की चिकित्सा की जा सकती है, परन्तु वह स्वस्थ एवं देशी गाय का होना चाहिए। गोमूत्र शीशे या मिट्टी के बर्तन में भंडारण करना चाहिए एवं साफ कपड़े की परत से छानकर एक चौथाई कप मात्रा का सेवन करना चाहिए। गोमूत्र एवं गोबर द्वारा कफ, पित्त एवं वात संबंधित रोगों का निवारण किया जा सकता है। गोमूत्र में विशेषतः ताम्र, स्वर्ण एवं नमक पाये जाते हैं जो शरीर की विभिन्न खनिजों की कमी की प्रतिपूर्ति करते हैं। गोमूत्र हृदय एवं मस्तिष्क को स्वस्थ रखता है। भारत के अतिरिक्त विभिन्न देश जैसे रोमानिया, यूरोप एवं चीन में 18वीं शताब्दी में गोमूत्र से अनेक प्रकार की बीमारियों के उपचार का विवेचन उल्लेखित है। गोमूत्र के औषधीय गुणों पर भारत एवं अमेरिका में पेटेंट भी पंजीकृत किये गये हैं।

गोबर का उपयोग

इटली के प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो.जी.ई.पी. गाड ने प्रयोग से यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि गोबर से टी.बी. एवं मलेरिया के जीवाणुओं को नष्ट किया जा सकता है। हैजा एवं अतिसार के रोगियों को गोबरयुक्त पानी पिलाने की प्रथा भी इटली में देखी गयी है। गाय के गोबर में एक्टीनोमाइसिटीज एवं अन्य लाभदायक सूक्ष्म जीव पाये जाते हैं जिनसे विभिन्न प्रकार से पौध रोग एवं मानव रोग के कारकों का विनाश किया जा सकता है। देशी गाय के गोबर के लेप से घरों पर पराबैंगनी किरणों का प्रभाव नहीं होता है। गाय के गोबर का उपयोग खाद के रूप में फसलोत्पादन हेतु किया जाता है। इसके अतिरिक्त इसका उपयोग ईंधन, गोबर गैस संयंत्र एवं जीवाणु नाशक के रूप में भी किया जाता है। गाय के गोबर का उपला जलाने पर किसी भी दुर्गन्ध के बिना मंद ताप उत्पन्न होता है। गोबर के उपले का उपयोग भोजन पकाने में किया जाता है। गाय के गोबर के धुएँ से मक्खी एवं अन्य कीड़ों से सुरक्षा होती है। भारत में आदि काल से घरों की दीवारों के मध्य गोबर रखकर घर बनाये जाते थे जिससे गर्मी एवं ठंडी से बचाव किया जाता था। गाय के गोबर के उपयोग से नाभकीय विकिरण से भी सुरक्षा होती है।

गोभी वर्गीय सब्जियों के दैहिक विकार एवं उनका निदान

श्याम राज सिंह[1] दिनेश कुमार[2] एवं जे. एन. तिवारी[3]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

गोभी वर्गीय सब्जियों का सब्जी उत्पादन में महत्वपूर्ण स्थान है। दुनिया के कुल सब्जी उत्पादन में गोभी वर्गीय सब्जियों का लगभग 11 प्रतिशत हिस्सा है। गोभी वर्गीय सब्जियों के उत्पादन में भारत का दुनिया में दूसरा स्थान है। दुनिया के गोभी वर्गीय सब्जियों के कुल उत्पादन का 13 प्रतिशत पत्तागोभी, 36 प्रतिशत फूलगोभी एवं ब्रोकोली भारत में उत्पादित होता है। गोभी वर्गीय सब्जियाँ ब्रेसीकेसी कुल से संबंध रखती हैं तथा ये कोल फसल के नाम से जानी जाती हैं। इनकी उत्पत्ति जंगली पत्ता गोभी से मानी जाती रही है इसलिये इनकी जलवायु संबंधी आवश्यकताएँ लगभग समान होती हैं। ये सभी शरद ऋतु में ही पैदा की जाती हैं।

गोभी वर्गीय फसलों में फूलगोभी, पत्तागोभी, गाँठगोभी, ब्रोकोली, बटन गोभी तथा केल प्रमुख है। पोषक तत्व प्रदान करने में गोभी वर्गीय सब्जियों का प्रमुख स्थान है। इनमें अधिक मात्रा में विटामिन सी, पाचक रेशा तथा डाई इंडाल मेथेन, सल्फोफेन एवं सिलेनियम जैसे कैंसर रोधी तत्व पाये जाते हैं। इनमें व्याप्त औषधीय गुणों तथा विलक्षण स्वाद के कारण इनकी माँग दिन-प्रतिदिन बढती ज़ा रही है। किन्तु इनमें बीमारियों के अलावा अनेक प्रकार के दैहिक विकार भी होते हैं जिससे न केवल उत्पादकता कम होती है बल्कि उत्पाद की गुणवत्ता कम होने के कारण बाजार में कम कीमत प्राप्त होने के कारण किसानों को आर्थिक हानि होती है।

पोषक तत्वों की कमी, खराब मौसम, अधिक या कम रोशनी, अधिक या कम पानी जैसे अरोगजनक कारकों के कारण दैहिक विकार होता है जबकि फफूँद, विषाणु या जीवाणु जैसे रोगजनकों के कारण बीमारियाँ होती हैं। दैहिक विकार एवं रोगों के लक्षण लगभग समान देखे जाते हैं। अतः निदान के लिए समुचित लक्षण का ज्ञान होना अत्यंत आवश्यक है।

फूलगोभी के दैहिक विकार

फूलगोभी में निम्नलिखित प्रकार के दैहिक विकार होते हैं।

1. वटनिंग

इस दैहिक विकार में फूल गोभी के शीर्ष (हेड) बहुत छोटे-छोटे (बटन के आकार) तथा समय से पहले बनना प्रारंभ हो जाते हैं। पौधों में पत्तियाँ कम एवं छोटी रह जाती हैं जिससे शीर्ष ढक नहीं पाता है। इनमें उपज नहीं के बराबर होती है। इसके निम्नलिखित प्रमुख कारण है।

1. अधिक पुरानी पौध (6 सप्ताह) का रोपण।
2. अगेती प्रजातियों का देर से रोपण।
3. नाइट्रोजन की कमी।
4. अधिक सघन रोपाई।
5. मौसम का अधिक गर्म एवं शुष्क होना।
6. मृदा में पोषक तत्वों की कमी।
7. मृदा का अधिक क्षारीय या लवणीय होना।

वटनिंग समस्या के निवारण हेतु निम्नलिखित उपाय किये जा सकते हैं।

1. सही आयु (21-25 दिन) के पौधों की समुचित दूरी पर रोपाई।
2. प्रजाति का सही वर्गीकरण के अनुसार (अगेती, मध्यम एवं पछेती) रोपाई।
3. पोषक तत्वों का समुचित मात्रा में उपयोग।
4. खड़ी फसल में 0.2 प्रतिशत यूरिया का छिड़काव।
5. फूल गोभी की प्रत्येक क्रांतिक अवस्था में सिंचाई कर नमी बनाये रखना।

2. राइसीनैश

इस विकार को हेयरीनैश भी कहते है। इसमें कई के ऊपर पुष्प कलिकायें बढ़ जाती हैं जिससे उनमें असमान वृद्धि होती है। यद्यपि इससे फूल गोभी के पोषक तत्वों के मान में अन्तर नहीं आता, किन्तु बाजार में किसान को कम कीमत मिलती है। इसके निम्नलिखित कारण हो सकते हैं।

कारण

1. अधिक तापमान का होना।
2. कर्ड का सीधे सूर्य की रोशनी में आना।

[1, 2]प्रधान वैज्ञानिक एवं [3]वरिष्ठ अनुसंधान अध्येता

3. कर्ड के बनते समय अधिक आर्द्र एवं गर्म मौसम का होना।
4. खेत में अधिक नाइट्रोजन का प्रयोग।

निदान

1. क्षेत्र विशेष के लिये अनुमोदित किस्मों का प्रयोग।
2. कर्ड को सीधे रोशनी से बचाने के लिये पत्तियों से ढकना।
3. प्रजातियों की समूह अनुसार रोपण किया जाना।
4. संतुलित उर्वरकों का प्रयोग।

3. शीर्ष का मखमलीपन (फजीनैश)

इस विकार में कर्ड के पुष्प कलिकाओं पर महीन बालों जैसी संरचना बन जाती है जो छूने पर मुलायम एवं मखमली होती है। प्रभावित कर्ड का बाजार में मूल्य गिर जाता है तथा किसान को आर्थिक हानि होती है।

कारण

1. प्रजातियों को उचित समय पर न लगाना।
2. तापमान में निरंतर परिवर्तन होना।
3. कर्ड का अधिक परिपक्व हो जाना।
4. आनुवंशिक कारण।

निदान

1. प्रजातियों को संस्तुत समय पर लगाना।
2. फजीनैश रोधी प्रजातियों का चुनाव।
3. उचित समय पर कर्ड की तुड़ाई।

4. फूलगोभी का पत्तापन (लीफीनैश)

फूलगोभी के शीर्ष के बीच-बीच में छोटी-छोटी हरी पत्तियाँ निकल आती हैं जिसके कारण पूरा शीर्ष खराब हो जाता है तथा उनकी बाजार में उचित कीमत नहीं मिलती है।

कारण

1. इसकी मुख्य कारण वानस्पतिक वृद्धि या कर्ड बनते समय अधिक तापमान का होना है। जो कर्ड बनते समय वानस्पतिक वृद्धि को बढ़ावा देता है तथा पुष्प कलिकायें अविकसित रह जाती हैं।

निदान

1. अधिक तापमान सहन करने वाली प्रजातियों का चुनाव।
2. उचित समय पर फसल की तुड़ाई।

5. अंधापन

शीर्षस्थ कलिका रहित फूलगोभी के पौधे ब्लाइंड कहलाते हैं। जिसकी वजह से कर्ड का निर्माण नहीं होता। सामान्यतः पत्तियाँ लम्बी, मांसल, मोटी एवं गाढ़े हरे रंग की हो जाती हैं।

कारण

1. कम तापमान या पाले के कारण शीर्ष कलिका नष्ट होना।
2. कीड़ों द्वारा शीर्ष कलिका का भाग नष्ट होना।
3. सस्य क्रिया करते समय शीर्ष कलिका का नष्ट होना।

निदान

1. फसल को कम तापमान एवं पाले से बचाने के लिये उचित समय पर सिंचाई करनी चाहिये।
2. कीड़ों से बचाव के लिये कीटनाशी का प्रयोग करें।
3. सस्य क्रिया करते समय शीर्ष कलिका का ध्यान रखें।

6. ब्राउनिंग

फूलगोभी में यह विकार बोरॉन की कमी के कारण होता है। सामान्यतया बोरॉन की कमी के लक्षण पौधे पर कर्ड बनने के बाद दिखायी देते हैं। पहली अवस्था में तने एवं कर्ड पर जलशिक्त धब्बे बन जाते हैं जो बाद में भूरे रंग में बदल जाते हैं। जैसे ही पौधों में वृद्धि होती है तना खोखला हो जाता है जिससे भीतरी सतह के ऊतकों पर जलशिक्त धब्बे बन जाते हैं। बाद में भूरे या गुलाबी रंग के धब्बे कर्ड की सतह पर बन जाते हैं। इसलिये इसे ब्राउनरॉट, रेडरॉट या ब्राउनिंग ऑफ कर्ड कहा जाता है। प्रभावित कर्ड का स्वाद कड़वा हो जाता है। पत्तियों का रंग पहले हल्का हरा तथा तदनुपरान्त पुरानी पत्तियों का किनारा पीला पड़ जाता है। अधिक बोरॉन की कमी होने पर पत्तियों का विकास नहीं होता तथा पत्तियाँ छोटी ही रह जाती हैं। पौधे की शीर्ष कलिका छोटी अवस्था में मर सकती है।

निदान

बोरॉन की कमी को खेत में डाल कर पूरी की जा सकती है।

1. बोरेक्स या सोडियम वोरेट या सोडियम टेट्रावोरेट की 20 किलोग्राम मात्रा प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करें।
2. पौधों में बोरॉन कमी के लक्षण दिखायी देने पर 0.25-0.50 प्रतिशत बोरेक्स के घोल का छिड़काव कर बीमारी से निजात पाया जा सकता है।

7. ह्वीपटेल

फूलगोभी में यह दैहिक विकार मॉलिब्डेनम की कमी के कारण होता है। फूलगोभी की नये पौधों में इस तत्व की कमी के कारण हरिमा हीनता हो जाती है जो कालान्तर में पत्तियों के किनारे से सफेदी लिये प्रतीत होती है। पत्तियाँ बाद में प्यालेनुमा होकर झड़ जाती हैं। पत्तियों के किनारे का अपूर्ण विकास होता है। अधिक मॉलिब्डेनम के कमी की अवस्था में केवल मध्यशिरा का विकास होता है। यह अवस्था समान्यतया ह्वीपटेल कहलाती है। अधिकतर मालब्डेनम की कमी अम्लीय मृदा में होती है जब पी.एच.मान 5.5 से नीचे चला जाता है।

निदान

1. अम्लीय मृदा में लाइम का प्रयोग कर मॉलीब्डेनम की उपलब्धता बढ़ाते हैं।
2. फूलगोभी में ह्वीपटेल के नियंत्रण हेतु मृदा में 1-2 किलोग्राम/हेक्टेयर सोडियम या अमोनियम मॉलीब्डेट का उपयोग करते हैं।
3. खड़ी फसल में 0.1-0.3 प्रतिशत अमोनियम मालीब्डेट को 0.1 टीपल स्टिकर मिलाकर स्प्रे करते हैं।

8. हालो स्टेम

यह विकार फूलगोभी में नाइट्रोजन की अधिकता एवं बोरॉन की कमी के कारण होता है। कर्ड के नीचे तने के मांसल भाग में अन्य भागों की अपेक्षा अधिक तेजी से वृद्धि के कारण खोखला हो जाता है जो एक तरफ बढ़कर बाहर खुल जाता है। इसमें कवक एवं जीवाणु के प्रकोप से सड़न होने लगती है। पौधे पर जलशिक्त एवं मलिन धब्बे दिखायी देते हैं। नाइट्रोजन की अधिकता एवं कम पौधों की संख्या होने पर इसका प्रकोप अधिक दिखायी देता है।

निदान

1. खेत में कम नाइट्रोजन का प्रयोग करें।
2. पौध से पौध की दूरी घटायें।
3. मृदा में रोपण से पूर्व 15-20 किलोग्राम/हेक्टेयर की दर से बोरॉन का उपयोग करें।
4. खड़ी फसल पर 0.1-0.3 प्रतिशत बोरेक्स का घोल बनाकर छिड़काव करें।

9. पिंकिंग

मौसम के बदलाव, फसल वृद्धि के समय किसी पोशक तत्व की कमी या अधिक धूप की वजह से फूलगोभी के शीर्ष (कर्ड) में ऐन्थोसाएनिन नामक वर्णक बनने लगता है। इससे कर्ड का रंग हल्का बैंगनी या गुलाबी हो जाता है जो कर्ड के दूधिया रंग से भिन्न होता है और बाजार भाव को प्रभावित होता है।

निदान

1. कर्ड को धूप से बचाने के लिये पत्तियों या खाकी कागज से ढकना चाहिये या शीर्ष की पत्तियों को रबर बैंड की सहायता से बाँध देना चाहिये।
2. रोपण के साथ ध्यान रहे कि पौधे की जड़े नष्ट न हों एवं संतुलित उर्वरकों का प्रयोग किया जाये।

बन्दगोभी के दैहिक विकार

1. टिप वर्न

यह बन्दगोभी की मुख्य विकार है। इसमें बाह्य रूप से कोई लक्षण स्पष्ट नहीं होता, लेकिन पत्तियों का भीतरी किनारा भूरा होकर मुरझा जाता है और पूरा हेड बेकार हो जाता है। कैल्सियम की कमी इसका प्रमुख कारण होता है। अधिक नाइट्रोजन के उपयोग से यह दुर्गुण और बढ़ जाता है। इसके अलावा खराब जल निकासी, समय से पहले रोपण, पौधे से पोधे की दूरी में अधिक अन्तराल एवं अधिक देर से कटाई भी इसके कारण हैं।

निदान

1. 200 पी.पी.एम. का कैल्सियम ग्लूकोनेट का पानी के साथ छिड़काव करें।
2. पूरे खेत में समान नमी बनाये रखें।
3. पौध से पौध के बीच की दूरी कम रखें।
4. कटाई निश्चित समय पर करें।

2. शीर्ष का फटना (हेड क्रेकिंग)

कभी-कभी पत्ता गोभी का हेड फट जाता है। यह सूखे के बाद अधिक पानी दिये जाने, अधिक वर्षा होने या देर से कटाई के कारण ऐसा होता है। कभी-कभी कीड़ों द्वारा ऊपरी पत्तियों के क्षतिग्रस्त होने से भी यह दुर्गुण दिखायी देता है।

निदान

इस समस्या का निदान हेतु संतुलित नाइट्रोजन का प्रयोग, समुचित सिंचाई द्वारा पौध वृद्धि को संतुलित रखकर सही समय पर कटाई एवं फटन रोधी प्रजातियों का उपयोग किया जा सकता है।

3. ब्लैक पिटियोल

जब शीर्ष (हेड) पकने की अवस्था में पहुँचता है उस समय अन्दर की पत्तियों का पृष्ठीय भाग तथा मध्य सिरा भूरा या काला हो जाता है। इसमें परैनकाइमा कोशिकाओं का साइटोप्लाज्म नष्ट हो जाता है तथा काला पड़ जाता है। यह माना जाता है कि यह विकार पौटेशियम की कमी एवं फास्फोरस की अधिकता के कारण होता है। अधिक नाइट्रोजन का उपयोग इस समस्या को और बढ़ा देता है। यह विकार अधिक समय तक पत्ता गोभी के भंडारण से और बढ़ता है।

निदान

संतुलित पोटैशियम, फासफोरस एवं नाइट्रोजन का प्रयोग करें।

4. ब्लैक स्पेक

इसमें काले धब्बे शीर्ष (हेड) की पत्तियों के ऊपर बनते हैं जिससे शीर्ष बदरंग हो जाता है। अधिक उर्वरकों के प्रयोग, ज्यादा पौध विकास, पादप वृद्धि नियामकों का प्रयोग तथा परिवर्तित ताप पर इसका प्रकोप अधिक होता है। यद्यपि इसका सही कारण ज्ञात नहीं है।

निदान

1. अधिक पोटैशियम के प्रयोग से विकार में कमी आती है।
2. रोग रोधी प्रजातियों (देर से पकने वाली) का चुनाव करें।

5. निक्रोटिक स्पाट

निक्रोटिक स्पाट और ब्लैक स्पेक एक समान ही धब्बे होते हैं। इनमें कोशिकाओं का समूह लगातार मरता रहता है। इससे वैसकुलर टिसू अधिक प्रभावित होते हैं। इसमें पैरेन काइमा कोशिका अधिक प्रभावित होती है जबकि बाह्य कोशिकाएँ स्वस्थ रहती हैं। निक्रोटिक स्पाट एवं मध्य शिरा, कोर तथा पत्तियों के फसल पर दिखायी देते हैं। यह विकार भंडारण के समय दिखायी देता है। इसका कारण ज्ञात नहीं है।

निदान

1. विकार रोधी प्रजाति का चयन करें।

ब्रोकोली के दैहिक विकार

1. वोल्टिंग

ब्रोकली में शीर्ष की अल्प विकसित अवस्था में बीज तन्तु बाहर निकल आते हैं जिससे खाने वाले भाग की गुणवत्ता पूर्णतः नष्ट हो जाती है तथा बाजार में भाव नहीं मिलता। इसके मुख्य कारणों में अगेती बोआई, कम एवं अधिक तापमान, पौध की कमजोर वृद्धि, घटिया बीज एवं असंतुलित उर्वरकों का प्रयोग है।

निदान

1. समय पर बोआई करें।
2. संतुलित उर्वरकों का प्रयोग।

2. तने का खोखलापन (होलो स्टेम)

नाइट्रोजन की अधिकता वाली भूमि में ब्रोकोली के तने में रिक्त स्थान बन जाता है। कभी शीर्ष (हेड) में भी खोखलापन देखा जाता है। अगेती फसल में अधिक प्रकोप दिखायी देता है। यद्यपि इसके लक्षण बाहर से दिखायी नहीं देते हैं।

निदान

1. संतुलित नाइट्रोजन का प्रयोग करें।
2. पौध से पौध के बीच कम अंतराल रखें।

"प्रांतीय ईर्ष्या-द्वेष को दूर करने में जितनी सहायता इस हिन्दी प्रचार से मिलेगी, उतनी दूसरी किसी चीज से नहीं मिल सकती।"

–सुभाषचंद्र बोस

लहसुन के औषधीय उपयोग एवं उत्पादन तकनीकी

जे.एन. तिवारी[1] एवं श्याम राज सिंह[2]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

लहसुन की उन्नत खेती एवं औषधीय गुण

लहसुन प्याज कुल का पौधा है जिसका भूमिगत तना अनेक छोटी-छोटी कलिकाओं से मिलकर बनता है, कन्द कहलाता है। इसमें एलिसिन सल्फरयुक्त पदार्थ पाया जाता है जो स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है। इसका उपयोग मसाले का पाउडर, सिरका, अचार, टमाटर का केचप आदि बनाने में किया जाता है। इसकी हरी पत्तियों चटनी बनाने में काम आती हैं। इसमें अनेक पोषक तत्व पाये जाते हैं जिसमें 100 ग्राम कन्द में 6.3 ग्राम प्रोटीन, 0.1 ग्राम वसा, 10.0 ग्राम खनिज तत्व, 0.8 ग्राम रेशा, 29.8 ग्राम कार्बोहाइड्रेट के अतिरिक्त 145 कैलोरी ऊर्जा भी होती है। साथ ही 160 मिलीग्राम कैल्सियम, 370 मिलीग्राम फॉस्फोरस, 71 मिलीग्राम मैग्नीशियम, 6.5 मिलीग्राम लौह तत्व, 1.93 मिलीग्राम जस्ता, 0.86 मिलीग्राम मैग्नीज, 0.63 मिलीग्राम ताँबा तथा 13 मिलीग्राम विटामिन सी, 0.23 मिलीग्राम तथा विटामिन बी-2 0.06 मिलीग्राम विटामिन बी-1 आदि पाये जाते हैं। लहसुन में जीवाणओं, कवक एवं विषाणुओं से लड़ने की विशेष क्षमता होती है। अनेक औषधीय गुण विद्यमान होने के कारण यह पेट के विकारों को दूर रखने में सहायक होता है। इसलिए इससे बने कैप्सूल दवाओं के रूप में प्रयोग किये जाते हैं। यह हृदय रोग, फेफड़ों के रोगों, बंध्यता एवं कैंसर रोगों में अत्यन्त ही लाभकारी होता है।

औषधीय विशेषताओं के कारण ही लहसुन एलोपैथी, होम्योपैथी, आयुर्वेद, यूनानी आदि चिकित्सा पद्यतियों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। भोजन के साथ-साथ घरेलू नुस्खे के रूप में लहसुन का उपयोग कर बहुत सी बीमारियों का मुकाबला किया जा सकता है। हमारी रोजमर्रा के जीवन में लहसुन का उपयोग विभिन्न रोगों के लिए किया जाता है।

1. लहसुन अण्डूसा के पत्तों का रस गाय का घी को गरम दूध में मिलाकर सेवन करने से क्षय रोग से छुटकारा मिलता है।
2. लहसुन की एक कली प्रतिदिन सेवन करने से लकवा की बीमारी ठीक होती है।
3. लहसुन के सेवन करने से रक्त के कोलेस्ट्रॉल को कम कर हृदय रोग से बचाता है तथा यह अन्य बीमारियों से लड़ने की क्षमता भी प्रदान करता है। यह ठंड से भी छुटकारा प्रदान करता है।
4. लहसुन के सेवन से प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि होती है।
5. एक चम्मच लहसुन का रस निकालकर पीने से दस्त में तुरन्त आराम मिलता है।
6. लहसुन एक शक्तिशाली कीटाणु नाशक होता है। लहसुन के रस में रस के बराबर पानी मिलाकर पीने से हैजे के कीटाणु मर जाते हैं।
7. लहसुन में पाया जाने वाला सल्फाइड वसन तंत्र के रोगों को दूर करने के लिए लाभदायक होता है।
8. लहसुन के 15 प्रतिशत रस के घोल से अल्सर के घावों को धोने से काफी फायदा मिलता है।
9. लहसुन को तिल के तेल के साथ सेवन से वात रोग से निजात मिलती है।
10. लहसुन के रस को कुछ बूँदें कान में डालने से कान का दर्द चला जाता हैं तथा बहरे पन में भी काफी आराम होता है।
11. कच्चे लहसुन की 1-2 कलियों का सुबह-शाम सेवन करने से वायु रोग, फेफड़ों से संबंधित रोग और मोटापा दूर करने में फायदा मिलता है।
12. लहसुन के रस की कुछ बूँदें मुँह में डालने से मिर्गी के रोगी को होश आ जाता है।
13. लहसुन को पीस कर पेस्ट बनाकर लगाने से उसे कवक द्वारा होने वाले रोग, दाद पर लगाने से दाद रुक जाता है तथा जलन होने पर देशी घी लगाने से जलन में कमी हो जाती है।
14. लहसुन के रस को शरबत में मिलाकर पीने से काली खाँसी और कुक्कर खाँसी ठीक हो जाती है।
15. लहसुन को पीसकर सरसों के तेल में पकाकर बच्चों की छाती तथा पीठ पर लगाने से ठंड लगने में फायदा मिलता है।
16. लहसुन हल्दी और गुड़ को एक साथ मिलाकर पीस कर सेवन करने से अंदरूनी चोट से काफी आराम मिलता है।
17. अधिक ऐंटीऑक्सीडेन्ट होने के कारण इसके सेवन से अल्जाइमर एवं डिमेन्सिया जैसी बीमारियों से छुटकारा मिलता है।

[1]वरिष्ठ अनुसंधान अध्येता एवं [2]प्रधान वैज्ञानिक

लहसुन की उन्नत खेती

भारत का लहसुन उत्पादन के क्षेत्र में विश्व में दूसरा स्थान है। किन्तु इसकी उत्पादकता का स्तर 4.8 टन प्रति हेक्टेयर है जबकि इजिप्ट में 24.33 टन/हे., चीन में 23.09 टन/हे. तथा अमेरिका में 18.94 टन प्रति हेक्टेयर है। कम उत्पादकता का मुख्य कारण उन्नतशील प्रजातियों का अभाव तथा वैज्ञानिक उत्पादन तकनीकी का किसानों द्वारा नहीं अपनाया जाना है। उन्नत प्रजातियों तथा तकनीकियों को अपनाकर किसान लहसुन के उत्पादन को बढ़ा सकते हैं।

जलवायु

लहसुन सामान्यतया (रबी) सर्दियों में उगायी जाने वाली सहनशील फसल है। इसकी वृद्धि एवं विकास के लिए ठंडी एवं आर्द्र जलवायु की आवश्यकता होती है। लहसुन के विकास के लिए तापमान 12-24 डिग्री सेल्सियस तापमान को उत्तम माना जाता है।

भूमि

लहसुन कंदवर्गीय फसल होने के कारण बलुई दोमट एवं दोमट भूमि जिसमें जीवांश पदार्थ प्रचुर मात्रा में हो लहसुन की खेती के लिए अच्छी मानी जाती है। लहसुन के लिए 6 से 7 के मध्य की पी.एच. मान वाली मृदा होनी चाहिए तथा उसमें उचित जल निकास की व्यवस्था भी हो।

उन्नत किस्में

लहसुन की प्रमुख प्रजातियाँ

भीमा ओकार, भीमा परपल, सी.आई.टी.एच. गार्लिक-1 सी.आ.ई.टी.एच. गार्लिक-एम-2, यमुना सफेद-1, यमुना सफेद 2, एग्रीफाउड सफेद (जी.41) एग्री 41305, पार्वती, गोदावरी, वेता, पूसा सलेक्शन-10, एच.जी.-2, वी.एल. 6, वी.एल.7 आदि।

खाद एवं उर्वरक

लहसुन की अधिक उपज प्राप्त करने के लिए अंतिम जुताई के समय 20 टन सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट खाद फैलाकर मिला देनी चाहिए तथा 100 किलोग्राम नाइट्रोजन, 50 किलोग्राम फास्फोरस, 50 किलोग्राम पोटॉश प्रति हेक्टेयर की दर से देना चाहिए। नाइट्रोजन की 1/3 मात्रा, फास्फोरस एवं पोटॉश की पूरी मात्रा बीज बोने से पूर्व डालना चाहिए। शेष नाइट्रोजन की मात्रा को दो बराबर भागों में बाँटकर 20-25 और 40-45 दिन बाद उपरिवेशन टॉप डैसिंग विधि से उपयुक्त पाया गया है।

बीज की मात्रा, दूरी तथा बोने का समय

लहसुन की एक हेक्टेयर क्षेत्र में पैदावार के लिए 400-500 किलोग्राम स्वस्थ कलियों की आवश्यकता होती है। बोआई से पूर्व कलियों को फफूँदीनाशक जैसे कैप्टान या एमिसान के घोल (2.5 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी) से एक मिनट तथा उपचारित करें। इसके लिए 15 सेंटीमीटर तथा पौधे-से-पौधे की दूरी 8 सेंटीमीटर की दूरी रखनी चाहिए। इसकी बोआई का सितंबर से अक्टूबर माह का समय सबसे उत्तम माना जाता है।

सिंचाई

लहसुन एक उथली जड़ वाली फसल है जिसकी अधिकांश जड़ें भूमि की ऊपरी सतह पर फैली रहती है। इसीलिए मृदा में नमी की कमी नहीं होनी चाहिए। बोआई के तुरन्त बाद एक हल्की सिंचाई करने से कलियों का अंकुरण अच्छा होता है तथा सर्दियों में 10-15 दिन के अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिए। गर्मियों के दिनों में एक सप्ताह के अन्तर पर करते हैं।

खरपतवार नियंत्रण

लहसुन के अच्छे विकास के लिए फसल की पहली निराई-गुड़ाई बोआई के 20-25 दिन बाद और दूसरी 40-45 दिन बाद करनी चाहिए। ऑक्सीफ्यूरोफेन (23.5 ईसी) का 0.2 प्रतिशत रोपाई पूर्व छिड़काव रोपाई के 40-60 दिन के भीतर एक निराई-गुड़ाई से सभी खरपतवारों से निजात मिलती है तथा अधिक उपज प्राप्त होती है।

उत्पादन

लहसुन की औसत उपज 8-10 टन प्रति हेक्टेयर होती है।

खुदाई एवं भंडारण

लहसुन के कन्द 160 से 180 दिन में खुदाई के लिए तैयार हो जाते हैं। इसका पौधा जब ऊपर से सूखकर झुकने या गिरने लगता है तो इसकी खुदाई करनी चाहिए। यदि देरी से खुदाई की जाये तो कन्द फैलने लगते हैं और गुणवत्ता भी कम होन लगती है। खुदाई के बाद कंद को 3 से 4 दिनों तक छाया में सुखाने के बाद पत्तियों को बाँधकर गुच्छियाँ बना लेते हैं। इसका भंडारण शुष्क हवादार एवं अंधेरे कमरे में करते हैं और शीतगृह में 0 से 2 डिग्री तापमान तथा 65-75 प्रतिशत आर्द्रता पर उसे 4 महीने तक रख सकते हैं।

फसल सुरक्षा

थ्रिप्स (चुरडा) कीट

यह लहसुन का सबसे खतरनाक कीट है जो आकार में छोटा, हल्के पीले एवं भूरे रंग का होता है। यह कीट पत्तियों का रस चूसता है। इस कारण पत्तियों पर सफेद चमकदार धब्बे बन जाते हैं और बाद में पत्तियाँ मुड़ जाती हैं।

इसके रोकथाम के लिए साइपरमेथ्रिन (25 ई.सी.) कीटनाशक का छिड़काव करना चाहिए। यदि कीट का प्रकोप कम नहीं होता है तो इसी दवा को 10-15 दिन के अंतर पर दोहरायें।

बैंगनी धब्बा (पर्पिल लाँच)

यह रोग एक फफूँद के कारण होने वाला रोग है। इस रोग के लक्षण पत्तियों पर छोटे धंसे हुए जामुनी या गहरे भूरे रंग के धब्बे बनते हैं। इसके रोकथाम के लिए कलियों को बोने से पूर्व बेविस्टिन नामक दवा (1.0 ग्राम प्रति लीटर पानी) में एक मिनट तक डुबाकर उपचारित करना चाहिए तथा खड़ी फसल में रोग के प्रकोप को रोकने के लिए 1.25 किलोग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराइड को 1000 लीटर पानी में घोल कर किसी चिपकने वाले पदार्थ के साथ मिला कर प्रति हेक्टेयर की दर से 10 से 15 दिन के अन्तराल पर छिड़कना चाहिए।

महादेवी वर्मा : एक परिचय

महादेवी वर्मा (26 मार्च, 1907 से 11 सितंबर, 1987) हिन्दी की सर्वाधिक प्रतिभावान कवयित्रियों में से हैं। वे हिन्दी साहित्य में छायावादी युग के चार प्रमुख स्तंभों में से एक मानी जाती हैं। आधुनिक हिन्दी की सबसे सशक्त कवयित्रियों में से एक होने के कारण उन्हें आधुनिक मीरा के नाम से भी जाना जाता है। कवि निराला ने उन्हें 'हिन्दी के विशाल मन्दिर की सरस्वती' भी कहा है। महादेवी ने स्वतंत्रता के पहले का भारत भी देखा और उसके बाद का भी। वे उन कवियों में से एक हैं जिन्होंने व्यापक समाज में काम करते हुए भारत के भीतर विद्यमान हाहाकार, रुदन को देखा, परखा और करुण होकर अंधकार को दूर करने वाली दृष्टि देने की कोशिश की। न केवल उनका काव्य बल्कि उनके समाजसुधार के कार्य और महिलाओं के प्रति चेतना भावना भी इस दृष्टि से प्रभावित रहे। उन्होंने मन की पीड़ा को इतने स्नेह और शृंगार से सजाया कि दीपशिखा में वह जन-जन की पीड़ा के रूप में स्थापित हुई और उसने केवल पाठकों को ही नहीं समीक्षकों को भी गहरायी तक प्रभावित किया।

उन्होंने खड़ी बोली हिन्दी की कविता में उस कोमल शब्दावली का विकास किया जो अभी तक केवल बृजभाषा में ही संभव मानी जाती थी। इसके लिए उन्होंने अपने समय के अनुकूल कोमल शब्दों को चुनकर हिन्दी का जामा पहनाया। संगीत की जानकार होने के कारण उनके गीतों का नाद-सौंदर्य और पैनी उक्तियों की व्यंजना शैली अन्यत्र दुर्लभ है। उन्होंने अध्यापन से अपने कार्यजीवन की शुरुआत की और अंतिम समय तक वे प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाचार्या बनी रहीं। उनका बाल-विवाह हुआ परंतु उन्होंने अविवाहित की भांति जीवन-यापन किया। प्रतिभावान कवयित्री और गद्य लेखिका महादेवी वर्मा साहित्य और संगीत में निपुण होने के साथ-साथ, कुशल चित्रकार और सृजनात्मक अनुवादक भी थीं। उन्हें हिन्दी साहित्य के सभी महत्त्वपूर्ण पुरस्कार प्राप्त करने का गौरव प्राप्त है। भारत के साहित्य आकाश में महादेवी वर्मा का नाम ध्रुव तारे की भांति प्रकाशमान है। गत शताब्दी की सर्वाधिक लोकप्रिय महिला साहित्यकार के रूप में वे जीवन भर पूजनीय बनी रहीं। वर्ष 2007 उनकी जन्म शताब्दी के रूप में मनाया गया।

लौकी की वैज्ञानिक खेती

वी.के. सिंह[1], मनोज कुमार सोनी[2] एवं अनिल कुमार यादव[3]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

लौकी की वैज्ञानिक खेती

लौकी पौष्टिक गुणों से भरपूर एक महत्वपूर्ण सब्जी है। इसका सब्जी के अलावा रायता, कोफ्ता, हल्वा, अचार, खीर आदि व्यंजन बनाने के लिये भी प्रयोग किया जाता है। कब्ज को कम करने, पेट को साफ, खाँसी या बलगम दूर करने में भी यह अत्यन्त लाभकारी होता है। इसके मुलायम फलों में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, खाद्य रेशा, खनिज लवण के अलावा प्रचुर मात्रा में अनेक विटामिन पाये जाते हैं। लौकी की पत्ती के रस को चीनी मिलाकर पीने से पीलिया रोग ठीक हो जाता है। इसके फलों के रस को शहद मिलाकर लगाने से दृष्टि दोष ठीक हो जाती है। इसके बीज से प्राप्त तेल सरदर्द में राहत दिलाता है। लौकी की खेती पहाड़ी क्षेत्रों से लेकर दक्षिण भारत के राज्यों तक विस्तृत रूप में की जाती है। निर्यात की दृष्टि से सब्जियों में लौकी अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

उद्भव एवं वितरण

लौकी का उद्भव स्थान अफ्रीका एवं भारत है जहाँ से इसका प्रसार अन्य पश्चिमी देशों में हुआ। इसका नामकरण बोतल के आधार पर किया गया है। यह गोल, अण्डाकार, लंबा, गदानुमा, तुमड़ी तथा बेलनाकार आदि अन्य आकारों की भी होती है।

वंशः यह केवल अकेला वंश नहीं है बल्कि इसका वितरण अन्य वंशों के साथ उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में देखा जा सकता है। भारत में लौकी प्रायः सभी राज्यों में होती है। इसका गुणसूत्र संख्या (2n=22) होता है। लौकी को घिया, दूधी, लाउ, जातिलाऊ, सोराकाया, अलाऊ, घई, द्धालागुमला, भोपला, सोराकायी, कद्दू आदि नामों से भी जानते हैं।

सारणी 1 : लौकी में पाये जाने वाले पोषक तत्वों की मात्रा (प्रति 100 ग्राम खाने योग्य भाग)।

पोषक तत्व	मात्रा प्रति 100 ग्राम	पोषक तत्व	प्रति 100 ग्राम
पानी	96.1 ग्राम	पोटैशियम	87.00 मिलीग्राम
वसा	1.0 ग्राम	सल्फर	10.00 मिलीग्राम
रेशा	0.6 ग्राम	थायामिन	0.03 मिलीग्राम
प्रोटीन	0.2 ग्राम	निकोटिनिक अम्ल	0.20 मिलीग्राम
खनिज	0.5 ग्राम	कॉपर	0.3 मिलीग्राम
कार्बोहाइड्रेट	2.5 ग्राम	विटामिन-ए	0.00 मिलीग्राम
फास्फोरस	10.0 मिलीग्राम	रिबोफ्लेविन	0.02 मिलीग्राम
कैल्सियम	20.00 मिलीग्राम	विटामिन-सी	6.00 मिलीग्राम
लोहा	0.70 मिलीग्राम	ऊर्जा	12 किलो कैलोरी
मैग्नीशियम	5.00 मिलीग्राम		

स्रोतः गोपालन एवं सहयोगी, 1999

सारणी 2 : लौकी के बीज में पाये जाने वाले विभिन्न एमिनो अम्ल तथा उनकी मात्रा।

तत्व	बीज से प्राप्त होने वाले एमिनो अम्ल की मात्रा	
	ग्राम/100 ग्राम	ग्राम/160 ग्राम
एस्पार्टिक अम्ल	2.41	7.49
थ्रेकोमाइन	0.85	2.64
सेरीन	1.24	3.85
ग्लूटामिन अम्ल	4.71	14.64
वैलीन	0.83	2.58
ग्लाइसीन	1.44	4.47
एलाइन	1.22	3.79
सिस्टीन	0.49	1.52
वैलीन	1.33	4.13
मैथिओनीन	0.70	2.18
आइसेल्यूसीन	0.99	3.08
ल्यूसीन	1.80	5.59
टापरोसीन	0.80	2.49
फिनायल लैलाइन	1.72	2.24
लइसीन	0.87	2.70
अर्जीनीन	4.77	14.82

स्रोतः गोपालन एवं सहयोगी, 1982

[1]प्रधान वैज्ञानिक एवं [2,3]वरिष्ठ अनुसंधान अध्येता

जलवायु

लौकी की अच्छी पैदावार के लिये गर्म एवं आर्द्रता वाले भौगोलिक क्षेत्र सर्वोत्तम होते हैं। अतः इसकी फसल जायद तथा खरीफ दोनों ऋतुओं में सफलतापूर्वक उगायी जाती है। लौकी पाले के प्रति सुग्राही होता है फिर भी जाड़े को सहन कर लेने वाली इसकी स्थानीय प्रजातियाँ उपलब्ध हैं। अधिक वर्षा एवं बादल वाले मौसम में रोगों एवं कीड़ों का प्रकोप ज्यादा होता है। बीज फसल उगाने के लिये बरसात का मौसम अधिक उपयुक्त होता है क्योंकि गर्म एवं आर्द्र वातावरण के कारण फल अधिक संख्या में बनते हैं और फलों में बीज का विकास भी अच्छा होता है। बीज अंकुरण के लिए 30-35° सेल्सियस और पौधों की बढ़वार के लिए 32-38° सेल्सियस तापमान सर्वोत्तम होता है।

भूमि और भूमि की तैयारी

बलुई दोमट या जीवांश युक्त चिकनी मिट्टी जिसमें जलधारण क्षमता अधिक हो तथा पी.एच. मान 6-7 होनी चाहिये। पथरीली या ऐसी भूमि जहाँ पानी लगता हो तथा जल निकास का अच्छा प्रबंध नहीं हो, इसकी खेती के लिए अच्छी नहीं होती है। खेत की तैयारी के लिए पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से तथा बाद में पाटा चलाकर मिट्टी को भुरभुरी एवं समतल कर लेना चाहिये जिससे खेत में सिंचाई करते समय पानी कम या ज्यादा नहीं लगे।

मल्चिंग

लौकी की खेती में मल्चिंग के प्रयोग से भूमि में नमी एवं खरपतवार रोकने में मदद मिलती है। खेत में उभरी हुई क्यारी या बेड तैयार करते हैं जो 90 सेंटीमीटर चौड़ी होती है। बेड तैयार करने के बाद काली या सिल्वर रंग की प्लास्टिक मल्चिंग अल्ट्रा-वाइलेट प्रतिरोधी - 50 - माइक्रान मोटी मल्चिंग का प्रयोग से खरपतवार की वृद्धि नहीं होती, श्रमिक खर्च में बचत होती है और उपज की गुणवत्ता भी बढ़ जाती है।

टपक सिंचाई

लौकी की खेती में पानी की उचित मात्रा समय-समय पर देनी होती है। अतः पौधों को उचित एवं सही मात्रा में पानी देने के लिये पौधे के पास टपक पाइप बिछायी जाती है जिससे आवश्यकतानुसार सीधे पौधे की जड़ों को बूंद-बूंद पानी दिया जाता है। मल्चिंग और टपक से पानी की खपत को कम किया जा सकता है एवं गुणवत्ता युक्त अधिक उपज प्राप्त होती है।

खाद एवं उर्वरक

खेत तैयार करते समय गोबर की सड़ी हुई खाद या कम्पोस्ट को अच्छी तरह से मिला देते हैं जिससे खेत की उर्वरा शक्ति बनी रहती है। इसके बाद नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटॉश 50:35:30 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से देना चाहिये। नाइट्रोजन की आधी मात्रा दो समान भागों में बाँटकर 5-10 पत्तियों की अवस्था तथा पोटॉश आदि की मात्रा पौधों में फूल बनने से पहले जड़ के पास टॉप ड्रेसिंग में देनी चाहिये।

यदि लौकी की खेती बेड बनाकर करते हैं तो उस बेड की लंबाई और चौड़ाई के हिसाब से सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट खाद तथा नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश की मात्रा देनी चाहिये। सामान्यतया एक बेड में 1.0 किलोग्राम यूरिया, 1 किलोग्राम, म्यूरेट ऑफ पोटाश और 1.5 किलोग्राम, डी.ए.पी. बोआई से पहले बेड तैयार करते समय देनी चाहिये। फिर फूल आते समय ड्रिप फर्टीगेशन करनी चाहिये जिससे उर्वरक की निश्चित मात्रा सीधे पौधे की जड़ में पहुँच जाती है।

बीज की मात्रा

अच्छी बेड या खेत बन जाने के बाद सीधे बीज बोआई के लिये सामान्यतः 2.0 से 3.0 किलोग्राम बीज एक हेक्टेयर क्षेत्रफल के लिये होता है। लेकिन जब पॉलिथीन के थैलों या वातावरण युक्त गृह में प्रो ट्रे में नर्सरी में उत्पादन करने में 1.5 किलोग्राम बीज पर्याप्त होता है।

बोआई का समय

लौकी की बोआई गर्मी के दिनों में 20 फरवरी से 03 मार्च तक तथा वर्षा ऋतु 05 जून से 05 जुलाई तक करते हैं। पहाड़ी इलाकों में मार्च-अप्रैल के महीने में बोआई करनी चाहिये।

बुआई की विधि

गर्मी के मौसम में लौकी की बोआई के लिए 2.5-3.5 मीटर एवं वर्षा के मौसम में 4-4.5 मीटर की दूरी पर 50 सेंटीमीटर चौड़ी एवं 2.5-3.0 सेंटीमीटर गहरी नाली बना लेते हैं। नालियों के दोनों किनारे पर 60-75 सेंटीमीटर गर्मी वाली फसल एवं वर्षा वाली फसल में 85-90 सेंटीमीटर की दूरी पर बोआई करते हैं। एक स्थान पर 2-3 बीज 4 सेंटीमीटर गहराई पर बोआई करनी चाहिये। यदि लौकी की बोआई बेड बनाकर करते हैं तो बरसात के मौसम में पानी लगने की समस्या से निजात पाया जा सकता है और अच्छी फसल प्राप्त की जा सकती है।

सिंचाई

वर्षा ऋतु में लौकी के खेत की सिंचाई करना आवश्यक नहीं है किन्तु जब वर्षा नहीं हो तो उस समय 10-12 दिन के अन्तराल पर सिंचाई की आवश्यकता होती है। लेकिन यदि ड्रिप द्वारा सिंचाई करनी हो तो ड्रिप से बेड की सिंचाई कर सकते हैं। अधिक वर्षा होने की स्थिति में बेड या खेत में लगे पौधे के किनारे पानी निकालने के लिये नालियों को गहरा एवं चौड़ा बनाना चाहिये जिससे पानी लगने की समस्या से निजात मिल जाती है। गर्मी के मौसम में पौधे की सिंचाई 4-6 दिन के अन्तराल पर करनी चाहिये।

खरपतवार नियंत्रण एवं निकाई गुड़ाई

बरसात के दिनों में खरपतवार बहुत अधिक हो जाते हैं जो पौधे की बढ़त एवं फलत को रोक देते हैं। खरपतवार को साफ करने के लिये खुरपे से पौधे की जड़ तथा आसपास के घास को साफ करने से अच्छी फलत एवं बढ़त होती है। अच्छी फलत एवं विकास के लिये गर्मियों के दिनों में उगी घास को 3-4 बार निकाई-गुड़ाई कर निकालना चाहिये। रासायनिक खरपतवारनाशी दवा के रूप में ब्यूटाक्लोर रसायन की 2.0 किलोग्राम मात्रा प्रति हेक्टेयर की दर से बीज बोआई के तुरन्त बाद छिड़काव कर देना चाहिये।

सहारा देना

बरसात के मौसम में लौकी की अच्छी एवं गुणवत्तायुक्त अधिक उपज लेने के लिये लौकी के पौधे को बांस, मजबूत लकड़ी या लोहे से बने मचान पर चढ़ा कर खेती करनी चाहिये। पौधे को मचान की सहायता देने से बरसात के मौसम में लौकी के फल जमीन से छूते नहीं है जिससे उसमें सड़ने-गलने तथा दाग लगने की संभावना कम हो जाती है। मचान का प्रयोग करने से फल आकर्षक एवं गुणवत्ता युक्त होते हैं एवं फल की लंबाई प्रजाति के अनुसार 30-40 सेंटीमीटर की हो जाती है। मचान का प्रयोग करने के लिये पौधे 25-30 सेंटीमीटर लम्बे हो जाये तो जूट या नायलोन की रस्सी या वृक्ष की डालियों के सहारे चढ़ा देना चाहिये। प्रारंभिक अवस्था में निकलने वाली कुछ शाखाओं को काटकर निकाल देते हैं। इससे उसके ऊपर निकलने वाली शाखाओं में फल ज्यादा एवं अच्छे बनते हैं। मचान की ऊँचाई लगभग 5.5-6.0 फीट तक रखनी चाहिये जिससे खरपतवार से छुटकारा एवं श्रम की बचत हो।

फलों की तुड़ाई एवं उपज

लौकी के फलों की तुड़ाई मुलायम एवं कम वजन (750-1000 ग्राम) की अवस्था में कर लेनी चाहिये। इससे अधिक दिन छोड़ने पर फलों में कड़ापन, बीज बड़े एवं कठोर बन जाते हैं। फल के बीज जब अर्द्ध विकसित तथा कोमल हों, गूदा कसा हो तो तोड़ने की यही लिये सही अवस्था होती है। बीज बोने के 60-70 दिनों के बाद फल की तुड़ाई की जाती है। फल की तुड़ाई डंठल लगी अवस्था में किसी तेज चाकू या सिकेटियर से करनी चाहिये। फलों के तुड़ाई बरसात या गर्मी में हर 2-3 दिन में एवं जाड़े वाली लौकी की तुड़ाई 5-6 दिन में करनी चाहिये इससे पौधे में ज्यादा फल लगता है। खाने के लिये लौकी 5-6 दिनों तक सामान्य तापक्रम पर कमरे में रख सकते हैं।

लौकी के फलों की तुड़ाई

रजत प्लास्टिक मल्चिंग में लौकी की खेती

लौकी में लगने वाले रोग

फल विगलन रोग

इस रोग की पहचान फलों पर लगे कवकों की अत्यधिक वृद्धि से होती है। इससे फल जमीन पर सड़ना शुरू हो जाता है। जमीन पर पड़े फलों का छिल्का सामान्यतः नरम एवं गहरे रंग का होता है। नमी युक्त वायुमण्डल में सड़े हुए भाग पर रूई जैसे कवक के जाल फैल जाते हैं। लौकी का भंडारण एवं परिवहन के समय भी फलों में कवक जाल फैल जाते हैं।

नियंत्रण

यदि जमीन पर फैलाकर खेती करनी है तो खेत में उचित जल निकासी व्यवस्था होनी चाहिये। फलों को भूमि के स्पर्श में न आने दें तथा मचान बनाकर खेती करें। भंडारण एवं परिवहन के समय फलों में चोट लगने से बचायें तथा हवादार एवं खुली जगह पर रखें।

मृदुरोमिल फफूँदी

यह रोग वर्षा एवं गर्मी वाली दोनों फसल में समान रूप से आता है। उत्तरी भारत में इस रोग का प्रकोप अधिक होता है। इस रोग के मुख्य लक्षण पत्तियों पर कोणीय धब्बे जो शिराओं द्वारा सीमित होते हैं तथा नीचे की तरफ वृद्धि करती है।

नियंत्रण

बीज को मेटल एक्सिल नामक कवकनाशी की 3 ग्राम दवा प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित कर बोना चाहिये तथा मैंकोन्जेब 0.25 प्रतिशत घोल का छिड़काव रोग के लक्षण प्रारंभ होने के तुरन्त बाद फसल पर करना चाहिये। फसल को मचान पर चढ़ाना चाहिये।

कद्दू का लाल कीट (रेड पम्पकिन बिटिल)

प्रौढ़ कीट विशेषकर मुलायम पत्तियों को अधिक पसन्द करते हैं। इसके अधिक आक्रमण करने से पौधे की पत्तियाँ गिर जाती है और पौधा मर जाता है। ग्रब (इल्ली) और पौधों की जड़ों पर आक्रमण करने से हानि पहुँचता है यह जमीन में रहती है। इल्ली जमीन के संपर्क में आने वाले फलों पर कभी-कभी आक्रमण कर फलों में छेद कर देती है अथवा छोटे पौधे आक्रमण के कारण मर जाते हैं।

नियंत्रण

इस कीट को नियंत्रण करने के लिए मैलाथियान चूर्ण 5 प्रतिशत या कार्बारिल 5 प्रतिशत 25 किलोग्राम चूर्ण को राख में मिलाकर सुबह पौधों पर बुरकना चाहिये या मैलाथियान 50 ई.सी. या कार्बरिल 50 डब्ल्यू.पी. का 0.1 प्रतिशत घोल (1.0 ग्राम/लीटर पानी) 15 दिनों के अन्तराल पर छिड़काव करना चाहिये।

लौकी की अच्छी किस्में

1. **पूसा समर लांग:** यह किस्म गर्मियों एवं वर्षा दोनों ऋतुओं में अच्छी उपज देती है। इस किस्म के फल की लम्बाई 40 से 50 सेंटीमीटर लंबे होते हैं। इसकी उपज 50-65 क्विंटल/हेक्टेयर होती है।
2. **पंजाब लांग:** यह किस्म अत्यन्त ही उपयोगी एवं अच्छी उपज देने वाली है। इसके फल लंबे हरे कोमल होते हैं। वर्षा ऋतु में यह किस्म लगाना ज्यादा अच्छा होता है। इसकी उपज 45 से 55 क्विंटल/हेक्टेयर पायी गयी है।
3. **पूसा नवीन:** यह बसंत ऋतु के लिए सबसे उत्तम किस्मों में से एक है। फल छोटे लंबे बेलनाकार मध्यम मोटाई के साथ हरे रंग के होते हैं। फल का औसत भार 800 ग्राम से 1000 ग्राम के बीच होता है। छोटे परिवारों के लिए इस किस्म के फल बहुत ही आदर्श आकार एवं वजन के माने जाते हैं।
4. **कोयंबटूर:** यह दक्षिण भारत के लिए सर्वाधिक उत्तम किस्म है। यह किस्म वहाँ की क्षारीय मिट्टी में अच्छी उपज देती है जिसकी उपज 40-50 क्विंटल प्रति हेक्टेयर अवश्य होती है।
5. **आजाद नूतन:** इस किस्म को काफी लोकप्रियता प्राप्त है क्योंकि यह बीज की बोआई के 60 दिन पश्चात ही फल देना प्रारंभ कर देती है। फल 1 से 1.5 किलोग्राम तक प्राप्त होती है और औसत उपज 30 से 40 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक होती है।
6. **सरिता:** इस किस्म के फल सीधे 30-35 सेंटीमीटर लम्बे तथा 700 ग्राम वजन के होते हैं। यह फल हरे एवं हल्के रोयेंदार हों तभी इनको तोड़ लेते हैं। यह प्रजाति गर्मी एवं वर्षा ऋतु में उपयुक्त है। इसका फल व्यास 5-6 सेंटीमीटर व्यास का होता है। इसमें सिल्वर मल्चिंग में 31 क्विंटल प्रति हेक्टेयर काली मल्चिंग 30 क्विंटल प्रति हेक्टेयर एवं 14 क्विंटल प्रति हेक्टेयर बिना मल्चिंग में होती है।
7. **सन्तोष 20:** इस किस्म के फल की लम्बाई 46 सेंटीमीटर तथा फल का वजन 845 ग्राम है यह तीनों ऋतुओं वर्षा, शरद, गर्मी में उपयुक्त है। फल का व्यास 6-7 सेंटीमीटर होता है। इसकी उपज सिल्वर मल्चिंग में 26 क्विंटल प्रति हेक्टेयर, काली मल्चिंग में 28 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तथा बिना मल्चिंग के 12 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है।
8. **सुमन्त:** इसके फल का आकार बहुत ही आकर्षक होता है तथा फल की लम्बाई 33 सेंटीमीटर, वजन 500-600 ग्राम तथा व्यास 5 सेंटीमीटर होता है। इसकी उपज सिल्वर मल्चिंग में 25 क्विंटल प्रति हेक्टेयर, काली मल्चिंग में 24 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तथा बिना मल्चिंग के 11 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है।

जंक फूड/फास्ट फूड स्वास्थ्य पर प्रभाव

भारती किल्लाड़ी[1], जोतिर्मयी लेंका[2], रेखा चौरसिया[3], पवन सिंह गुर्जर[4] एवं डी.के. शुक्ला[5]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

स्वस्थ जीवन जीने के लिये हमारे स्वास्थ्य का अच्छा होना अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिये स्वास्थ्यवर्धक खान-पान को अपनाने की आवश्यकता है। स्वास्थ्यवर्धक खान-पान का तात्पर्य सन्तुलित अहार से होता है। सन्तुलित अहार में सभी प्रकार के पोषक तत्व होते हैं जो शरीर को रोगों से लड़ने की प्रतिरोधी क्षमता प्रदान करते हैं। परन्तु विगत कुछ वर्षों से जिन्दगी की भाग-दौड़ और आपा-धापी ने हमारे खाने की संस्कृति को पूरी तरह से बदल दिया है। नूडल्स, पिज्जा, बर्गर, रोल, चाऊमिन, फ्रेंच फ्राई, मोमोज, वड़ा पाव, चिप्स, कार्बोनेटड ड्रिंक आदि जैसे जंक फूड ने लोगों के खान-पान पर एक प्रकार से कब्जा ही कर लिया है। आज शहर के हर नुक्कड़, माल, कैन्टीन, रेंस्तरा आदि में इनकी अपनी एक अहम जगह बन गयी है। आज लोग विशेष रूप से हमारी युवा पीढ़ी और बच्चे इस बात से अनजान हैं कि फास्ट फूड/जंक फूड उनके स्वास्थ्य को कितना नुकसान पहुँचा रहा है। वे पौष्टिक आहार को कम और जंक फूड/फास्ट फूड को ज्यादा महत्व देने लगे हैं। फलस्वरूप जंक फूड की लोकप्रियता दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है।

जंक फूड शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम वर्ष 1972 में अमेरिकी वैज्ञानिक माइकल जेकोबसन ने किया था। उनका उद्देश्य अधिक कैलोरी और न के बराबर पोषक तत्वों वाले खाद्य प्रदार्थों की तरफ लोगों का ध्यान आकृष्ट करना था। भारत सरकार ने भी सन् 2009 में बच्चों के स्कूलों में जंक फूड और उनसे होने वाले दुष्प्रभावों के बारे में एक सर्वे करवाया था। सर्वे से ज्ञात हुआ कि सामान्यतया सभी विद्यालयों में उच्च कैलेस्ट्राल एवं उच्च शर्करा वाले खाद्य प्रदार्थ दिये जा रहे थे जिनका बच्चों के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। अतः उन दिनों विद्यालयों में जंक फूड पर रोक लगायी गयी थी।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के नये निर्देशानुसार अब महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में नूडल्स, पिज्जा, बर्गर, कार्बोनेटेड ड्रिंक्स और कॉनफेक्शनरी प्रदार्थों सहित जंक फूड की बिक्री पर पूरी तरह से रोक लगा दी गयी है। उनके स्थान पर पोषक खाद्य पदार्थों की उपलब्धता का जिक्र किया गया था। इससे बच्चों में जंक फूड खाने की आदत को नियंत्रित किया जा सकेगा क्योंकि जंक फूड से अनेक मोटापे से जुड़ी बीमारियों के कारण छात्रों के मानसिक और शारीरिक विकास पर असर पड़ता है।

[1,2,4]वैज्ञानिक एवं [3,5]सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी

जंक फूड/फास्ट फूड क्या है ? : जंक का अर्थ है बेकार की चीज अर्थात जिससे कोई लाभ नहीं होता है। जंक फूड अर्थात वैसा भोजन जिसमें कोई भी पोषक तत्व उपलब्ध नहीं होते हैं। दूसरे शब्दों मे ऐसा खाना जो स्वास्थ्यवर्धक होने के बजाये स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होता है। आधुनिकता के चलते अच्छा चटपटा स्वाद, आसानी से कम मेहनत में पकने वाले जंक फूड को फास्ट फूड भी कहा जाता है।

पोषक तत्व क्या है ? पोषक तत्व वो घटक हैं जो शरीर को समृद्ध करने के साथ-साथ ऊत्तकों का निर्माण कर उनकी मरम्मत का कार्य करते हैं। ये शरीर को ऊर्जा प्रदान करते हैं और यही ऊर्जा शरीर की सभी क्रियाओं को चलाने का कार्य करती है। ये तत्व पौष्टिक आहार, फलों एवं सब्जियों द्वारा प्राप्त होते हैं। इनमें वसा, प्रोटीन, कार्बोहाईड्रेट, विटामिन, खनिज तत्व, पानी और ऑक्सीजन को भी शामिल किया जाता है। पोषक तत्वों की आवश्यकता शरीर की उपापचय की क्रियाओं को चलाने के लिये भी पड़ती है।

जंक फूड से होने वाली बीमारियाँ

- जंक फूड का लम्बे समय तक सेवन करने से वसा के अभाव के कारण खून का प्रवाह धीमा हो जाता है जिससे कमजोरी, भारीपन तथा बेचैनी महसूस होने लगती है।
- एकाग्रता का ह्रास होता है।
- शरीर में हार्मोन का सन्तुलन बिगड़ जाता है।
- फाइवर या रेशा की कमी होने के कारण ये खाद्य प्रदार्थ पचने में दिक्कत करते हैं। फलस्वरूप पेट की गड़बड़ी होती है और वात की समस्या उत्पन्न हो जाती है।
- डायबिटीज एवं कैन्सर का खतरा बढ़ जाता है।
- लीवर के खराब होने की समस्या बढ़ जाती है।
- मस्तिष्क के सामान्य क्रिया-कलापों में बाधा उत्पन्न होने लगती हैं क्योंकि जंक फूड खाने से मस्तिष्क के हेल्दी फैट की जगह बैड फैट ले लेता है।
- जंक फूड कार्बोहाइड्रेट और प्रोटीन के स्तर को कम कर देता है।

- जंक फूड में उच्च मात्रा में रिफाइन्ड शर्करा होती है जो उपापचय के दर को कम कर देती है।
- दिल की बीमारी होने का खतरा बढ़ जाता है।

जंक फूड पर नियंत्रण

- प्रचार और विज्ञापनों के कारण जंक फूड के प्रति आकर्षण बढ़ रहा है। अतः गलत प्रचार पर अंकुश लगाना चाहिये।
- लोगों को खास कर बच्चों एवं युवा पीढ़ी को संतुलित भोजन से होने वाले फायदों की जानकारी देनी चाहिए।
- फलों एवं उनसे बने उत्पादों के प्रति जागरूकता पैदा करनी चाहिये।
- फलों में उपस्थित पोषक तत्वों की जानकारी प्रदान करना।
- ऐसे फास्ट फूड को चुने जिनमें पोटैशियम, विटामिन, कैल्सियम, आयरन की मात्रा अधिक हो।
- विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों की कैन्टीनों में जंक फूड बेचने पर सख्ती/रोक लगायी जाये।
- जंक फूड के स्थान पर फलों के जूस ताजे फल, पना, शर्बत, फ्लेवर्ड दूध, लस्सी, मट्ठा, डोसा, इडली, सूखे मेवा आदि को बढ़ावा देना चाहिये।

खान-पान की गलत आदतों, जीवन शैली में बदलाव और शारीरिक सक्रियता की कमी के कारण बहुत सी समस्याएँ लगातार तेजी से उत्पन्न होती जा रही हैं। केवल मोटापा ही अनेक बीमारियों की वजह बनती जा रही है। अतः पोषक तत्व पर्याप्त मात्रा में सेवन करने से हम बहुत सी बीमारियों को अपने आप नियंत्रण कर सकते हैं। जंक फूड स्वास्थ्य के लिए बहुत ही हानिकारक है। इसका आंत पर घातक प्रभाव पड़ता है। यह पेट तो भर देता है परन्तु शरीर को इससे न तो कोई विटामिन मिलती है और न ही कोई पोषक तत्व। फलों में विटामिन, खनिज, प्रोटीन, रेशा एवं पानी पर्याप्त मात्रा में होता है। रेशा एक ऐसा तत्व है जो आंत को साफ करने का कार्य करता है। अनार, जामुन, काला अंगूर आदि रंगीन फल कैंसर जैसे गंभीर बीमारी से लड़ने में सहायक होते हैं जबकि आम, पपीता, गाजर जैसे पीले, लाल रंग वाले फलों में कैरोटीन नामक तत्व पाये जाते हैं जो आँखों के लिए काफी लाभदायक होते हैं। अमरूद, आंवला, चेरी से विटामिन सी पर्याप्त मात्रा में मिलता है। इसी प्रकार से फलों के जूस (फ्रूट ड्रिंक) से कैलोरी के साथ-साथ विटामिन और मिनरल भी मिलता है जबकि कोल्ड ड्रिंक से शर्करा एवं कार्बन की मात्रा शरीर में जाती है।

आधुनिक शोध विशेषज्ञों के अनुसार फल एवं वनस्पतियों से बने उत्पाद हर उम्र के लोगों के लिए स्वास्थ्यवर्धक होते हैं। ऐसे उत्पादों में स्वाभाविक रूप से नमक एवं वसा वाले तत्व कम होते हैं जिससे कई बीमारियों से जुड़े कारक पैदा होने की सम्भावना कम हो जाती है। बच्चों एवं युवा पीढ़ी अधिक मात्रा में जंक फूड का प्रयोग करते हैं। अतः अभिभावकों को बचपन से ही बच्चों को जंक फूड के बुरे प्रभाव के बारे में जागरूक करना चाहिए जो उनकी सेहत पर विपरीत प्रभाव डालते हैं। हम सभी स्वास्थ्य एवं चुस्ती से भरपूर जीवन-यापन करना चाहते हैं जिससे कोई बीमारी नहीं हो। पोषक तत्व या ऐंटीऑक्सीडेन्ट हमारे इसी मिशन को पूरा करने में सहायक होते हैं। ये दूसरे तत्वों के ऑक्सीकरण को रोकते हैं। विटामिन, खनिज तल, बीटा कैरोटीन, ल्यूटिन, फ्लैविनायड, लिगनान, प्रोटीन आदि तत्व हमारे लिए बहुत जरूरी और महत्वपूर्ण हैं। अतः स्वस्थ्य रहने, तन्तुओं की सघनता बनाये रखने, मांसपेशियों के मजबूती एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता को बनाये रखने के लिए जंक फूड/फास्ट फूड के स्थान पर पोषक तत्वों वाले आहार लेना अति आवश्यक है।

हिंदी हमारे राष्ट्र की अभिव्यक्ति का सरलतम श्रोत है।

–सुमित्रानंदन पंत

आमदनी एवं सेहत के लिए बादाम

दिनेश कुमार[1], कंचन कुमार श्रीवास्तव[2], श्याम राज सिंह[3] एवं घनश्याम पाण्डेय[4]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

बादाम एक शीतोष्ण जलवायु में पैदा होने वाला फल है। इसके गिरी में सर्वाधिक स्वास्थ्यवर्धक और पोषक गुण पाये जाते हैं। बादाम को कोलेस्ट्रोल रहित पूर्ण संतुलित आहार माना जाता है। इसके 100 ग्राम में 575 कैलोरी, रेशा (12.2 ग्राम), विटामिन ई का सर्वोत्तम श्रोत (26 मिलीग्राम), संपूर्ण ओमेगा-3 फैटी एसिड (6 मिलीग्राम), प्रोटीन (21 ग्राम), पोटैशियम (670 मिलीग्राम), मैग्नीशियम (268 मिलीग्राम), फास्फोरस (484 मिलीग्राम), कैल्सियम (265 मिलीग्राम) तथा लौह (3.5 मिलीग्राम) पाया जाता है। इसमें पाये जाने वाले कैल्सियम और मैग्नीशियम से शरीर की हड्डियों को मजबूती प्राप्त होती है तथा यह विकास का भी उत्तम श्रोत है। इसमे व्याप्त विटामिन-ई तथा फाइटोकेमिकल नामक यौगिक उर्जा भंडारण का कार्य करते हैं। इसके सेवन से हृदय की बीमारियों के प्रति प्रतिरोधकता होती है जो दिल की बीमारियों को कम करता है। इससे कैंसर के प्रति भी प्रतिरोधकता विकसित होती है।

क्षेत्रफल एवं उत्पादन

भारत में बादाम की पैदावार 23810 हेक्टेयर क्षेत्रफल में की जाती है। इसका उत्पादन 17300 टन तथा उत्पादकता प्रति हेक्टेयर 0.72 टन है। इसकी सर्वाधिक उत्पादकता क्रमागत रूप से संयुक्त अरब अमीरात (14.15 टन/हे.), जार्डन (6.55 टन/हे.), सीरिया (4.81 टन/हे.), इजरायल (4.49 टन/हे.), लेबनॉन (4.49 टन/हे.) तथा संयुक्त राज्य अमेरिका (3.04 टन/हे.) में होती है। बादाम की घरेलू माँग प्रति वर्ष बढ़ती जा रही है जिसके परिणामस्वरूप देश को प्रति वर्ष 1500 करोड़ रूपये से अधिक मूल्य के बादाम का आयात करना पड़ता है। यदि इस क्षेत्र के अनुकूल उत्पादन की वैज्ञानिक विधियों एवं संरक्षण प्रौद्योगिकी तथा उच्च उपज देने वाली किस्मों को अपनाया जाये तो उत्पादन और उत्पादकता को कई गुना बढ़ाया जा सकता है। भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय शीतोष्ण बागवानी संस्थान, श्रीनगर तथा राज्य कृषि विश्वविद्यालय, श्रीनगर ने कुछ समय पहले से इस क्षेत्र के अनुकूल किस्मों तथा प्रौद्योगिकियों को विकसित कर उनकी पहचान करने का भी प्रयास किया है। उपलब्ध किस्मों तथा प्रौद्योगिकी के द्वारा जम्मू एवं कश्मीर में उत्पादकता को 0.92 टन से बढ़कर 3.0 टन/हेक्टेयर किया जा सकता है जो विश्व के औसत उत्पादन (1 टन/हे.) से कहीं अधिक होगा तथा संयुक्त राज्य अमेरिका की उत्पादकता के लगभग बराबर होगा।

[1,2,3,4]प्रधान वैज्ञानिक

उन्नत किस्में

बादाम की अनेक किस्में खेती के लिए उपलब्ध हैं किन्तु इनमें से चार प्रमुख किस्में ही निर्यात के दृष्टिकोण से उपयुक्त होती हैं। इन्हें नानपेरील, कैलिफोर्निया पेपर शेल, आई.एक्स.एल. मर्सेड के नाम से जाना जाता है। इन विदेशी किस्मों के अलावा हाल में ही जारी की गयी शालीमार, मखदूम तथा वारिस देसी किस्मों ने भी कश्मीर की जलवायु में काफी अच्छे परिणाम प्रदर्शित किये हैं। इन महत्वपूर्ण किस्मों की उल्लेखनीय विशेषताएँ इस प्रकार है।

देशी किस्में

शालीमार : शालीमार एक उन्नत किस्म है जिसमें मार्च के दूसरे सप्ताह में फूल आता है। यह पूर्ण पुष्पन के 140-145 दिनों के पश्चात तुड़ाई के लिए तैयार हो जाता है। इसके बादाम का रंग हल्का कागजी जैसा होता है जिसमें कवच 50 प्रतिशत होता है। इस किस्म की औसत उत्पादकता 1.5-2.0 टन/हेक्टेयर होता है।

मखदूम : यह नियमित रूप से फलने वाली किस्म है जिसमें मार्च के पहले सप्ताह में फूल आते है। यह पूर्ण रूप से फूल आने से 141-146 दिन के बाद तुड़ाई के लिए तैयार हो जाती है। इसके बादाम का रंग मध्यम भूरा, मुलायम तथा कवच 42 प्रतिशत होता है। इस किस्म की औसत उत्पादकता 2.5-3.0 टन/हेक्टेयर होती है।

वारिस : वारिस नियमित रूप से फलने वाली किस्म है जिसमें मार्च के तीसरे सप्ताह में फूल आना प्रारंभ हो जाता है। यह पूर्ण पुष्पन से 142-148 दिनों के पश्चात फल तुड़ाई के लिए तैयार हो जाता है। इसके कवच का रंग औसत, छिलका मुलायम तथा गिरियाँ भी औसत रूप से मुलायम, मोटी तथा कवच 48 प्रतिशत होता है। इसकी औसत उत्पादकता 2.0-2.5 टन/हेक्टेयर होती है।

विदेशी किस्में

प्रनयाज

यह नियमित रूप से फलने वाली किस्म है जिसमें मार्च के तीसरे सप्ताह में फूल आने लगते हैं। यह पूर्ण रूप से फूल आने के 142-148 दिनों के बाद यह किस्म तुड़ाई के लिए तैयार हो जाता है। इसके बादाम हल्के रंग के अत्यन्त मुलायम तथा मोटे होते हैं। इसमें 44 प्रतिशत कवच तथा औसत 3.0-4.0 टन प्रति हेक्टेयर उत्पादकता होती है।

नानपेरील

यह नियमित रूप से फलने, मध्य मौसम (मार्च के तीसरे सप्ताह) में खिलने तथा जल्दी तैयार होने वाली किस्म है। फूलों के पूर्ण रूप से खिलने के 140-145 दिन बाद फल तैयार हो जाते हैं। इसके बादामों का रंग विशेष रूप से हल्का होता है। इसके कागजी गिरी प्रतिशत काफी अधिक 60 होता है। इसकी गिरी मध्यम आकार की होती है। यह किस्म बादाम एवं गिरियों के निर्यात बाजार हेतु उपयुक्त पायी गयी है। इसकी औसत उत्पादकता 2.5-3.0 टन/हेक्टेयर है।

मर्सेड

यह किस्म नियमित रूप से फलने वाली है जिसमें मार्च के दूसरे सप्ताह में फूल आते हैं। पूर्ण पुष्पन से तुड़ाई के लिए 150-155 दिन लग जाते हैं। इसके बादाम और गिरि का रंग हल्का एवं गिरी का प्रतिशत 56 होता है। इसकी औसत उत्पादकता 2.5-3.0 टन/हेक्टेयर होती है।

आई एक्स एल

यह नियमित रूप से फलने वाली किस्म है जिसमें मार्च के तीसरे सप्ताह में फूल आने लगते हैं। इसमें पूर्ण पुष्पन से फल तुड़ाई के लिए 151-155 दिन लग जाते हैं। इसके बादाम और गिरियाँ मध्यम आकार के होते हैं तथा कवच का रंग मध्यम गहरा होता है। इसके गिरी मुलायम तथा 55 प्रतिशत तक होते हैं। इस किस्म का औसत उत्पादकता 2.0-2.5 टन/हेक्टेयर है।

कैलिफोर्निया पेपर शैल

यह एक नियमित रूप से फलने वाली किस्म है जिसमें मार्च के दूसरे सप्ताह में फूल खिलते हैं। इसमें फूलों के पूर्ण रूप से खिलने के 151-155 दिनों के पश्चात फल तुड़ाई के लिए तैयार हो जाते हैं। इसके बादाम और गिरी आकार में लंबे तथा अत्यन्त ही हल्के रंग के होते हैं तथा कागजी छिलके की कवच 50 प्रतिशत तक होती है। यह किस्म भी निर्यात के लिए उपयुक्त पायी गयी है। इसकी औसत उत्पादकता 1.5-2.0 टन/हेक्टेयर होती है।

मृदा एवं जलवायु

बादाम के लिए गहरी दोमट तथा अच्छे जल निकास वाली मिट्टी सर्वोत्तम होती है। किन्तु सिंचाई यदि सुनिश्चित हो तो औसत उपजाऊ मृदा में भी सड़ी गोबर की खाद मिलाकर प्रयोग करने से बादाम की खेती की जा सकती है।

इसके लिए भूमध्य सागरीय जलवायु उपयुक्त होती है जिसमें कुछ सीमा तक हल्की गर्मी (30 से 35° सेंटीग्रेड तापमान) के साथ-साथ पौधों की वृद्धि तथा गिरी भराई के लिए ठंडे शीतऋतु की आवश्यकता होती है। अनखिले पुष्प -2.2° सेंटीग्रेड तक शीत को सह लेते हैं किन्तु पंखुडिया गिरते ही 0.5 से -1.1° सेंटीग्रेट पर पुष्प खराब हो जाते हैं। यदि लगातार कई घंटो तक कम तापमान बना रहता है तो उन्हें नुकसान होता है।

रोपण विधि : कलमी पौधों को वर्गाकार प्रणाली में 6 × 6 मीटर की दूरी पर (किसानों द्वारा अपनायी जाने वाली प्रणाली), 4 × 4 मीटर (मध्यम दूरी वाली प्रणाली) तथा 3.5 × 3.5 मीटर तथा 2.5 × 2.5 मीटर (उच्च सघनता वाली रोपण प्रणाली) के तहत लगाये जाने चाहिए। प्रत्येक तीसरी पंक्ति को परागण किस्म के रूप में रखना चाहिए। रोपण से पहले सितंबर-अक्टूबर के माह में 3×3×3 फीट के गढ्ढों की खुदाई कर सड़ी हुई गोबर की खाद एवं संस्तुति उर्वरकों के मिश्रण मिलाकर जमीन की सतह से 15 सेंटीमीटर भरकर तैयार कर लेनी चाहिये। फरवरी-मार्च में इन गड्ढों के बीचों-बीच पौधों को लगाना चाहिए तथा तेज हवाओं से बचने के लिए बास की खपचियों से बाँधा जाना चाहिए।

सधाई एवं छँटाई

पौध रोपण के एक वर्ष के बाद पौधों को जमीन की सतह से एक मीटर की ऊँचाई पर दिसंबर-जनवरी में काटना चाहिए। मुख्य तने के नीचे प्राथमिक आधार शाखाओं को रहने दिया जाता है तथा कुछ अस्थाई शाखाओं को भी छोड़ दिया जाता है जिससे इन शाखाओं को पूरी तरह से हटा दिया जाता है जो मुख्य आधार शाखाओं से प्रतिस्पर्धा करती है तथा पेड़ को एक रूपांतरित अग्रपरोह प्रणाली (माडीफाइड लीडर सिस्टम) के आकार में साधा जाता है। प्रत्येक वर्ष दिसंबर-जनवरी में जब वृक्ष अपनी पूर्ण सुसुप्तावस्था में हो तो एक वर्ष पुरानी शाख की छँटाई की जानी चाहिए।

बादाम में फल अधिकतर मोटे दलपुटों (स्पर) पर लगते हैं जो लगभग 5 वर्षो तक फल देने की स्थिति में होते हैं। अतः छँटाई इस प्रकार की जानी चाहिए कि फल देने वाली शाखाओं का 1/5वाँ भाग प्रत्येक वर्ष प्रतिस्थापित होता रहे। साथ-ही-साथ नये दलपुटों वाली शाखाओं को फल न देने वाली शाखाओं से लगातार बदलते रहना चाहिए। इसके लिए पुरानी शाखाओं जिनका व्यास 1.2 से 3.7 सेंटीमीटर के बीच हो तो हटाते रहना चाहिये। अवांछनीय जल प्ररोहों (वाटर स्प्राउट) या अंकुरों को हटाने के अलावा छोटी शाखा को बहुत कम विरलीकरण की आवश्यकता होती है। यदि पौधों की वृद्धि में अन्य घटक बाधक न हो तो प्रत्येक वर्ष संपूर्ण वृक्ष में नये प्ररोहो की लंबाई से छँटाई कार्यक्रम की सफलता का अनुमान लगाया जा सकता है।

जल प्रबंधन

नये पौधों को लगाने के लिए मिट्टी को जड़ों के चारों ओर अच्छी प्रकार बैठने के लिए पर्याप्त मात्रा में पानी दिया जाना चाहिए। इसके बाद प्रत्येक 10-15 दिन के अन्तराल पर पानी दिया जाना अपरिहार्य है। इससे अनुकूलतम नमी का स्तर बना रहता है जिससे अच्छी उपज के साथ मोटी गिरियाँ भी मिल सकें।

बादाम के पौधों में जल आपूर्ति को फूल निकलने के समय (फरवरी-मार्च) तथा फलों के विकास (अप्रैल, मई एवं जून) के दौरान सुनिश्चित करना चाहिए जिससे अच्छी गिरियों सहित अधिक उपज मिल सके। टपक सिंचाई विधि से सिंचाई करने से करेवा जमीन में विशेष रूप से अच्छी उपज पायी गयी है। इसे 6-7 दिनों के अन्तराल पर 4 लीटर/घंटा बहाव क्षमता वाले 4 ड्रिपर के उपयोग में लाने पर पारंपरिक विधि की तुलना में 40-50 प्रतिशत तक जल की बचत की जा सकती है। पेड़ों के थालों में पलवार करने से नमी को और अधिक दिन तक संरक्षित किया जा सकता है जिससे सिंचाई के अंतरालों को कम किया जा सकता है। सूखे बारानी क्षेत्रों में जहाँ सिंचित जल का कोई श्रोत उपलब्ध नहीं है वहाँ भूमि की स्थलाकृति के अनुसार वर्षा जल एकत्र करने से नमी के सरंक्षण, जल उपलब्धता बढ़ाने तथा पौधों की वृद्धि, फलों के बनने तथा गिरि का विकास एवं कुल उपज बढ़ाने में काफी लाभदायक होता है।

परागण प्रबंधन

बादाम के पेड़ स्वतः परागित नहीं होते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि बादाम के बागों में प्रत्येक तीसरी पंक्ति पर एक परागण किस्म के रूप में (33 प्रतिशत परागकर्ता) लगायी जानी चाहिए जिससे उनके पुष्प एक समान समय पर खिलते रहें। व्यावसायिक बादाम की खेती के लिए परागणकर्ता के रूप में उपयोग में लायी जाने वाली किस्मों में आई.एक्स.एल., जोर्डनालो, नी प्लस अल्ट्रा तथा वारिस प्रमुख है। इसके अतिरिक्त बाग में 4-6 मधुमक्खी के बाक्सों को रखना अत्यधिक लाभकारी पाया जाता है जिससे फलो के बनने में वृद्धि होती है तथा बादाम की उपज भी 12-15 प्रतिशत तक बढ़ जाती है।

पोषण प्रबंधन

बादाम को अत्यधिक पोषण की आवश्यक्ता होती है। अतः इसको अधिक मात्रा में खाद और उर्वरकों की जरूरत पड़ती है जिससे फसल के वृद्धि काल में पर्याप्त मात्रा में ठीक समय पर दिया जाना चाहिए। शीतकालीन पतझड़ (दिसम्बर-जनवरी) के दौरान प्रत्येक पेड़ में 20-25 किलोग्राम सड़ी गोबर की खाद दी जानी चाहिए। मृदा परीक्षण तथा पत्तियों के पोषण विश्लेषण के आधार पर उर्वरकों का प्रयोग किया जाना चाहिए। तत्पश्चात सामान्य रूप से पेड़ों की आयु के आधार पर संस्तुत खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

तुड़ाई

सामान्यतया बादाम की तुड़ाई अगस्त के मध्य में की जाती है जब ऊपर का कवच फटने लगता है और भीतरी कवच दिखने लगता है। अतः 50 प्रतिशत से अधिक फल फटने की स्थिति में एक-एक बादामों को हाथों से तुड़ाई कर ली जाती है। बादाम की तुड़ाई सामान्यतः हाथ से या शाखाओ पर डंडे की सहायता से की जाती है। तुडाई के बाद बादाम से ऊपरी छिलके को हाथ से हटा दिया जाता हैं। हालाँकि कैलिफोर्नियाँ में बादाम पेडों पर अपने आप ऊपरी छिलके से अलग हो जाते है जिन्हें शेकर्स की सहायता से आसानी से तोड़ा जा सकता है। तत्पश्चात इन्हें सुखाकर छिलका उतारने वालों के पास भेज दिया जाता है।

तुड़ाई उपरान्त प्रबंधन

तुड़ाई के तुरंत बाद फलों से छिलका एवं गिरि को अलग करना आवश्यक होता है अन्यथा उनमे शीघ्रता से फफूँदीय संक्रमण हो सकता है। बादामों को धूप मे कृत्रिम गर्म हवा में तब तक सुखाया जाता है जब तक उनमें नमी की मात्रा 5-7 प्रतिशत न हो जाये। बादाम की भली प्रकार और स्वच्छता से सुखाने के लिए पंखो सहित पाली टनल का भी प्रयोग किया जा सकता है।

भंडारण

सीलबन्द थैलियों या वायुरोधी डिब्बों में बादामों को पैककर उन्हें ठंडे छायादार स्थानों पर भंडारित किया जा सकता है। बहुत लम्बे समय तक इन्हें हिमशील अवस्था में भी भंडारित किया जा सकता है किन्तु ऐसे में नमी नहीं रहने देना चाहिए। व्यावसायिक रूप से लम्बे समय तक भंडारण के लिए बादामों को नेवल ओरेंज वर्म से बचाने के लिए उन्हें धूमीकृत कर 1 सेंटीग्रेड से कम तापमान पर भंडारित किया जा सकता है।

उपज

बादाम के बागीचे से रोपण के 4-5 वर्ष के उपरान्त आर्थिक उपज 1.5-2.0 टन प्रति हेक्टेयर प्राप्त होनी शुरू हो जाती है और शुद्ध रूप से 2-3 लाख प्रति हेक्टेयर अर्जन की जा सकती है। लेकिन इस लाभ को अच्छी किस्मों के चयन तथा वैज्ञानिक तरीकों के समावेश से और ज्यादा प्राप्त किया जा सकता है। बादाम की गिरी में सर्वाधिक स्वास्थ्यवर्धक एवं पोषणयुक्त गुण विद्यमान होते हैं जिसके नियमित सेवन से सेहत ठीक रहता है।

कैल्सियम कार्बाइड से फल पकाने के दुष्प्रभाव एवं सुरक्षित तरीके

पवन सिंह गुर्जर[1], ए.के. वर्मा[2], गोपाल कारपेंटर[3], जे. लेंका[4] एवं आभा सिंह[5]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

फल पकाना एक कार्यिकीय प्रक्रिया है जो फल को खाने योग्य, स्वादिष्ट एवं पोषक बनाती है। पकने के दौरान फलों में एक विशेष प्रकार का सुगंध तथा स्वाद विकसित होता है। प्राकृतिक तरीके से फल एकसमान रूप से नहीं पकते तथा उनके पकने में अधिक समय भी लगता है। इसलिए फलों को एकसमान रूप से कम समय में पकाने के लिए कृत्रिम विधि का प्रयोग किया जाता है। इन दिनों फलों को कृत्रिम रूप से पकाने के लिए कैल्सियम कार्बाइड का प्रयोग हो रहा है जो न केवल गलत है बल्कि स्वास्थ्य के लिए अत्यंत ही हानिकारक भी है। इसलिए कैल्सियम कार्बाइड का फलों की गुणवत्ता एवं मानव स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभाव के बारे में जानने एवं फलों को सुरक्षित तरीकों से पकाने की जानकारी होना अत्यन्त आवश्यक है ।

कृत्रिम पक्वन

रसायन अथवा गैस का प्रयोग कर फल पकाने की क्रिया को तेज करना ही कृत्रिम पक्वन है।

पक्वन व्यवहार के आधार पर फल दो प्रकार के होते हैं।

(1) **क्लाईमैट्रिक फलः** ऐसे फल जिनमें तुड़ाई के पश्चात भी पक्वन की क्रिया जारी रहती है, वह क्लाईमैट्रिक फल कहलाते हैं। फल पकाने के दौरान इन फलों से एथिलीन गैस विसर्जित होने के साथ श्वसन की गति में भी वृद्धि होती है। इन फलों को पूर्ण परिपक्व, ठोस एवं हरे रंग की अवस्था में तोड़कर कृत्रिम रूप से पकाया जाता है। आम, केला, अमरूद, चीकू, पपीता, कीवी फल, पैशन फल, खुबानी, आड़ू आदि ऐसे फलों के ज्वलंत उदाहरण हैं।

(2) **गैर क्लाईमैट्रिक फलः** ऐसे फल जो पेड़ पर ही पकते हैं तथा तुड़ाई के बाद नहीं पकते, गैर क्लाईमैट्रिक फल कहलाते हैं। तुड़ाई उपरांत इन फलों में श्वसन की गति में वृद्धि नहीं होती तथा एथिलीन बहुत कम मात्रा में उत्सर्जित होती है। इन फलों पर एथिलीन के उपचार का कोई फर्क नहीं पड़ता है तथा इन्हें कृत्रिम रूप से नहीं पकाया जा सकता। अंगूर, अनार, लीची, चेरी, स्ट्र बेरी, संतरा, किन्नू, मौसम्मी एवं ब्लैकबेरी ऐसे फलों के उदाहरण हैं।

[1,3,4]वैज्ञानिक , [2]वैज्ञानिक (व.वे.) एवं [5]वरिष्ठ वैज्ञानिक

कैल्सियम कार्बाइड क्या है ?

कैल्सियम कार्बाइड धूसर सफेद रंग का चूर्ण होता है जो पानी के साथ प्रतिक्रिया कर एसिटिलीन गैस उत्सर्जित करता है। यह गैस एथिलीन गैस के अनुरूप होती है तथा फल पक्वन की क्रिया में तेजी लाती है।

यह रसायन मसाला के नाम से जनमानस में जानी जाती है। इस रसायन में कैंसर पैदा करने वाले घटक निहित होते हैं। भारत सरकार ने इसे खाद्य अपमिश्रण निवारण (पीएफए) नियम, 1955 एवं खाद्य सुरक्षा और मानक (निषेध और बिक्री पर प्रतिबंध) विनियम, 2011 के अन्तर्गत प्रतिबंधित कर रखा है फिर भी इसका कृत्रिम फल पक्वन में अंधाधुंध प्रयोग हो रहा है।

किसान एवं फल व्यापारी कार्बाइड की कागज की पुड़िया (8-10 ग्राम कार्बाइड प्रति पुड़िया) बनाकर फल की पैकिंग करते समय एक पेटी में 4-5 पुड़िया रख देते हैं जिससे फल 24-48 घंटे में पककर तैयार हो जाते हैं (चित्र 1)।

इसके अलावा यह भी देखा गया है कि कुछ किसान और फल व्यापारी आम को तोड़ने के बाद बाग में ही गड्ढा खोदकर फलों को कार्बाइड की पुड़िया के साथ गड्ढे में रखकर, बोरा या तारपोलिन से ढक देते हैं (चित्र 2)। इससे आम 3-4 दिन में ही पक जाते हैं।

कैल्सियम कार्बाइड का स्वास्थ्य पर प्रभाव

कार्बाइड से पके हुए फल खाने से स्वास्थ्य पर अनेक हानिकारक प्रभाव हो सकते हैं।

1. कार्बाइड में कैंसर पैदा करने वाले तत्व जैसे आर्सेनिक तथा फॉस्फोरस के संकर विद्यमान होते हैं।
2. आर्सेनिक तथा फॉस्फोरस विषाक्तिकरण के प्रारंभिक लक्षण उलटी, खून के साथ दस्त, छाती तथा पेट में जलन, अति प्यास लगना, श्वांस लेने में कठिनाई, त्वचा एवं आंख में जलन आदि प्रमुख हैं। शरीर में अधिक मात्रा में कार्बाइड अवशोषित होने पर फेफड़ों में पानी भरने की संभावना भी होती है।

3. कार्बाइड से पके हुए फलों को खाने से पेट तथा आँत प्रभावित हो जाते हैं। इसमें क्षारीय पदार्थ होते है जो आमाशय के श्लैष्मिक ऊतक को क्षति पहुँचाते हैं।
4. कैल्सियम कार्बाइड एसिटिलीन गैस विसर्जित करता है जो शरीर में अल्प-ऑक्सीयता (खून तथा ऊतकों में ऑक्सीजन की कमी) की स्थिति बनाता है जिससे स्नायु तंत्र भी प्रभावित हो सकता है।

कैल्सियम कार्बाइड का फल की गुणवत्ता पर प्रभाव

कैल्सियम कार्बाइड से पके हुए फल अधिक नरम, सुस्वादु एवं मनोरम होते हैं किन्तु उनका स्वजीवन कम होता है। कार्बाइड से पके फल में बाहरी रूप से आकर्षक रंग विकसित हो जाता है। लेकिन अंदर से उनके ऊतक पूर्ण एवं सामान रूप से नहीं पकते हैं जिसके कारण फल पूर्ण रूप से सुस्वादु नहीं होते हैं।

कैल्सियम कार्बाइड से पके हुए फलों को कैसे पहचानें ?

कैल्सियम कार्बाइड से पके हुए फलों का बाहरी रंग आकर्षक होता है लेकिन सुगंध कम विकसित होता है। इससे असमान पक्वन एवं अंतर्भाग खट्टा होता है तथा स्वजीवन कम होता है। कार्बाइड लगाने के 2-3 दिन बाद फलों पर काले धब्बे आने शुरू हो जाते हैं।

सावधानियाँ

कार्बाइड से पकाये गये फलों को खाने से पहले उपभोक्ताओं को निम्नलिखित सावधानियाँ रखनी चाहिए।

1. खाने से पहले फलों को पानी से 2-3 मिनट तक धोना चाहिए जिससे फल के बाहरी सतह पर लगा हुए रसायन धुल जाए।
2. अगर संभव हो तो फल का छिलका उतारकर खाना चाहिए।

फल पक्वन के सुरक्षित तरीके

वर्तमान समय में किसानों एवं फल व्यापारियों के लिये फल पक्वन के अनेक तरीके उपलब्ध हैं।

1. अपक्व फलों को पके हुए फलों के साथ वायुरोधी पात्र में रखने पर पके फलों से विसर्जित एथिलीन बिना पके फलों में पक्वन की क्रिया में तेजी लाती है जिससे फल जल्दी पक जाते हैं। उदाहरणार्थ, पके केले के साथ बिना पके आम को रखने से आम जल्दी पक जाते हैं। यह घरों में फल पकाने का सरल एवं सामान्य तरीका है।
2. धुआँ द्वारा फल पकाने की विधि में फलों को वायुरोधी कक्ष में रख दिया जाता है। फिर कक्ष में धुआँ छोड़ दिया जाता है जिससे एसिटिलीन गैस निर्गत होती है और फलों में पक्वन की क्रिया में गति आती है। इस विधि का प्रयोग विशेष रूप से आम एवं केला को पकाने के लिए करते हैं। लेकिन इस विधि की बड़ी खामी यह है कि इससे फलों में एक समान रंग एवं सुगंध विकसित नहीं होती है। इसके अलावा फलों में धुआँ की गंध विद्यमान रहती है जो फलों की गुणवत्ता को प्रभावित करती है।
3. ईथरी घोल द्वारा अपरिपक्व फल को पकाने हेतु ईथरी (2-क्लोरोइथील फोस्फोनिक अम्ल) का घोल (आम के लिए 750 पीपीएम एवं केले के लिए 500 पीपीएम) बनाया जाता है। फलों को इस घोल में 5 मिनट तक डुबाकर रखा जाता है। तदनुपरांत उन्हें बाहर निकालकर हवा में सुखाकर पेटी में बंद कर देते हैं। पेटी में बंद करने के 3-4 दिन पश्चात फल पक जाते हैं। ईथरी की मात्रा फल की परिपक्वता पर निर्भर करती है। कम परिपक्व फलों में अधिक तथा अधिक परिपक्व फलों में कम ईथरी की मात्रा लगती है।
4. एथिलीन गैस द्वारा फलों को पकाने के लिए विशेष पक्वन चैम्बर बनाये जाते हैं। इन चैम्बर में जो फल पकाने हैं उनको क्रेट्स या बॉक्स में रख दिया जाता है। इस पक्वन चैम्बर में 24 घंटे के लिए 10 माइक्रो लीटर प्रति लीटर की दर से एथिलीन गैस की बौछार की जाती है। फल पक्वन के दौरान पक्वन चैम्बर में कार्बन डाईऑक्साइड की सांद्रता 0.1 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए क्योंकि यह पक्वन को धीमा कर सकता है। इसलिए पक्वन चैम्बर में हवा पास होने की व्यवस्था होनी चाहिए।

   विभिन्न फलों के पक्वन के लिए अनुकूल तापमान, एथिलीन की सांद्रता, एथिलीन उपचार समय एवं भंडारण तापमान तालिका में दिया गया है।
5. ईथरी एवं सोडियम हाईड्रॉक्साइड विधि में एक चौड़े मुँह के पात्र में 5 लीटर पानी लेकर उसमें 10 मिलीलीटर ईथरल एवं

फल	एथिलीन की सांद्रता (पी.पी.एम.)	एथिलीन उपचार समय (घंटे)	पक्वन तापमान (डिग्री सेलसियस)	भंडारण तापमान (डिग्री सेलसियस)
केला	100-150	24	15-18	13-14
आम	100-150	12 - 24	20-22	13-14
पपीता	100	24 - 48	20-25	7-10
टमाटर	100-150	24 - 48	18-21	12&13
कीवी फल	10-100	12 - 24	5-20	0.5-0
संतरा (डिग्रीनिंग)	5-10	24 - 72	20-22	5-9
आलू बुखारा	100	24 - 48	20	0.5-2.0

2 ग्राम सोडियम हाईड्रॉक्साइड मिला देते हैं। फिर इस पात्र को वायुरोधी प्लस्टिक चैम्बर या कमरे में रख देते हैं और इस चैम्बर में जो फल पकाने हैं उनको रखते हैं। ईथरी के घोल में सोडियम हाईड्रॉक्साइड मिलाने से उसकी पी.एच. मान बढ़ जाता है। फलस्वरूप ईथरी का घोल एथिलीन गैस विसर्जित करता है इस चैम्बर में फल 12-24 घंटे तक रखे जाते हैं। इसके बाद फलों को चैम्बर से बाहर निकालकर कमरे के तापमान पर भंडारित किया जाता है। चैम्बर से बाहर निकालने के बाद फल 3-4 दिन में पक जाते हैं।

'रश्मिरथी'

'दो न्याय अगर तो आधा दो, पर, इसमें भी यदि बाधा हो,
तो दे दो केवल पाँच ग्राम, रखो अपनी धरती तमाम।
हम वहीं खुशी से खायेंगे, परिजन पर असि न उठायेंगे।

दुर्योधन वह भी दे ना सका, आशिष समाज की ले न सका,
उलटे, हरि को बाँधने चला, जो था असाध्य, साधने चला।
जब नाश मनुज पर छाता है, पहले विवेक मर जाता है।

हरि ने भीषण हुंकार किया, अपना स्वरूप-विस्तार किया,
डगमग-डगमग दिग्गज डोले, भगवान् कुपित होकर बोले-
'जंजीर बढ़ा कर साध मुझे, हाँ, हाँ दुर्योधन! बाँध मुझे।

यह देख, गगन मुझमें लय है, यह देख, पवन मुझमें लय है,
मुझमें विलीन झंकार सकल, मुझमें लय है संसार सकल।
अमरत्व फूलता है मुझमें, संहार झूलता है मुझमें।

–रामधारी सिंह 'दिनकर'

माइक्रो-आरएनए द्वारा जीन विनियमन का आणविक तंत्र

इसरार अहमद[1] मुथ्थुकुमार एम.[2], उमेश एच.[3] एवं देवेन्द्र पाण्डेय[4]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

प्राकृतिक रूप से उत्पन्न होने वाले छोटे आरएनए लक्ष्य जीनों की अभिव्यक्ति को विनियमित करते हैं। ये विविधतापूर्ण होने के साथ-साथ बड़ी संख्या में पैदा होते हैं। उनके द्वारा विनियमित किये जाने वाली जैविक प्रक्रिया जटिल होती है। माइक्रो-आरएनए (miRNA) नयी श्रेणी के छोटे (20-24 NT) अंतर्जात गैर-कोडिंग आरएनए है जो पौधों में जीन अभिव्यक्ति को विनियमित करते हैं। इनके द्वारा लगभग 21-न्यूक्लियोटाइड आरएनए को डीसर की तरह एंजाइम द्वारा लंबे प्राथमिक टेप के स्टेम-लूप वाले क्षेत्रों से संसाधित किया जाता है। अभी तक जेनेटिक स्क्रीनिंग, कम्प्यूटेशनल दृष्टिकोण और ईएसटी विश्लेषण द्वारा 71 पौधों की प्रजातियों में, 42 परिवारों के 872 एमआईआरएनए की पहचान में की गयी है। अधिकतर एमआईआरएनए ट्रांसक्रिप्शन कारकों के स्तर को नियंत्रित कर संयंत्र विकास को विनियमित करते हैं जो विकास के लिये महत्वपूर्ण हैं। अधिकांश एमआईआरएनए कोशिकाओं के कोष्ठ वर्तुल को प्रभावित करने वाले प्रतिलेखन कारकों की अभिव्यक्ति को विनियमित कर पौधों के गुणों को प्रभावित करते हैं।

वर्तमान समय में, लगभग 50 प्रतिशत एमआईआरएनए के ट्रांसक्रिप्शनल कारक लक्ष्यों की पहचान की गयी है। इन एमआईआरएनए में से कम-से-कम 12 एमआईआरएनए परिवार एमआरएनए को ट्रांसक्रिप्शनल कारक एन्कोडिंग को लक्षित करता है जो पौधे के विकास को विनियमित करते हैं। पौधों में एमआईआरएनए प्रजाति स्तर पर संरक्षित होते हैं। एमआईआरएनए पौधों में लक्ष्य जीन अनुक्रमों के उल्टे दोहराव से उत्पन्न होता है। हालाँकि एमआईआरएनए उच्च परिवर्तनशीलता प्रदर्शित करते हैं उनके परिपक्व अनुक्रम उनके लक्षित एमआरएनए दृश्यों के लिए व्यापक अनुक्रम पूरकता प्रदर्शित करते हैं। एमआईआरएनए पौधे के विकास, सिग्नल ट्रांसडक्शन, प्रोटीन डिग्रेडेशन, पर्यावरणीय तनाव और रोगज़नक़ आक्रमण के प्रति प्रतिक्रिया में शामिल हैं और स्वयं के जैव जनन को विनियमित करते हैं। 40 प्रतिशत एमआईआरएनए जीन इन्ट्रान्स या अन्य जीनों के एक्सान में भी हो सकते हैं। जीन एमआईआरएनए जीन आमतौर पर आरएनए पोलीमरेज़ II द्वारा लिखित होते हैं। माइक्रो-आरएनए आम तौर पर लक्ष्य एमआरएनए के 3' यूटीआर के भीतर पाए जाने वाले साइटों को लक्षित करते हैं जो प्रोटीन संश्लेषण को कम कर या एमआरएनए गिरावट की शुरूआत कर प्रोटीन उत्पादन को रोकता है। एमआरएनए पर सबसे अधिक लक्षित साइटें उनसे संबंधित माइक्रोआरएनए के साथ आधार पूरक होती हैं। इसलिए एक माइक्रो-आरएनए 100 से ज्यादा विभिन्न एमआरएनए गिरावट की शुरूआत कर प्रोटीन उत्पादन को रोकता है। इसके अलावा, अलग-अलग माइक्रो-आरएनए के लिए एक एमआरएनए में कई बाध्यकारी साइटें हो सकती हैं जिसके परिणामस्वरूप एक जटिल नियामक नेटवर्क बन जाता है।

माइक्रो-आरएनए कार्रवाई के तंत्र

1. कैप-40 एस दीक्षा निषेध
2. 60 एस रिबोसोमल इकाई निषेध
3. बढ़ाव निषेध
4. रिबोसोम ड्रॉप-ऑफ (समय पूर्व समापन)
5. सह-अनुवादित नवजात प्रोटीन गिरावट
6. पी-निकायों में जब्ती
7. एमआरएनए क्षय (अस्थिरता)
8. एमआरएनए दरार

माइक्रो-आरएनए का कार्य

1. सेल चक्र नियंत्रण
2. एपप्टोसिस
3. विकास और शारीरिक प्रक्रियाएं
4. प्रतिरक्षा प्रतिक्रियाएं
5. वायरल प्रतिकृति सहित

[1,2,3]वैज्ञानिक एवं [4]प्रधान वैज्ञानिक

एमआईआरएनए लक्ष्य जीन, विनियमित तथा तंत्र कार्य

क्रमांक	एमआईआरएनए	लक्ष्य जीन	कार्य	विनियमित तंत्र
1	एमआईआर 403	एजीओ 2	अनजान	अनजान
2	एमआईआर 159	जीएएमवाईबी	हार्मोन प्रतिक्रिया	एआरएनए विपाटन
3	एमआईआर 160	एआरएफ 10 एआरएफ 16 एआरएफ 17	सिग्नल ट्रांसडक्शन	एआरएनए विपाटन
4	एमआईआर 162	डीसीएल 1	एमआईआरएनए जीवजनन	एआरएनए विपाटन
5	एमआईआर 164	सीयूसी 1ए सीयूसी 2ए एनएएम	पौध मोर्फोजेनेसिस	एआरएनए विपाटन
6	एमआईआर 165-166	पीएचबीए पीएचवीए आरएलडी 1	विभज्योतक गठन	एआरएनए विपाटन
7	एमआईआर 171	एससीएल 6 एससीएल 6 एससीएल 6	विकास पैटर्न	एआरएनए विपाटन
8	एमआईआर 172	एपीए जीएल 15	पुष्प विकास और फेज परिवर्तन	एआरएनए विपाटन
9	एमआईआर 390	टीएएस 3	एसआई आरएनए जैव उत्पत्ति	एआरएनए विपाटन
10	एमआईआर 395	एपीएस 4, एएसटी 68	पर्यावरण तनाव प्रतिक्रिया	एआरएनए विपाटन

एमआईआरएनए द्वारा पौधे जीन विनियमन का आणविक तंत्र

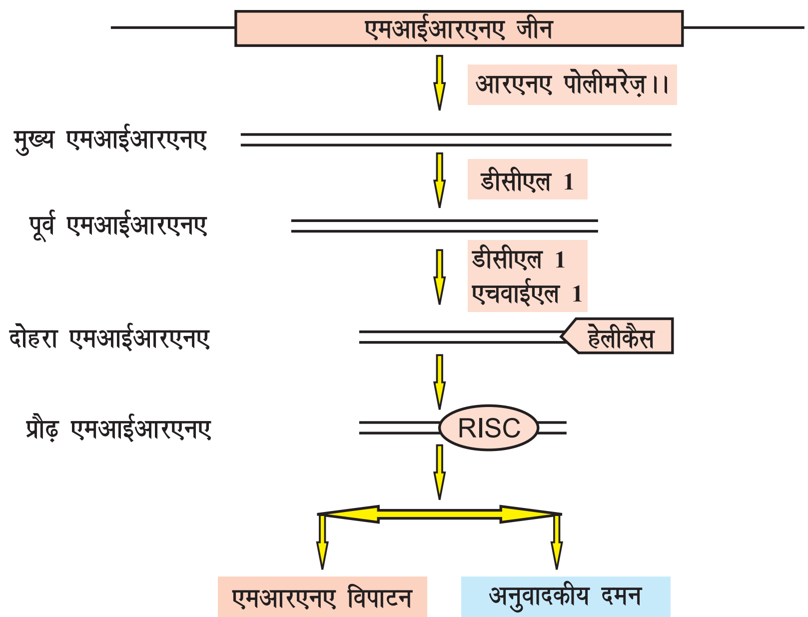

बिहार में केला की उन्नत बागवानी

संजय कुमार सिंह[1] विनोद कुमार[2] एवं स्वाति शर्मा[3]
राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर

सेब के बाद केला विश्व का दूसरा सबसे महत्वपूर्ण फल है। चावल, गेहूँ एवं दुग्ध उत्पादों के बाद यह कुल उत्पादन की दृष्टि से चौथा सबसे महत्वपूर्ण खाद्य सामग्री है। भारत में पैदा किये जाने वाला यह एक अत्यन्त ही प्राचीन फल है जिसकी सामाजिक एवं आर्थिक महत्ता भी है। केला को गरीबों का फल कहा जाता है। केला का पोषक मान अधिक होने के कारण केरल राज्य एवं युगांडा जैसे देशों में केला प्रमुख खाद्य फल है। भारत के उत्तरी पूर्वी क्षेत्र में केला को औषधि के रूप में विभिन्न बीमारियों के इलाज हेतु प्रयोग किया जाता है। केला के उत्पादों की बढती माँग के कारण केला की खेती का महत्व दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है।

भारत में केला का उत्पादन लगभग 14.2 मीट्रिक टन होता है। केला उत्पादन में भारत का दुनिया में पहला तथा रकबा में तीसरा स्थान है जो फल के रकबे का 13 प्रतिशत एवं फल उत्पादन का 33 प्रतिशत है। राज्यों में महाराष्ट्र केला का सबसे बड़ा उत्पादक है एवं इसके बाद तमिलनाडु का स्थान आता है। महाराष्ट्र में केला की उत्पादकता 65.7 टन/हेक्टेयर है जो औसत राष्ट्रीय उत्पादकता 34.1 टन/हेक्टेयर से भी अधिक है। बिहार में केला की खेती 27.2 हजार हेक्टेयर में की जाती है। उत्पादन लगभग 550 हजार टन एवं औसत उत्पादकता 20.0 टन/हेक्टेयर है जो राष्ट्रीय औसत से काफी कम है। बिहार के मुजफ्फरपुर में इस साल 50 हेक्टेयर क्षेत्र में केला की 'जी-9' प्रजाति की खेती की जानी है। 'जी-9' की विशेषता यह है कि यह केवल नौ-दस माह में तैयार हो जाता है।

केला के प्रमुख उत्पाद

केला से केला चिप्स, केला फिग, केला आटा, केला पापड़, केला हलवा, केला जूस, केला पल्प, केला फल केनिंग, केला टॉफी, केला मदिरा, केला शेम्पेन आदि सामग्रियाँ तैयार की जाती हैं।

जलवायु

केला की खेती के लिये आदर्श तापमान 20 से 30 सेल्सियस होता है। तापमान यदि इसके ऊपर नीचे होता है तो केला की वृद्धि प्रभावित होती है। 10 डिग्री सेल्सियस से नीचे के तापमान पर पौधे की वृद्धि रुक जाती है। यदि केला की घौद जाड़े के मौसम में निकलता है तो वह ठंड की वजह से प्रभावित होती है और फल की बढ़वार की धीमी गति के कारण देर से तैयार होती है। बौनी किस्म बसरई में अत्यधिक सर्दी के कारण घौद कभी-कभी तना के भीतर फंसा रह जाता है और विलंब से तना को फाड़ते हुए बाहर निकलता है। अतः अत्यधिक जाड़ा एवं गर्मी दोनों ही केला के पौधे के लिए हानिकारक है। खेत में जल जमाव की स्थिति भी इसकी वृद्धि को प्रभावित करती है जबकि केला पानी को अधिक पसन्द करने वाली फसल है। गर्म एवं तेज हवाओं से रक्षा करने के उद्देश्य से केला के पौधा को वायु रोधक पौधे के रूप में या वृक्ष खेत के किनारे या मेड़ पर लगाया जाना चाहिए। केला के फलों को 12-13 डिग्री सेल्सीयस पर ही एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना चाहिए क्योंकि उक्त तापक्रम पर श्वसन सबसे कम होता है। उच्च तापक्रम पर पौधों के झुलसने की सम्भावना रहती है। लेकिन गर्मियों में 50 प्रतिशत छाया में केला की खेती की जा सकती है। वर्षा के जल पर आधारित खेती में भी 25 मिलीमीटर वर्षा प्रति सप्ताह पर्याप्त है अन्यथा सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है परन्तु पाला एवं गर्म हवाओं (लू) आदि से काफी क्षति होती है ।

भूमि

केला की खेती के लिए बलुई से मटियार दोमट भूमि उपयुक्त होती है जिसका पी. एच. मान 6.5-7.5 एवं उचित जल निकास का होना आवश्यक है। केला की खेती अधिक अम्लीय एवं क्षारीय भूमि में नही की जा सकती है। भूमि का जलस्तर 7-8 फीट नीचे होना चाहिये। खेत की दो तीन जुताई करने के बाद $50 \times 50 \times 50$ सेंटीमीटर आकार के गड्ढों की खुदाई 1.5×1.5 मीटर बौनी प्रजाति के लिए एवं 2×2 मीटर लम्बी प्रजाति के लिए दूरी पर गड्ढा खोद लेते है। गड्ढों की खोदाई का कार्य मई-जून में कर लेना चाहिए। खुदाई के उपरान्त उसी अवस्था में गड्ढों को 15 दिन के लिए छोड़ देना चाहिए। गड्ढों के रोपण से 15 दिन पूर्व कम्पोस्ट एवं मिट्टी के 1×1 मिश्रण से भर देना चाहिए। गड्ढो की मिट्टी + 20 किलोग्राम सड़ी गोबर की खाद (कम्पोस्ट) + एक किलो ग्राम अंडी की या नीम की खल्ली + 20 ग्राम फ्यूराडान

[1,2,3]वैज्ञानिक

मिट्टी में मिला देना चाहिए। गड्ढा भरने के उपरान्त सिंचाई करना आवश्यक है जिससे गड्ढो की मिट्टी बैठ जाये।

केला की व्यावसायिक प्रजातियाँ

केला की प्रमुख किस्म, 'जी-9' की वर्तमान में बाजार में 70 रूपया दर्जन तक कीमत होती है जबकि दूसरी प्रजाति के केला महज 30 से 40 रुपया की दर पर बिक पाता है। केला की 'सिंगापुरी' और 'रोबिस्टा' प्रजाति की खेती बिहार के कई इलाकों में बड़े पैमाने पर पिछले 10-15 सालों से की जा रही है। कुछ किस्मों का विवरण इस प्रकार है।

1. ड्वार्फ केवेंडिस (बसराई, मारिसस, काबुली, सिन्दुरानी, सिंगापुरी जहाजी, मोरिस भुसावली) : यह प्रजाति मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, बिहार एवं कर्नाटक की जलवायु के लिये बहुत उपयुक्त पायी गयी है। इस प्रजाति से चयन कर 'गनदेवी सिलेक्शन' अथवा पार्डेस (हनुमान) नाम की जातियाँ विकसित की गयी हैं जिनकी उत्पादन क्षमता 20-25 किलोग्राम प्रति पौधा है। इस प्रजाति का पौधा बौना किस्म का 1.5-1.8 मीटर ऊँचा होता है। फल बड़े, मटमैले पीले या हरेपन लिए हुए होता है। पत्तियाँ चौड़ी एवं पीली होती हैं। औसतन 9-10 हेण्ड प्रति बंच (गुच्छा) होता है। औसत फिंगर की लंबाई 20 सेंटीमीटर एवं मोटाई 10 सेंटीमीटर होती है ।

2. रोबस्टा : इसे बाम्बे ग्रीन, हरीछाल, बोजीहाजी आदि नामों से अलग-अलग प्रांतो मे पैदा किया जाता है। इस प्रजाति को पश्चिमी द्वीप समूह से लगाया गया है। पौधों की ऊँचाई 3-4 मीटर, तना मध्यम मोटाई की की हरे रंग का होता है। प्रति पौधे में 10-19 हेण्ड्स में फर्टाइल पुष्प होते हैं जिनमें हरे रंग की फिंगर विकसित होती है। बंच (गुच्छा) का वजन औसतन 25-30 किलोग्राम होता है। फल अधिक मीठे एवं आकर्षक होते हैं। फल पकने पर चमकीले पीले रंग का हो जाता है। यह प्रजाति सिगटोका लीफ स्पष्ट बीमारी से काफी प्रभावित होती है। फलों की भंडारण क्षमता कम होती है।

3. रस्थली : इस प्रजाति को मालभोग, अमृत पानी, सोन केला, रसवाले आदि नाम से विभिन्न राज्यों मे व्यावसायिक रूप से उगाया जाता है। पौधे की ऊँचाई 2.5-3.0 मीटर होती है। पुष्पन 12-14 माह के बाद ही प्रारंभ होता है। फल (फिंगर) चार कोण बाले हरे, पीले रंग के मोटे होते है। छिलके पतले होते हैं। पकने के पश्चात सुनहरे पीले रंग के हो जाते हैं। केलों का बंच 15-20 फिंगर का होता है। फल अधिक स्वादिष्ट, पके सेब जैसी मीठास लिए हुए होता है। केला का छिलका कागज की भांति पतला होता है। इस प्रजाति की भंडारण क्षमता कम होती है।

4. पूवन : इसे चीनी चम्पा, लाल वेल्वी और कदली कोडन के नाम से जाना जाता है। इसका पौघा बेलनाकर, मध्यम ऊंचाई वाला 2.25- 2.75 मीटर का होता है। रोपण के 9-10 महीने में पुष्पण प्रांरभ हो जाता है। इसमें 10-12 हैंड्स रहते हैं। प्रत्येक हेण्ड में 14-16 फिंगर आती है। फल छोटे बेलनाकार एवं उभरी चोंच वाले होते हैं। फल का गूदा हाथी के दांत के समान सफेद एवं ठोस रहता है। इसे अधिक समय तक भंडारित किया जा सकता है। फल पकने के बाद भी बंच से पृथक नही होते हैं।

5. करपूरावल्ली : इसे बोन्था, बेन्सा एवं केशकाल आदि नामों से जाना जाता है। यह किस्म किचिन गार्डन में लगाने लिए उपयुक्त पायी गयी है। इसका पौधा 10-12 फीट लंबा होता है। तना काफी मजबूत होता है। फल गुच्छे में लगते हैं। फल पर तीन रिंज (उभार) होते हैं। एक पौधे में 5-6 पंजे बनते हैं जिसमें 60-70 फल होते हैं जिनका वजन 18-20 किलोग्राम होता है। फल मोटे नुकीले और हरे पीले रंग के होते हैं। यह चिप्स एवं पाउडर बनाने के लिए उपयुक्त प्रजाति है।

6. नेन्द्रन : इसकी उत्पत्ति दक्षिण भारत से हुई है। इसे सब्जी केला या रजेली भी कहते हैं। इसका उपयोग चिप्स बनाने में सर्वाधिक होता है। इसका पौधा बेलनाकार, मध्यम मोटा तथा 3 मीटर उँचाई वाला होता है। गुच्छे में 4-6 हेण्डस, प्रत्येक हेण्ड में 8-14 फिंगर होती है। फल 20 सेंटीमीटर लंबा, छल मोटी तथा थोड़ा मुड़ा एवं त्रिकोणी होता है। जब फल कच्चा होता है तो पीलापन रहता है। परंतु पकने पर छिलका कड़क हो जाता है। इसका मुख्य उपयोग चिप्स एवं पाउडर बनाने के लिये किया जाता है।

केले की उन्नत संकर प्रजातियाँ

(1) एच-1 (अग्निस्वार × पिसांग लिलिन) : यह लीफ स्पष्ट, फ्यूजेरियम विल्ट (उक्ठा/ मुर्क्षा) रोग निरोधी, कम अवधि वाली उपयुक्त किस्म है। यह बुरोविंग सूत्रकृमि के लिए अवरोधक प्रजाति है। इस संकर प्रजाति का पौधा मध्यम ऊँचाई का, 14-16 किलोग्राम, लंबे फल वाला बंच होता है। फल पकने पर सुनहरे, पीले रंग के हो जाते हैं। हल्का खट्टा तथा मीठी-खट्टी महक पकने पर आती है। यह किस्म जड़ी फसल के लिये उपयुक्त है। तीन वर्ष के फसल चक्र में चार फसलें ली जा सकती हैं।

केले की उत्पादन हेतु रोपण सामग्री

केला रोपण हेतु तलवारनुमा आकार के अंतरभूस्तरीय (राइजोम) जिनकी पत्तियाँ संकरी होती हैं बीज के उपयोग में लाया

जाता हैं। तीन माह पुराना सकर्स, जिसका वजन 700 ग्राम से 1 किलोग्राम तक हो रोपण के लिए उपयुक्त होते हैं। वर्तमान में केले के टिशूकल्चर पौधे व्यावसायिक रूप से उत्पादकों द्वारा उपयोग में लाये जा रहे हैं। चूँकि इनको जेनिटिक इंजीनियरिंग द्वारा बीमारी रहित उत्तम गुणवत्ता वाले अधिक उत्पादकता के मातृ वृक्षों से ऊतक निकालकर प्रवर्धित किया जाता है। इन पौधों का स्वभाव दैहिक होता है जिससे फसल एक साथ परिपक्व होती है। इसकी जड़ी(पेड़ी/ रेटून) से भी अच्छा उत्पादन प्राप्त होता है।

भूमि की तैयारी एवं रोपण विधि

खेत की जुताई कर मिट्टी को भूरभूरा बना लेना चाहिये जिससे भूमि का जल निकास उचित रहे तथा कार्बनिक खाद ह्यूमस के रूप मे प्रचुर मात्रा में हो इसके लिये हरी खाद की फसल लें।

पौध अंतराल

कतार से कतार की दूरी 1.8 मीटर, पौधे से पौधे की दूरी 1.5 मीटर रखते हैं तथा पौधा रोपण के लिये 45×45×45 सेंटीमीटर आकार के गड्ढे खोदें। प्रत्येक गड्ढे में 12-15 किलोग्राम सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट रोपण के पूर्व तथा साथ ही प्रत्येक गड्ढे में 5 ग्राम थिमेट दवा मिटटी में मिलाकर दें।

सघन रोपण

इस विधि में उत्पादन तो बढता है लेकिन साथ ही खेती की लागत घटती है। उर्वरक एवं पानी का समुचित एवं सर्वोत्तम उपयोग हो जाता है। रोबस्ट्रा एवं बसराई प्रजाति के पौधों की संख्या प्रति हेक्टेयर बढ़ाकर अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। प्रकन्दों की संख्या एक स्थान पर एक न रखकर तीन रखकर तथा पौधों से पौधों तथा पंक्ति से पंक्ति की दूरी 2-3 मीटर रख प्रति हेक्टेयर 5,000 पौधा रोपा जा सकता है। इसमें नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश की 25 प्रतिशत मात्रा परम्परागत रोपण की तुलना में बढ़ाना पड़ता है। इस व्यवस्था के फलस्वरूप उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि संभव है। सघन रोपण विधि के अन्तर्गत केवेन्डीस समूह के केलों के जोड़ों पंक्ति पद्धति में लगाने की संस्तुति की जाती है। इस विधि में सिंचाई टपक विधि द्वारा करने से सलाह दी जाती है। इसके अनेक फायदे हैं। केला की प्रथम फसल उष्ण जलवायु में 10-11 महिने में ली जा सकती है तथा उपज कम से कम 60 टन तक मिल जाती है।

प्रकंद उपचार

प्रकंदो को उपचार के पूर्व साफ करें तथा जड़ों को पृथक कर दें। इसके बाद कार्बेण्डाजिम 3-4 ग्राम/लीटर पानी का घोल बनाकर प्रकंदों को 5 मिनट तक उपचारित करें।

रोपण का समय

पश्चिमी तथा उत्तरी भारत में केला लगाने का सबसे अच्छा समय दक्षिणी एवं पश्चिमी मानसून की शुरूआत यानि जून-जुलाई का महीना है। दक्षिण भारत के केरल के मालावार हिस्से में सितंबर-अक्टूबर में तथा कुछ क्षेत्र में दिसंबर में केला लगाते है। पश्चिम बंगाल, बिहार तथा असम में मानसून शुरू होने के बाद जून-जुलाई में केला लगाते हैं। बिहार में केला अगस्त के प्रथम सप्ताह के बाद नहीं लगाना चाहिए क्योंकि इस प्रकार लगाये गये पेड़ में घौद जाड़ों में निकलती है जो अत्यधिक ठंडक के कारण देर से बढ़ती है। साथ ही अगस्त मे लगायी गयी फसल की रोपाई से कटाई तक की अवधि अत्यधिक लम्बी हो जाती है क्योंकि सर्दी के कारण फलो को तैयार होने में अधिक समय लगता है।

सिंचाई

भारतीय परिस्थिति में केला की खेती प्रभावी सिंचाई तंत्र द्वारा सुसज्जित होना चाहिए। मृदा में नमी की कमी के आधार पर कुल नमी का 40 प्रतिशत की नमी होने पर सिंचाई करनी चाहिए। आमतौर पर केला में 20 सिंचाई की आवश्यकता होती है। वहीं बूंद-बूंद सिंचाई के ज़रिए बड़े क्षेत्रफल में बेहद सीमित समय में सिंचाई संभव है। चूंकि केवल जड़ तक पानी पहुँचना है इसलिए बिजली का ख़र्च भी बचता है। इसके अलावा इन पाइपों का इस्तेमाल घुलनशील उर्वरक की सटीक मात्रा पहुँचाने के लिए भी होता है।

पोषण

सामान्य वानस्पतिक वृद्धि हेतु 200 से 250 ग्राम प्रति पौधा नाइट्रोजन देना चाहिए। नाइट्रोजन आपूर्ति सामान्यतः यूरिया के रूप में करते है। वानस्पतिक वृद्धि की मुख्य चार अवस्थाएं हैं रोपण के 30, 75, 120 और 165 दिन बाद एवं प्रजननकारी अवस्था की भी मुख्य तीन अवस्था होती है। रोपण के 210, 255 एवं 300 दिन बाद लगभग 150 ग्राम नाइट्रोजन को चार बराबर भाग में बांट कर वानस्पतिक वृद्धि के अवस्था में प्रयोग करना चाहिए। इसी प्रकार से 50 ग्राम नाइट्रोजन को 3 भाग में बाँट कर प्रति पौधा की दर से प्रजननकारी अवस्था में देना चाहिए। बेहतर उपज के लिए नाइट्रोजन का 25 प्रतिशत सड़ी हुई कम्पोस्ट के रूप में अवश्य प्रयोग किया जाना चाहिए। केला में फास्फोरस के प्रयोग की आवश्यकता कम होती है। सुपर फास्फेट के रूप में 100 एवं 150 ग्राम पौधा की दर से फास्फोरस देना चाहिए। फास्फोरस की सम्पूर्ण मात्रा को रोपण के समय ही मिट्टी में दे देना चाहिए।

पोटैशियम की भूमिका केला की खेती में अति महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके विविध प्रभाव है। इसे खेत में सुरक्षित नहीं रखा जा

सकता है तथा इसकी उपलब्धता तापक्रम द्वारा प्रभावित होती है। घौद में फल लगते समय पोटाश की लगातार आपूर्ति आवश्यक है क्योंकि घौद में फल लगने के प्रक्रिया में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। केला की वानस्पतिक वृद्धि के दौरान 100 ग्राम पोटैशियम को दो किस्तों में फल बनते समय देना चाहिए। पूरी फसल अवधि में 300 ग्राम पोटॉश देना चाहिए।

अन्तरवर्तीय फसल

मृग बहार : इस फसल की रोपाई मई जून महीने में की जाती है जिसमें केले के साथ मूंग, भिण्डी, टमाटर, मिर्च, बैगन इत्यादि फसलें ले सकते हैं।

कांदा बहार : इस बहार के अन्तर्गत आलू, प्याज, टमाटर, धनियाँ, बैगन की फसलें ली जा सकती हैं।

केले की फसल में सस्य क्रियाएँ

केले की फसल में पौधों की जड़ों पर मिटटी चढ़ाना आवश्यक है क्योंकि केला की जड़ें अधिक गहरी नहीं जाती हैं। वर्षा के बाद सदैव मिट्टी चढ़ाना चाहिए क्योंकि पौधों के चारों तरफ की मिट्टी धुल जाती है तथा पौधा में घौद निकलने से नीचे की ओर कुछ झुक जाते है और तेज हवा में उनके उलट जाने की संभावना रहती है।

पत्तियों की कटाई एवं छँटाई

पौधा जैसे-जैसे वृद्धि करता है नीचे की पत्तियाँ सूखती हैं। सूखी पत्तियों से फल भी क्षतिग्रस्त होते हैं। सूखी एवं रोगग्रस्त पत्तियों को तेज चाकू से समय-समय पर काटते रहना चाहिए। इस क्रिया से रोग का फैलाव एवं उसकी तीक्षणता घटती है। हवा एवं प्रकाश नीचे तक पहुँचता रहता है जिससे कीटों की संख्या में भी कमी हो जाती है। अधिकतम उपज के लिए 13 से 15 पत्तियाँ ही पर्याप्त होती है।

मल्चिंग

जमीन से जल वाष्पीकरण तथा खरपतवार द्वारा ह्रास होता है तथा भूमि से पोषक तत्व भी खरपतवारों द्वारा लिये जाते हैं। भूमि जल के वाष्पीकरण एवं खरपतवारों के नियंत्रण हेतु प्लास्टिक सीट पौधे की जड़ों के चारों ओर लगाने से उपरोक्त क्षति से बचाव हो जाता है। इसके अतिरिक्त गन्ने के छिलके, सूखी घास, सूखी पत्तियां एवं गुड़ाई करने से जल ह्रास कम हो जाता है। प्लास्टिक की काली पॉलिथिन की मल्चिंग करने पर उत्पादकता में वृद्धि होती है।

अतंभूस्तरी (सकर्स) निकालना

जब तक केले के पौधे में पुष्प गुच्छ नहीं निकल जायें तब तक सकर्स को नियमित रूप से काटते रहें। पुष्पण जब पूर्ण हो जाये तो एक सकर्स को रखा जाये तथा शेष को काटते रहे। यह ध्यान रखें कि एक वर्ष की अवधि तक एक पौधे के साथ एक सकर को ही बढ़ने दिया जाये। वह जड़ी (रेटून) की फसल के रूप में उत्पादन देगा, बंच के निचले स्थान में जो नर मादा भाग होता है। उसे काटकर उसमें बोर्डोपेस्ट या कॉपर-ऑक्सीक्लोराइड (2.0 प्रतिशत घोल) लगा दिया जाये।

सहारा देना

केला की खेती को तेज हवाओं से भी खतरा बना रहता है कई बार तो चक्रवात के प्रकोप से पूरी फसल ही बर्बाद हो जाती है। अतः लम्बी प्रजातियों में सहारा देना अति आवश्यक है। केला के फलों का गुच्छा भारी होने के कारण पौधे नीचे झुक जाता है। अगर उनको सहारा नहीं दिया जाता है तो वे उखड़ भी जाते है अतः दो बांसों को आपस में बांधकर कैंची की तरह बना लेते है तथा फलों के गुच्छे के बीच से लगाकर सहारा देते हैं और केले के पत्ते से उसके डंठल को ढक दिया जाता है।

पौधों को काटना

केला का घौद, पुष्पण से 110 से 130 दिनों में काटने योग्य हो जाते हैं। घौद काटने के पश्चात पौधों को धीरे-धीरे काटें क्योंकि इस क्रिया से मातृप्रकंद के पोषक तत्व जड़ी बाले पौधों को उपलब्ध होने लगते हैं। फसलस्वरूप उत्पादन अच्छा होने की संभावना बढ़ जाती है।

जल प्रबंधन

केला की फसल को अधिक पानी की आवश्यकता होती है। केला के पत्ते अत्यन्त चौड़े होते हैं। एक पौधे के पत्तों का कुल क्षेत्रफल 50-60 वर्गमीटर होता है। इसलिए, बड़े पैमाने पर पानी की वाष्पोत्सर्जन होने से केले को अधिक पानी की आवश्यकता होती है। केले के पूर्ण वर्धित झाड़ों को प्रतिदिन 12-15 लीटर पानी की आवश्यकता होती है। ड्रिप पद्धति से सिंचाई करने पर 60 प्रतिशत पानी की बचत होती है।

गुच्छों को ढकना एवं नर पुष्प की कटाई

पौधों में घौद आ जाने पर वे एक तरफ झुक जाते हैं। यदि उनका झुकाव पूर्व या दक्षिणपूर्व या दक्षिण की तरफ होता है तो फल तेज धूप से खराब हो जाता है। अतः केले के घौद को उपर वाली पत्तियों से ढक देना चाहिए। गहर का अग्रभाग जो नर पुष्प

होता है बिना फल पैदा किये बढ़ता रहता है। गहर में फल पूर्ण मात्रा में लग जाने के पश्चात उसे काट कर अलग कर देना चाहिए जिससे वह भोज्य पदार्थ लेकर फलों की वृद्धि को अवरुद्ध न कर सके तथा इसको बेचकर अतिरिक्त आय भी प्राप्त की जा सके क्योंकि कहीं-कहीं इसका प्रयोग सब्जी बनाने में किया जाता है। नर पुष्प की कटाई बरसात में करना आवश्यक है क्योंकि इससे केला के फल का रंग और आकर्षक हो जाता है। उष्ण एवं उपोष्ण जलवायु में फलों को पारदर्शी छिद्रयुक्त पॉलिथीन से ढकने से 15 से 20 प्रतिशत उपज वृद्धि होती है तथा फल 7 से 10 दिन पहले परिपक्व हो जाते हैं।

फसल संरक्षण

1. पनामा विल्ट या उकठा रोगः यह बीमारी फ्यूजेरियम ओक्सिस्पोरम नामक फफूँद के द्वारा फैलती है। प्रारंभ में पत्तियाँ किनारों से पीली पड़ती हैं और पत्तियाँ डंठल से मुड़ जाती हैं। पौधे की पत्तियाँ मुरझाकर सूखने लगती है। प्रभावित पीली पत्तियाँ तने के चारों ओर स्कर्ट की तरह लटकती रहती हैं। जड़ों और प्रकन्दों के वैसकुलर टिशू पीले, लाल एवं भूरे रंग में परिवर्तित हो जाते हैं और पौधा कमजोर हो जाता है जिसके कारण पुष्पन में फलन नहीं होता है। बाद में आधार पर (निचले भाग) केला का तना पूरा फट जाता है। आधार पर तने का फटना बीमारी का प्रमुख लक्षण है। इस बीमारी की फफूँद जमीन में अनुकूल तापक्रम, नमी एवं पी. एच. की स्थिति में लंबी अवधि तक रहता है।

नियंत्रण

1. गन्ना एवं सूरजमुखी के फसल चक्र को अपनाने से बीमारी का प्रकोप कम हो जाता है।
2. सकर्स को लगाने के पूर्व 2.0 ग्राम/लीटर कार्बेण्डाजिम (50 डबल्यूपी) के धोल में 30 मिनट तक डुबोकर लगाना चाहिए।
3. ट्राइकोडर्मा बिरिडी या ट्राइकोडर्मा हार्जियनम आधारित जैविक फफूंदनाशक का उपयोग करना चाहिए।
4. जिलेटिन केप्सूल मे 50 ग्राम कार्बेण्डाजिम भर केप्सूल अप्लीकेटर के सहारे कंद मे 45 डिग्री कोण पर रखने से बीमारी पर अच्छा नियंत्रण देखा गया है।

2. लीफ स्पष्ट (सिगटोका): यह बीमारी स्यूडोसर्कोस्पोरा म्यूसी फफूँद के कारण होती है। इस बीमारी के प्रकोप से पत्तियों में क्लोरोफिल की कमी हो जाती है जिससे ऊतक हरे से भूरे रंग के हो जाते हैं। धीरे-धीरे पौधे सूखने लगते हैं। प्रारंभ में पत्तियों पर छोटे धब्बे दिखायी देते हैं। फिर यह पीले या हरी पीली धारियों में बदल जाते हैं जो पत्तियों की दोनों सतहों पर दिखायी देते हैं। अंत में यह धारियाँ भूरी एवं काली हो जाती है। धब्बों के बीच का भाग सूख जाता है।

नियंत्रण

प्रभावित सूखी पत्तियों को काटकर जला देना चाहिए। फफूँदनाशक दवाओं जैसे डाइथेन एम 45, 1250 ग्राम प्रति हेक्टेयर या कार्बेण्डाजिम (50 डबल्यूपी) 500 ग्राम /हेक्टेयर या प्रोपिकोनाजोल 2.0 ग्राम/लीटर पानी के घोल का जिसमें टीपोल/ डिटर्जेंट पाउडर (1 चम्मच/15 ली। घोल) डालकर अक्टूबर माह से 3-4 छिड़काव 2-3 सप्ताह के अंतराल से करने से बीमारी पर नियंत्रण रखा जा सकता है।

3. एन्थ्रेक्नोज : यह बीमारी कोलेटोट्राईकम मुसे नामक फफूँद के कारण फैलती है। यह बीमारी केला के पौधे में बढ़वार के समय लगती है। इस बीमारी के लक्षण पौधो की पत्तियों, फूलों एवं फल के छिलके पर छोटे काले गोल धब्बों के रूप मे दिखायी देते हैं। इस बीमारी का प्रकोप जून से सितंबर तक अधिक होता है क्यों कि इस समय तापक्रम ज्यादा रहता है।

नियंत्रण

1. पत्तियों पर रोग से बचाव के लिए कोई ताम्रयुक्त फफूँदनाशी जैसे कॉपर ऑक्सीक्लोराईड या ब्लू कॉपर (50 डबल्यूपी) 2 ग्राम प्रति लीटर पानी के घोल का छिड़काव करना चाहिये।
2. फलों पर सक्रमण रोकने के लिए थायोफेनेट मिथाईल (75 डबल्यूपी) या कार्बेण्डाजिम (50 डबल्यूपी) 2 ग्राम प्रति लीटर पानी का धोल 15 दिनों के अंतराल पर करना चाहिये।
3. केला को 3/4 परिपक्वता पर काटना चाहिये।
4. शीर्षगुच्छा रोग (बंचीटॉप) पत्तियों की भीतरी मध्यशिरा की द्वितीयक नसों के साथ अनियमित गहरी धरियाँ शुरू के लक्षण के रूप में दिखायी देती हैं। ये असामान्य लक्षण गहरे रंग की रेखाओं में एक इंच या ज्यादा लंबे अनियमित किनारों के साथ होते हैं। किनारे ऊपर की ओर मुड़ जाते हैं, डंठल छोटा एवं पौधे बौने रह जाते है और फल नही लगते हैं। इस बीमारी के विषाणु का वाहक पेन्टोलोनिया नाइग्रोनरवोसा नामक माहू है।

नियंत्रण

1. रोग ग्रस्त पौधों को निकालकर नष्ट कर देना चाहिये।
2. रोग वाहक कीट नियंत्रण के लिये थियाक्लोप्रिड (21.7 एस. सी.) या इमिडाक्लोप्रीड (17.8 एस. एल.) 0.7-0.1 मिलीलीटर/ लीटर या थियामेथोक्सम (25 डब्ल्यू. जी.) 2-3 ग्राम/5 लीटर पानी की दर से छिड़काव करना चाहिये ।
3. रोग रहित सकर्स का चयन करें।

केला का खारी विषाणु रोग : इस बीमारी के कारण प्रारंभ में पौधों की पत्तियों पर छोटे पीले धब्बे जो बाद मे सुनहरी पीली धारियों मे बदल कर दिखायी देते हैं। ये धारियां पत्तियों के सतह पर काला रूप लिये मृत ऊत्तक के रूप में (नेक्रोटिक) हो जाती है। घेर का बाहर न निकलना बहुत छोटी घेर निकलना एवं फलों मे बीज का विकास प्रभावित पौधों के प्रमुख लक्षण है। इस रोग का विषाणु मिलीबग (प्लेनोकोकस सिट्री) के द्वारा फैलाया जाता है।

नियंत्रण

प्रभावित पौधों को निकालकर नष्ट कर देना चाहिये तथा मिलीबग के नियंत्रण के लिये कार्बोफ्यूरान की डेढ किलोग्राम मात्रा प्रति एकड के हिसाब से जमीन में डालें।

कीट एवं उनका नियंत्रण

(1) केला प्रकंद छेदक (राइजोम वीविल) : यह कीट केला के प्रकंद में छेद करता है। इसकी इल्ली प्रकंद के अन्दर छेद करती है। परंतु वह बाहर से नहीं दिखायी देती है। कभी-कभी केले के स्यूडोस्टेम में भी छेद कर देता है। इन छिद्रों में सड़न पैदा हो जाती है।

नियंत्रण

प्रकन्दों को लगाने से पहले थियाक्लोप्रिड (21.7 एस.सी.) या इमिडाक्लोप्रीड (17.8 एस. एल.) 1.0 मिलीलीटर/लीटर पानी के धोल में 30 मिनट तक डुबोकर उपचारित करें। अत्याधिक प्रकोप होने पर नोवल्यूरोन 10 ईसी के 1.5 मिलीलीटर/ लीटर या फिप्रोनिल 5 एससी 2.0 मिलीलीटर/लीटर पानी के घोल का छिड़काव करें।

(2) तना भेदक : तना भेदक कीट का मादा वयस्क पत्तियों के डंठलों में अंडे देती हैं जिससे इल्ली निकलकर पत्तियों एवं तने को खाती है। प्रारंभ में पौधे के तने से रस निकलता हुआ दिखायी देता है। फिर कीट के लार्वा किये गये छिद्र से गंदा पदार्थ पत्तियों के डंठल पर बूंद-बूंद टपकता है जिससे तने के अंदर निकल रहे पुष्प प्रोमोर्डिया शुष्क हो जाते हैं। इसका प्रकोप वर्ष भर होता है ।

नियंत्रण

1. इसे नियंत्रित करने के लिये कार्बरिल 50 डब्ल्यू.पी. नामक दवा 4 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलें। इस तरह से तैयार दवाई की 20 टंकी को एक एकड़ में लगे केले के पौधे पर छिड़कें।
2. केले के पौधे के तने में यदि छेद दिखाई पड़ रहे हों तो इन छेदों में, उपर दी गई विधि के अनुसार तैयार दवाई को तने के भीतर डालें।

(3) दीमक : यह कीट सभी केला उत्पादक क्षेत्रों मे पाया जाता है। दीमक से केले को सर्वाधिक नुकसान होता है। इसके नियंत्रण के लिए रोपणी के समय 250 ग्राम नीम खली प्रति पौधा उपयोग करें ।

(4) पत्ती खाने वाली इल्ली : इस कीट की इल्ली नये छोटे पौधों की बिना खुली पत्तियों को खाती है। पत्तियों मे नये छेद बना देती है। इसके नियंत्रण के लिए मिथाइल ओ-डीमेटान 25 ईसी 1.25 मिली प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

केला की फसल में मुख्यतः बनाना बीटल एवं बनाना वीविल कीटों का प्रकोप होता है जो केला के पत्तों में छेद कर देते हैं एवं केला के फलों में पैदावार घट जाती है। इन कीटों के नियंत्रण हेतु जैविक कीटनाशी मिश्रण (बिलेरिया बेसियान एवं मेटाराइजियम) 2 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर को 500 ग्राम गुड़ के साथ मिलाकर घोल को 1-2 दिन सड़ायें और शाम के समय फसलों पर छिड़काव करें। इसके अलावा 2 लीटर प्रति हेक्टेयर नीम का तेल या गौमूत्र, गाय का गोबर, वनस्पति (आक, धतुरा, बेसरम आइपोमिया, नीम की पत्ती आदि) से तैयार किया गया। तरल कीटनाशी का 10-15 दिन के अन्तर पर छिड़काव करें।

किसान बताते हैं कि एक एकड़ में केला की खेती से सालाना डेढ़ से दो लाख रुपये की मुनाफा होता है। एक एकड़ खेती करने पर सालाना बीस हजार खर्च होते हैं यदि 6-6 फुट की दूरी पर प्रति कट्ठा 45 केले के पौधे लगाये जाते हैं। एक एकड़ में लगभग एक हजार पौधे लगाये जाते हैं। एक ओर जहाँ केले की खेती को लेकर किसानों में उत्साह बढ़ रहा है, वहीं कई नामी-गिरामी कंपनियां भी टिशू कल्चर के पौधों को बेचने के लिए बाजार में आ रही है।

आभार : प्रस्तुत लेख कृषि विज्ञान केन्द्र, बुरहानपुर, मध्य प्रदेश के वैज्ञानिकों द्वारा लिखे गए तकनीक पर आधारित है जो बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश के किसानों के लिए आवश्यकतानुसार परिवर्तित की गयी है।

सब्जियों के प्रोबॉयोटिक उत्पाद

नीलिमा गर्ग[1] एवं संजय कुमार[2]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

'प्रोबॉयोटिक', 'प्रो' तथा 'बॉयोटिक' शब्दों की संधि से बना है जिसका अर्थ है जीवन के लिये। रूसी वैज्ञानिक और नोबल पुरस्कार विजेता एली मेटनीकोफ ने अनुभवों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि आँत में हानिकारक जीवाणुओं को हटा कर मित्र जीवाणुओं को लाना संभव है। इन निष्कर्षों के परिणामस्वरूप ही दही मरीजों को दी जाने वाली खुराक का आवश्यक अंग बन गया। तब से प्रोबॉयोटिक के अनुसंधान में निरन्तर वृद्धि देखी गयी है।

क्रियात्मक खाद्य पदार्थो के अन्तर्गत प्रोबॉयोटिक एक ऐसा विशेष क्षेत्र है जो पिछले कुछ वर्षों के दौरान काफी चर्चा का विषय बना है। अपने विशेष लाभकारी गुणों के कारण प्रोबॉयोटिक खाद्य पदार्थ तीव्र गति से बाजारी विकास की ओर अग्रसर हैं। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की भोजन सूची में प्रोबॉयोटिक युक्त खाद्य उत्पाद शामिल है। संयुक्त राष्ट्र के खाद्य एवं कृषि संगठन (एफ.ए.ओ.) की परिभाषा के अनुसार प्रोबॉयोटिक ऐसे सूक्ष्मजीव (अधिकांश जीवाणु) हैं जो पर्याप्त मात्रा में ग्रहण करने से मेजबान को स्वास्थ्य लाभ प्रदान करते हैं। ये हमारे शरीर विशेषकर पाचन तंत्र को विशेष रूप से लाभान्वित करते हैं। हमारे पाचन तंत्र में सामान्य रूप से अच्छे और बुरे जीवाणु होते हैं। अच्छे स्वास्थ्य के लिए इन दोनों के बीच का संतुलन कायम करना आवश्यक है। हमारे जठरांत्र संबंधी मार्ग में 400 से अधिक प्रजातियों के जीवाणु होते हैं। कम मात्रा में ये जीवाणु पेट तथा छोटी आँत में होते हैं लेकिन बहुमत बृहदान्त्र में पाया जाता है। ये आँतों को पाचन में सहायता करते हैं तथा आँतों की सक्रियता और प्रतिरक्षा प्रणाली को बढ़ाते हैं। वर्तमान युग में बढ़ती प्रतिजीवाणु औषधियों के उपयोग से हाानिकारक जीवाणुओं के साथ-साथ इनकी जनसंख्या भी नष्ट हो जाती है जिसके कारण पाचन संबंधी अनेक व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती है जो स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं। प्रोबॉयोटिक युक्त उत्पादों के उपभोग से पाचन तंत्र में उपस्थित लाभकारी जीवाणुओं की संख्या उचित स्तर पर बनाये रखने में काफी सहायता मिलती है। प्रोबॉयोटिक कई प्रकार के रोगाणुओं को नष्ट करने में भी सक्षम होते हैं।

[1]प्रधान वैज्ञानिक एवं [2]मुख्य तकनीकी अधिकारी

प्रोबॉयाटिक जीवाणु (जीवाणु), फफूँदी तथा यीस्ट हो सकते हैं परन्तु इनमें जीवाणुओं का महत्व सर्वोपरि है। प्रोबॉयोटिक जीवाणुओं में लैक्टोबैसीलस तथा बाइफिडोबैक्टीरियम की प्रजातियाँ प्रमुख है जिनमें लैक्टोबैसीलस जीवाणु सर्वप्रमुख है। लैक्टोबैसीलस की 50 से अधिक प्रजातियाँ हैं। तालिका 1 में व्यावसायिक रूप से उपलब्ध सूक्ष्मजैविक प्रजातियाँ सूचीबद्ध हैं।

तालिका 1 : व्यवसायिक उपयोग में लायी जाने वाली प्रमुख प्रोबॉयोटिक प्रजातियाँ

जीवाणु	लैक्टोबैसिलस प्रजातियाँ	लैक्टोबैसिलस एसिडोफिलस, लैक्टोबैसिलस केसाई, लैक्टोबैसिलस फरमेन्टम, लैक्टोबैसिलस गासेरी, लैक्टोबैसिलस जॉन्सनाई, लैक्टोबैसिलस लैक्टिस, लैक्टोबैसिलस पैराकेसाई, लैक्टोबैसिलस प्लैन्ट्रम, लैक्टोबैसिलस रियूटरी, लैक्टोबैसिलस रैम्नोसस, लैक्टोबैसिलस सैलिवेरियस
	बाईफिडो-बैक्टीरियम प्रजातियाँ	बाईफिडोबैक्टीरियम बाईफिडम, बाईफिडोबैक्टीरियम ब्रीवी, बाईफिडोबैक्टीरियम लैक्टिम, बाईफिडोबैक्टीरियम लौंगम
	स्ट्रैप्टोकोकस प्रजातियाँ	स्ट्रैप्टोकोकस थर्मोफिलस
यीस्ट	सैकेरोमाइसेज प्रजातियाँ	सैकेरोमाइसेज बाउर्लाडाई

फल तथा सब्जियाँ विटामिन तथा खनिज तत्वों के उत्तम स्रोत हैं। इनका किण्वित उत्पाद बनाना एक प्राचीन विधा रही है। किण्वित अचार, कांजी एवं सिरका स्वास्थ्य के लिए काफी लाभप्रद माने जाते हैं। विगत कुछ वर्षो में किण्वित फलों एवं सब्जियों की प्रोबॉयोटिक उत्पादों के रूप में उपयोगिता काफी चर्चित रहा है। गाजर, शलजम, चुकन्दर, खीरा, शिमलामिर्च, बंदगोभी इत्यादि को किण्वित कर इन्हें प्रोबॉयोटिक युक्त बनाया जा सकता है। कुछ वैज्ञानिकों ने इन फलों एवं सब्जियों के रस को किण्वित कर स्वास्थ्यवर्धक किंण्वित पेय भी बनाये हैं।

खीरे का अचार तथा बंद गोभी से निर्मित सावरक्रॉट विदेशों में काफी प्रचलित हैं तथा भारत में भी इनकी काफी अच्छी संभावनाएँ हो सकती हैं। गाजर, मूली आदि की सतह पर लैक्टोबैसीलस की प्राऔतिक कालोनियाँ पायी जाती हैं। अतः इनको किण्वित करने हेतु अलग से कोई इनोकुलम की आवश्यकता नहीं होती है। बस उचित ताप पर नमक युक्त माध्यम में सब्जियों को किण्वित करना होता है। जीवाणुओं की कालोनी गणना 10^6 से 10^8 के बीच आने पर किण्वित पदार्थ तैयार हो जाता है। उक्त पदार्थ में पोषक तत्वों के साथ-साथ प्रोबॉयोटिक तत्व उचित मात्रा में उपलब्ध होते हैं।

तालिका 2 : प्रोबॉयोटिक युक्त सब्जियों के भोज्य पदार्थ

सॉरक्राट	किण्वित बंद गोभी
किमची	कोरिया में बनाये जाने वाली बंद गोभी
किण्वित सब्जियाँ	नमकीन अदरक
कांजी	गाजर का किण्वित उत्पाद

प्रोबॉयोटिक के स्वास्थ्य संबंधी लाभ

प्रोबॉयोटिक का प्रयोग पाचन संबंधी रोगों के उपचार में पारंपरिक औषधियों के स्थान पर किया जाता है। इनका सबसे अधिक प्रयोग दस्त के उपचार में किया गया है। इन्होंने 60 प्रतिशत से अधिक दस्त के मामलों में सफलता दिखायी है। प्रोबॉयोटिक जीवाणु आँतों की अखंडता संरक्षित करते हैं। ये क्षुदांत्र रोगों, वृहदांत्र शोथ तथा यकृत रोगों के उपचार में सहायक होते हैं। वरिष्ठ नागरिकों के लिए विशेषकर लाभप्रद हैं क्योंकि ये आंत्र गतिशीलता बढ़ा कर कब्ज दूर करते हैं। किण्वन के उपरान्त, लैक्टिक एसिड बैक्टीरिया दही में फोलिक एसिड, नियेसिन तथा राइबोफ्लेविन की मात्रा बढ़ा देते हैं जबकि कोटेज तथा चिडार चीज में यह क्रमशः विटामिन बी 12 तथा बी 6 की मात्रा बढ़ा देते हैं। लैक्टिक अम्ल बैक्टीरिया द्वारा उत्पन्न लघु शृंखला वसा अम्ल आंत्र की सतह की उचित पी.एच. बनाये रखने में मदद करते हैं और रोगकारक जीवाणु की बढ़त को रोकते हैं।

प्रोबॉयोटिक के प्रयोग से मूत्र तथा जनन संबंधी रोगों के उपचार में भी मदद मिलती है। ये गर्भावस्था संबंधी जटिलताओं को रोकने में सहायता करते हैं।

प्रयोगशाला शोध निष्कर्षों से पता चला है कि प्रोबॉयोटिक साधारण और विशिष्ट दोनों प्रकार की प्रतिरक्षा प्रणालियों में सुधार करते हैं। ये मैक्रोफेज तथा प्राकृतिक नाशी कोशिकाओं की सक्रियता में वृद्धि के द्वारा प्रतिरक्षा प्रणालियों को मजबूत करते हैं तथा साइटोकाइनिन्स तथा इम्यूनोग्लोंबिन के स्तर को बढ़ाते हैं। सीमित परीक्षणों के बावजूद ये परिणाम बुजुर्गों के लिए विशेषकर महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इनसे प्रतिरक्षा प्रणाली मजबूत होती है। प्रोबॉयोटिक का अलर्जी पीड़ित लोगों में लाभदायक प्रभाव देखा गया। ये आँतों की सतह द्वारा दी गयी बाधा प्रतिक्रिया को कम करते हैं तथा लाभदायक प्रतिरक्षा प्रणाली को सक्रिय करते हैं। प्रोबॉयोटिक हानिकारक कार्सीनोजेनिक पदार्थो को घटाकर कैंसर जैसे रोगों की संभावनाएं कम करते हैं।

फणीश्वर नाथ 'रेणु' - एक परिचय

फणीश्वर नाथ 'रेणु' का जन्म 4 मार्च 1921 को बिहार के अररिया जिले में फरबिसगंज के पास औराही हिंगना गाँव में हुआ था। उस समय यह पूर्णिया जिले में था। उनकी शिक्षा भारत और नेपाल में हुई। प्रारंभिक शिक्षा फारबिसगंज तथा अररिया में पूरी करने के बाद रेणु ने मैट्रिक नेपाल के विराटनगर के विराटनगर आदर्श विद्यालय से कोईराला परिवार में रहकर की। इन्होंने इन्टरमीडिएट काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से 1942 में की जिसके बाद वे स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े। बाद में 1950 में उन्होंने नेपाली क्रांतिकारी आन्दोलन में भी हिस्सा लिया जिसके परिणामस्वरूप नेपाल में जनतंत्र की स्थापना हुई। 1952-53 के समय वे भीषण रूप से रोगग्रस्त रहे थे जिसके बाद लेखन की ओर उनका झुकाव हुआ। उनके इस काल की झलक उनकी कहानी तबे एकला चलो रे में मिलती है। उन्होंने हिन्दी में आंचलिक कथा की नींव रखी। सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय, एक समकालीन कवि, उनके परम मित्र थे। इनकी कई रचनाओं में कटिहार के रेलवे स्टेशन का उल्लेख मिलता है।

इनकी लेखन-शैली वर्णणात्मक थी जिसमें पात्र के प्रत्येक मनोवैज्ञानिक सोच का विवरण लुभावने तरीके से किया होता था। पात्रों का चरित्र-निर्माण काफी तेजी से होता था क्योंकि पात्र एक सामान्य-सरल मानव मन (प्रायः) के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता था। इनकी लगभग हर कहानी में पात्रों की सोच घटनाओं से प्रधान होती थी। एक आदिम रात्रि की महक इसका एक सुंदर उदाहरण है। रेणु की कहानियों और उपन्यासों में उन्होंने आंचलिक जीवन के हर धुन, हर गंध, हर लय, हर ताल, हर सुर, हर सुंदरता और हर कुरूपता को शब्दों में बांधने की सफल कोशिश की है। उनकी भाषा-शैली में एक जादुई सा असर है जो पाठकों को अपने साथ बांध कर रखता है। रेणु एक अद्भुत कहानीकार थे और उनकी रचनाएँ पढ़ते हुए लगता है मानों कोई कहानी सुना रहा हो। ग्राम्य जीवन के लोकगीतों का उन्होंने अपने कथा साहित्य में बड़ा ही सर्जनात्मक प्रयोग किया है।

भारत संघ की राजभाषा संबंधी अनुच्छेद एवं नियम

भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

अनुच्छेद 343 : संघ की राजभाषा

1. संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी, संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अंतर्राष्ट्रीय रूप होगा।

2. खंड (1) में किसी बात के होते हुए भी, इस संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की अवधि तक संघ के उन सभी शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता रहेगा जिनके लिए उसका ऐसे प्रारंभ से ठीक पहले प्रयोग किया जा रहा था;

   परन्तु राष्ट्रपति उक्त अवधि के दौरान, आदेश द्वारा, संघ के शासकीय प्रयोजनों में से किसी के लिए अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त हिंदी भाषा का और भारतीय अंकों के अंतर्राष्ट्रीय रूप के अतिरिक्त देवनागरी रूप का प्रयोग प्राधिकृत कर सकेगा।

3. इस अनुच्छेद में किसी बात के होते हुए भी, संसद उक्त पंद्रह वर्ष की अवधि के पश्चात, विधि द्वारा

   (अ) अंग्रेजी भाषा का, या

   (ब) अंकों के देवनागरी रूप का,

   (स) ऐसे प्रयोजनों के लिए प्रयोग उपबंधित कर सकेगी जो ऐसी विधि में विनिर्दिष्ट किए जाएं।

अनुच्छेद 344 : राजभाषा के संबंध में आयोग और संसद की समिति।

1. राष्ट्रपति, इस संविधान के प्रारंभ से पांच वर्ष की समाप्ति पर और तत्पश्चात ऐसे प्रारंभ से दस वर्ष की समाप्ति पर, आदेश द्वारा, एक आयोग गठित करेगा जो एक अध्यक्ष और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट विभिन्न भाषाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले ऐसे अन्य सदस्यों से मिलकर बनेगा जिनको राष्ट्रपति नियुक्त करे और आदेश में आयोग द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया परिनिश्चित की जाएगी।

2. आयोग का यह कर्तव्य होगा कि वह राष्ट्रपति को (अ) संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए हिंदी भाषा के अधिकाधिक प्रयोग (ब) संघ के सभी या किन्हीं शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा के प्रयोग पर निर्बंधनों (स) अनुच्छेद 348 में उल्लिखित सभी या किन्हीं प्रयोजनों के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा (द) संघ के किसी एक या अधिक विनिर्दिष्ट प्रयोजनों के लिए प्रयोग किए जाने वाले अंकों के रूप (य) संघ की राजभाषा तथा संघ और किसी राज्य के बीच या एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच पत्रादि की भाषा और उनके प्रयोग के संबंध में राष्ट्रपति द्वारा आयोग को निर्देशित किए गए किसी अन्य विषय, के बारे में सिफारिश करे।

3. खंड (2) के अधीन अपनी सिफारिशें करने में, आयोग भारत की औद्योगिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक उन्नति का और लोक सेवाओं के संबंध में अहिंदी भाषी क्षेत्रों के व्यक्तियों के न्यायसंगत दावों और हितों का सम्यक ध्यान रखेगा।

4. एक समिति गठित की जाएगी जो तीस सदस्यों से मिलकर बनेगी जिनमें से बीस लोक सभा के सदस्य होंगे और दस राज्य सभा के सदस्य होंगे जो क्रमशः लोक सभा के सदस्यों और राज्य सभा के सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित होंगे।

5. समिति का यह कर्तव्य होगा कि वह खंड (5) के अधीन गठित आयोग की सिफारिशों की परीक्षा करे और राष्ट्रपति को उन पर अपनी राय के बारे में प्रतिवेदन दे।

6. अनुच्छेद 343 में किसी बात के होते हुए भी, राष्ट्रपति खंड (5) में निर्दिष्ट प्रतिवेदन पर विचार करने के पश्चात उस संपूर्ण प्रतिवेदन के या उसके किसी भाग के अनुसार निदेश दे सकेगा।

अनुच्छेद 345 : राज्य की राजभाषा या राजभाषाएं।

अनुच्छेद 346 और अनुच्छेद 347 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, किसी राज्य का विधान-मंडल, विधि द्वारा, उस राज्य में प्रयोग होने वाली भाषाओं में से किसी एक या अधिक भाषाओं को या हिंदी को उस राज्य के सभी या किन्हीं शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा या भाषाओं के रूप में अंगीकार

कर सकेगा।

परंतु जब तक राज्य का विधान-मंडल, विधि द्वारा, अन्यथा उपबंध न करे तब तक राज्य के भीतर उन शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता रहेगा जिनके लिए उसका इस संविधान के प्रारंभ से ठीक पहले प्रयोग किया जा रहा था।

अनुच्छेद 346 : एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच या किसी राज्य और संघ के बीच पत्रादि की राजभाषा।

संघ में शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग किए जाने के लिए तत्समय प्राधिकृत भाषा, एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच तथा किसी राज्य और संघ के बीच पत्रादि की राजभाषा होगी;

परंतु यदि दो या अधिक राज्य यह करार करते हैं कि उन राज्यों के बीच पत्रादि की राजभाषा हिंदी भाषा होगी तो ऐसे पत्रादि के लिए उस भाषा का प्रयोग किया जा सकेगा।

अनुच्छेद 347 : किसी राज्य की जनसंख्या के किसी भाग द्वारा बोली जाने वाली भाषा के संबंध में विशेष उपबंध।

यदि इस निमित्त मांग किए जाने पर राष्ट्रपति का यह समाधान हो जाता है कि किसी राज्य की जनसंख्या का पर्याप्त भाग यह चाहता है कि उसके द्वारा बोली जाने वाली भाषा को राज्य द्वारा मान्यता दी जाए तो वह निदेश दे सकेगा कि ऐसी भाषा को भी उस राज्य में सर्वत्र या उसके किसी भाग में ऐसे प्रयोजन के लिए, जो वह विनिर्दिष्ट करे, शासकीय मान्यता दी जाए।

अनुच्छेद 348 : उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में और अधिनियमों, विधेयकों आदि के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा।

1. इस भाग के पूर्वगामी उपबंधों में किसी बात के होते हुए भी, जब तक संसद् विधि द्वारा अन्यथा उपबंध न करे तब तक।

(अ) उच्चतम न्यायालय और प्रत्येक उच्च न्यायालय में सभी कार्यवाहियां अंग्रेजी भाषा में होंगी,

(ब) i. संसद के प्रत्येक सदन या किसी राज्य के विधान-मंडल के सदन या प्रत्येक सदन में पुरःस्थापित किए जाने वाले सभी विधेयकों या प्रस्तावित किए जाने वाले उनके संशोधनों के,

ii. संसद या किसी राज्य के विधान-मंडल द्वारा पारित सभी अधिनियमों के और राष्ट्रपति या किसी राज्य के राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित सभी अध्यादेशों के, और

iii. इस संविधान के अधीन अथवा संसद या किसी राज्य के विधान-मंडल द्वारा बनाई गई किसी विधि के अधीन निकाले गए या बनाए गए सभी आदेशों, नियमों, विनियमों और उपविधियों के, प्राधिंत पाठ अंग्रेजी भाषा में होंगे।

2. खंड (1) के उपखंड (क) में किसी बात के होते हुए भी, किसी राज्य का राज्यपाल राष्ट्रपति की पूर्व सहमति से उस उच्च न्यायालय की कार्यवाहियों में, जिसका मुख्य स्थान उस राज्य में है, हिन्दी भाषा का या उस राज्य के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाली किसी अन्य भाषा का प्रयोग प्राधिंत कर सकेगा।

   परंतु इस खंड की कोई बात ऐसे उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए किसी निर्णय, डिक्री या आदेश को लागू नहीं होगी।

3. खंड (1) के उपखंड (ख) में किसी बात के होते हुए भी, जहां किसी राज्य के विधान-मंडल ने, उस विधान-मंडल में पुरःस्थापित विधेयकों या उसके द्वारा पारित अधिनियमों में अथवा उस राज्य के राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित अध्यादेशों में अथवा उस उपखंड के पैरा (iv) में निर्दिष्ट किसी आदेश, नियम, विनियम या उपविधि में प्रयोग के लिए अंग्रेजी भाषा से भिन्न कोई भाषा विहित की है वहां उस राज्य के राजपत्र में उस राज्य के राज्यपाल के प्राधिकार से प्रकाशित अंग्रेजी भाषा में उसका अनुवाद इस अनुच्छेद के अधीन उसका अंग्रेजी भाषा में प्राधिकृत पाठ समझा जाएगा।

अनुच्छेद 349 : भाषा से संबंधित कुछ विधियां अधिनियमित करने के लिए विशेष प्रक्रिया।

इस संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की अवधि के दौरान, अनुच्छेद 348 के खंड (1) में उल्लिखित किसी प्रयोजन के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा के लिए उपबंध करने वाला कोई विधेयक या संशोधन संसद के किसी सदन में राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी के बिना पुरःस्थापित या प्रस्तावित नहीं किया जाएगा और राष्ट्रपति किसी ऐसे विधेयक को पुरःस्थापित या किसी ऐसे संशोधन को प्रस्तावित किए जाने की मंजूरी अनुच्छेद 344 के खंड (1) के अधीन गठित आयोग की सिफारिशों पर और उस अनुच्छेद के खंड (4) के अधीन गठित समिति के प्रतिवेदन पर विचार करने के पश्चात् ही देगा, अन्यथा नहीं।

अनुच्छेद 350 : व्यथा के निवारण के लिए अभ्यावेदन में प्रयोग की जाने वाली भाषा ।

प्रत्येक व्यक्ति किसी व्यथा के निवारण के लिए संघ या राज्य

के किसी अधिकारी या प्राधिकारी को, यथास्थिति, संघ में या राज्य में प्रयोग होने वाली किसी भाषा में अभ्यावेदन देने का हकदार होगा।

अनुच्छेद 350 : प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की सुविधाएं ।

प्रत्येक राज्य और राज्य के भीतर प्रत्येक स्थानीय प्राधिकारी भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों के बालकों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करने का प्रयास करेगा और राष्ट्रपति किसी राज्य को ऐसे निदेश दे सकेगा जो वह ऐसी सुविधाओं का उपबंध सुनिश्चित कराने के लिए आवश्यक या उचित समझता है।

अनुच्छेद 350 : खंड भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों के लिए विशेष अधिकारी।

3. भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों के लिए एक विशेष अधिकारी होगा जिसे राष्ट्रपति नियुक्त करेगा।
4. विशेष अधिकारी का यह कर्तव्य होगा कि वह इस संविधान के अधीन भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों के लिए उपबंधित रक्षोपायों से संबंधित सभी विषयों का अन्वेषण करें और उन विषयों के संबंध में ऐसे अंतरालों पर जो राष्ट्रपति निर्दिष्ट करें,

राष्ट्रपति को प्रतिवेदन दे और राष्ट्रपति ऐसे सभी प्रतिवेदनों को संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगा और संबंधित राज्यों की सरकारों को भिजवाएगा।

अनुच्छेद 351 : हिंदी भाषा के विकास के लिए निदेश।

संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे जिससे वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्थानी में और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए और जहां आवश्यक या वांछनीय हो वहां उसके शब्द-भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत से और गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे।

अनुच्छेद 120 : संसद में प्रयोग की जाने वाली भाषा।

1. भाग 17 में किसी बात के होते हुए भी, किंतु अनुच्छेद 348 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, संसद में कार्य हिंदी में या अंग्रेजी में किया जाएगा परंतु, यथास्थिति, राज्य सभा का सभापति या लोक सभा का अध्यक्ष अथवा उस रूप में कार्य करने वाला व्यक्ति किसी सदस्य को, जो हिंदी में या अंग्रेजी में अपनी पर्याप्त अभिव्यक्ति नहीं कर सकता है, अपनी मातृ-भाषा में सदन को संबोधित करने की अनुज्ञा दे सकेगा ।
2. जब तक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबंध न करे तब तक इस संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात यह अनुच्छेद ऐसे प्रभावी होगा मानो "या अंग्रेजी में" शब्दों का उसमें से लोप कर दिया गया हो ।

अनुच्छेद 210 : विधान-मंडल में प्रयोग की जाने वाली भाषा।

1. भाग 17 में किसी बात के होते हुए भी, किंतु अनुच्छेद 348 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, राज्य के विधान-मंडल में कार्य राज्य की राजभाषा या राजभाषाओं में या हिंदी में या अंग्रेजी में किया जाएगा। परंतु, यथास्थिति, विधान सभा का अध्यक्ष या विधान परिषद का सभापति अथवा उस रूप में कार्य करने वाला व्यक्ति किसी सदस्य को, जो पूर्वोक्त भाषाओं में से किसी भाषा में अपनी पर्याप्त अभिव्यक्ति नहीं कर सकता है, अपनी मातृभाषा में सदन को संबोधित करने की अनुज्ञा दे सकेगा।
2. जब तक राज्य का विधान-मंडल विधि द्वारा अन्यथा उपबंध न करे तब तक इस संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात यह अनुच्छेद ऐसे प्रभावी होगा मानो "या अंग्रेजी में" शब्दों का उसमें से लोप कर दिया गया हो।

परंतु हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, मेघालय और त्रिपुरा राज्यों के विधान-मंडलों के संबंध में, यह खंड इस प्रकार प्रभावी होगा मानो इसमें आने वाले "पंद्रह वर्ष" शब्दों के स्थान पर ''पच्चीस वर्ष'' शब्द रख दिए गए हों।

परंतु यह और कि अरूणाचल प्रदेश, गोवा और मिजोरम राज्यों के विधान-मंडलों के संबंध में यह खंड इस प्रकार प्रभावी होगा मानो इसमें आने वाले "पंद्रह वर्ष" शब्दों के स्थान पर "चालीस वर्ष" शब्द रख दिए गए हों ।

गौरैया

हमने बचपन में देखी थी,
प्यारी सी चिड़िया गौरैंया
मेरे घर आगन में जो,
कलरव करती थी गौरैया।
हमने बचपन में देखी थी,
प्यारी सी चिड़िया गौरैंया।

कत्थई चितकबरे पंखो वाली
सुन्दर सी चिड़िया गौरैया
भोर भये चीं चीं के स्वर में,
हमें जगाती थी गौरैया।
हमने बचपन में देखी थी,
प्यारी सी चिडिया गौरैंया।

फुदक-फुदक कर,
सबका मन बहलाती
छत बालकनी और कभी,
आंगन में नजर आती।
हमने बचपन में देखी थी,
प्यारी सी चिड़ियां गौरैंया।

कोई चिडवा चिर्डी कहता
इनको कोइ चिरैंया गौरैया
जाने किधर से आती गौरैया
जाने किधर उड़ जाती।
हमने बचपन में देखी थी,
प्यारी सी चिडिया गौरैंया।

हम सब दाना रोज डालते,
खा लेती पर हाथ न आती
पकड न पाता कोई उनको
फुर्र से उड जाती गौरैया।
हमने बचपन में देखी थी,
प्यारी सी चिड़िया गौरैंया।

तिनका तिनका जोड़ बनाती,
पेंड अटारी कोनों में अपना घर
दिन भर कलरव के पश्चात,
शाम ढले क्षुप जाती गौरैया।
हमने बचपन में देखी थी,
प्यारी सी चिडियां गौरैंया।

पर अब सपना हो गई गौरैया,
चाहे कितना भी दाना ड़ालो
नही सुनाई देती इनकी चहचहाट,
नही दिखाई देती गौरैया।
हमने बचपन में देखी थी,
प्यारी सी चिडियां गौरैंया।

बिना पाले जो घर आंगन में
अपनी चीं चीं के स्वर में
हमे जगाती थी गौरैया,
नहीं दिखाई देती गौरैया।
हमने बचपन में देखी थी,
प्यारी सी चिडियां गौरैंया।

–रेखा चौरसिया
सहा. मुख्य तकनीकी अधिकारी

आम दोहावली- आम की वैज्ञानिक खेती

आम एक राष्ट्रीय फल, रहा सदा ही श्रेष्ठ,
रंग रूप गुण स्वाद में, सभी फलों मे ज्येष्ठ।।1।।

पूजा या शुभ कार्य हो, या हो बन्दनवार,
लगे आम के पर्ण बिन, फीका सा घर द्वार।।2।।

ताजा खायें या करें, परिरक्षित उत्पाद,
छीला पल्प अचार या, पेय अमावट आदि ।।3।।

दुग्ध, आम सेवन करें, होगा कायाकल्प,
कैंसर से रक्षा करे, होंगे लाभ अकल्प।।4।।

खनिज ऊर्जा से भरा, कैरोटिन लुपियाल,
कैंसर रक्षक गुण यही, रखता सदा रसाल।।5।।

लंगड़ा चौंसा दशहरी, हैं प्राचीन प्रजाति,
आम्रपाली, मल्लिका, भी पा रही हैं ख्याति।।6।।

आम अरुणिका अंबिका, हैं नवीनतम जात,
फल नियमित पैदा करें, रंग रूप विख्यात।।7।।

मिट्टी गहरी दुमट हो, पोषण भली प्रकार,
फल गुणवत्तायुक्त हों, अच्छा हो आकार।।8।।

गर्म गर्मतर क्षेत्र हों, या हों ठंडे गर्म,
मरुथल पर्वत छोड़कर, आम सफल है मर्म।।9।।

बागीचा जंगल दिखे, उम्र पचासेक साल,
फल छोटे वा कम लगें, फलत, न हो हर साल।।10।।

शाखाएं फँसती दिखें, धूप न हो पर्याप्त,
कीट और बीमारियां, भी हो जाएं व्याप्त।।11।।

तभी उचित है आम का, करना जीर्णोद्धार,
शाखाएं काटो तभी, छोड़ो ठूँठ विचार।।12।।

माह दिसम्बर में सदा, काट छाँट हो जाय,
ध्यान रहे कटते समय, शाख न फटने पाय।।13।।

इन वृक्षों को फिर मिले, देखभाल तत्काल,
खाद उर्वरक आदि सब, दें थाले में डाल।।14।।

एक किलो हो नत्रजन, आध किलो हो फॉस,
कुन्तल गोबर खाद संग, आध किलो पोटास।।15।।

मास फरवरी तक सदा, कर लें सारे काम,
फिर पानी देते रहें, वृक्षों को आराम।।16।।

जब प्ररोह ज्यादा दिखें, विरलन करें तुरन्त,
सीमित कल्ले छोड़ दें, हर शाखा के अन्त।।17।।

तना बेधक कीट का, रक्खें ध्यान विशेष,
छिद्र बनाता तने पर, छोड़े ये अवशेष।।18।।

छिद्र सुरंगे जब दिखें, करिये दूर विकार,
तीली अन्दर डालकर, सूँड़ी को दें मार।।19।।

रुई भिगो नूवान में, दें छिद्रों में डाल,
गीली मिट्टी लगा फिर, बन्द करें तत्काल।।20।।

वर्षा ऋतु में कीट या, लगे पर्ण में व्याधि,
छिड़कें संस्तुत ही दवा, दूर कीट रोगादि।।21।।

तीन वर्ष मे फलत दें, जीर्णोद्धरित वृक्ष,
दिखने मे छोटे लगें, उत्पादन में दक्ष।।22।।

लाभ देख सरकार भी, देती है अनुदान,
जीर्णोद्धार कराइये , ले तकनीकी ज्ञान।।23।।

स्वस्थ रखें हम बाग को, खाद उर्वरक डाल,
पहले वर्णित मात्रा, मास सितंबर काल।।24।।

सूक्ष्म तत्वों की कमी, डाले बड़ा प्रभाव,
छिड़कें जिंक बुरान भी, होगा दूर अभाव।।25।।

घुलनशील बोरान की, मात्रा दो सौ ग्राम,
सौ लीटर जल में छिड़क, जभी टिकोरा आम।।26।।

अगर जिंक की कमी हो, छिड़को लगते आम,
सौ लीटर जल है अगर, जिंक चार सौ ग्राम।।27।।

छिड़कें जब आकार हो, फल का मटर समान,
फल की अच्छी वृद्धि हो, बने गुणों की खान।।28।।

कीट व्याधियों के लिए, करिये उचित उपाय,
सही समय छिड़काव हो, तभी आम से आय।।29।।

भुनगा नामक कीट भी, करता तीव्र विनाश,
बौर चूसता आम का, कर देता है नाश।।30।।

चूस चूस कर बौर पर, करता है मधु स्राव,
काली वर्ण फफूँद का, पत्तों पर बिखराव।।31।।

चार इंच का बौर हो, तभी करें छिड़काव,
छै सौ एम एल ईमिडा, टैंकर भरो मिलाव।।32।।

फूल खिले हों बौर में, नहीं करें छिड़काव,
मित्र कीट भी नष्ट हों, फिर पीछे पछताव।।33।।

जभी आम के बौर पर, दिखे श्वेत सा चूर्ण,
समझो खर्रा व्याधि का, हुआ आगमन पूर्ण।।34।।

घुलनशील गंधक मिला, कर दीजै छिड़काव,
चार किलो गर मात्रा, टैंकर भर जल लाव।।35।।

आम टिकोरे वृद्धि हित, नियमित सींचें बाग,
तीन बार पानी लगे, तब जब बरसे आग।।36।।

सबसे पहले दशहरी, फिर लंगड़े की धाक,
पकता चौंसा बाद में, कहें विज्ञ बेबाक।।37।।

आम तोड़ने के लिए, है फल तोड़क यन्त्र,
बिना चोट डंठल सहित, टूटे इसका मन्त्र।।38।।

एक इंच डंठल सहित, उलट कर रखें आम,
चेंप रहित हों फल जभी, हो आगे का काम।।39।।

छोटे दागी फल सभी, पहले ही लें छाँट,
श्रेणीकरण करें सदा, सभी फलों को बाँट।।40।।

छिद्रयुक्त गत्ते सदा, पैकिंग हित उपयुक्त,
विक्रय दूर बजार हो, तब हों ऋण से मुक्त।।41।।

आम पकाने के लिए, कार्बाइड है बन्द,
घातक मानव स्वास्थ्य हित, सरकारी प्रतिबन्ध।।42।।

वृक्षों पर ही फल सदा, कर दें थैलाबन्द,
फल गुणवत्तायुक्त हों, रंग रूप आनन्द।।43।।

अखबारी कागज मिले, या हो बासी ताव,
एक किलो आकार के, थैले खुदी बनाव।।44।।

फल मक्खी दागादि से, थैला करे बचाव,
फल भी आकर्षक बनें, अच्छा मिलता भाव।।45।।

–सुशील कुमार शुक्ल
प्रधान वैज्ञानिक (बागवानी)

हिंदी के अंकों का स्वीकृत मानक रूप

1	एक	26	छब्बीस	51	इक्यावन	76	छिहत्तर
2	दो	27	सत्ताइस	52	बावन	77	सतहत्तर
3	तीन	28	अट्ठाइस	53	तिरपन	78	अठहत्तर
4	चार	29	उनतीस	54	चौवन	79	उनासी
5	पाँच	30	तीस	55	पचपन	80	अस्सी
6	छह	31	इक्तीस	56	छप्पन	81	इक्यासी
7	सात	32	बत्तीस	57	सत्तावन	82	बयासी
8	आठ	33	तैंतीस	58	अठावन	83	तिरासी
9	नौ	34	चौंतीस	59	उनसठ	84	चौरासी
10	दस	35	पैंतीस	60	साठ	85	पच्चासी
11	ग्यारह	36	छत्तीस	61	इकसठ	86	छियासी
12	बारह	37	सैंतीस	62	बासठ	87	सत्तासी
13	तेरह	38	अड़तीस	63	तिरसठ	88	अठासी
14	चौदह	39	उनतालीस	64	चौंसठ	89	नवासी
15	पंद्रह	40	चालीस	65	पैंसठ	90	नब्बे
16	सोलह	41	इक्तालीस	66	छियासठ	91	इक्यानवे
17	सत्रह	42	बयालीस	67	सड़सठ	92	बानबे
18	अठारह	43	तैंतालीस	68	अड़सठ	93	तिरानबे
19	उन्नीस	44	चौवालीस	69	उनहत्तर	94	चौरानबे
20	बीस	45	पैंतालीस	70	सत्तर	95	पचानबे
21	इक्कीस	46	छियालीस	71	इकहत्तर	96	छियानबे
22	बाईस	47	सैंतालीस	72	बहत्तर	97	सत्तानबे
23	तेईस	48	अड़तालीस	73	तिहत्तर	98	अठानबे
24	चौबीस	49	उनचास	74	चौहत्तर	99	निन्यानबे
25	पच्चीस	50	पचास	75	पचहत्तर	100	सौ

प्रशासनिक शब्दावली

1	Acknowledgement	पावती, अभिस्वीकृति
2	Ad hoc	तदर्थ
3	Adjust	समायोजन
4	Allotment	आबंटन
5	Authorised	प्राधिकृत
6	Audit	लेखा परीक्षा
7	Biodata	जीवन वृत्त
8	By hand	दस्ती
9	Break in service	सेवा में व्यवधान
10	Charge report	कार्यभार रिपोर्ट
11	Commuted leave	परिवर्तित छुट्‌टी
12	Compliance	अनुपालन, पालन
13	Concurrence	सहमति
14	Contract	ठेका, संविदा
15	Creterion	मानदंड, कसौटी
16	Deputation allowance	प्रतिनियुक्ति भत्ता
17	Disbursment	संवितरण, बाँटना
18	Ditto	यथोपरि, जैसे ऊपर
19	Earnest money	बयाना
20	Effective	प्रभावी, दकारगर वास्तिवक
21	Exgratia payment	अनुग्रही अदायगी
22	Ex-officio	पदेन
23	Expost facto	कार्योत्तर
24	Forwading letter	अग्रेशण पत्र
25	Gradation list	पदक्रम सूची
26	Gratuity	उपदान

27	Inadvertently	अनजाने, असावधानी से
28	Inspection	निरीक्षण करना
29	Instruction	अनुदेश, हिदायत
30	Justification	न्यायोचित, समर्थनीय
31	Minutes	कार्यवृत्त, टिप्पणी
32	Non recurring expenditure	अनुवर्ती व्यय
33	Post facto sanction	कार्योत्तर मंजूरी
34	Monitoring	अनुवीक्षण
35	Regulation	विनिमय
36	Superintendence	अधीक्षण
37	Sanction	संस्वीकृत
38	Schedule	अनुसूची
39	Supplementary	अनुपूरक
40	Subsidy	सहायिकि, इमदाद
41	Annexure	संलग्नक
42	Enclosure	अनुलग्नक
43	Appropriation	विनियोजन
44	Attestation	अनुप्रमाणन
45	Comments	टिप्पणी
46	Decorum	शिष्ठता, शालीनता, मर्यादा
47	Defiance	अवज्ञा
48	En masse	सामूहिक रूप से
49	En route	मार्ग में
50	Reminder	अनुस्मारक
51	Explanation	व्याख्या, स्पष्टीकरण

बागवानी से संबंधित शब्दावली

Anthracnose	ऐन्थ्रेकनोज
Die back	उल्टा सूखा
Wilt	उकठा, सूखा
Sooty mould	काली फफूंद
Bacterial canker	शाकाणु कैंकर
Harvest	तुड़ाई, कटाई
Mature	परिपक्व
Ripened	पका हुआ
Stock	डंठल, वृंत
Harvester	तोड़क यंत्र
Pulp	गूदा
Cream	अत्यंत हल्का पीला
Stone	गुठली
Hardening of stone	गुठली का कड़ा होना
Bruised	खरोंच लगा हुआ
Damaged	क्षतिग्रस्त
Sort out	छाँटना
Graded	श्रेणीकरण
Size	आकार
Weight	वजन, भार
Colour	रंग
Maturity	परिपक्वता
Wooden Box	लकड़ी का बक्सा
Packaging	पेटीबन्दी
Transportation	स्थानांतरण
Design	रूप-रेखा प्रस्तुत करना
Capacity	क्षमता
Ventilation	संवातन वायुसंचार
Life	जीवन
Juice	जूस, रस
Nectar	नेक्टर
Squash	शरबत
Biotic	जैव
Abiotic	अभिगमन
Accession	प्रतिरोधी किस्में
Resistant varieties	संक्रमण
Infection	उकठा, सूखा, म्लानि
Rootstock	मूलवृन्त
Disease Management	रोग प्रबंधन
Disease	रोग
Stem	तना

Stem rot	तना विगलन
Stem borer	तना भेदक
Breeding	प्रजनन
Slices	टुकड़ा, फाँकें
Raw	कच्चा
Variety	किस्म प्रभेद
Jelly	जेली
Seed	बीज
Genesis	उत्पत्ति
Genetic	आनुवंशिक, आनुवंशिकी
Product	उत्पाद
Caved Fruits	डिब्बा बंद फल
Procure	प्राप्त करना
Canker	कैंकर
Density	घनत्व
Soil	मृदा, मिट्टी
Twigs	टहनियाँ
Branches	शाखाएँ
Patioles	पर्णवृन्त
Lesions	बड़े धब्बे
Spots	धब्बा
Cultivar	किस्म
Field gene bank	प्रक्षेत्र जीन बैंक
Tamarind	इमली
Phalsa	फालसा
Loquat	लसोढ़ा
Rose apple	गुलाब जामुन
Mango leather	अमावट
Barhal	बड़हल
Carambola	कमरख
Amra	अमरा
Chironji	चिरौंजी
Mulberry	शहतूत
Custard apple	शरीफा
Wood apple	कैंथा
Breed	नस्ल
Arid soil	शुष्क मृदा
Arid lands	शुष्क क्षेत्र
Aquatic	जलीय
Arable crop	कृष्य भूमि
Arable farming	कृष्य कृषि

लैटिन, ग्रीक, फ्रैंच आदि अभिव्यक्तियाँ

Ab initio	अदितः/आरंभ/शुरू से
Ad Alium diem	किसी और दिन
Ad hoc	तदर्थ
Ad interim	अन्तःकालीन
Ad Valorem	यथामूल्य/मूल्यानुसार
Bonafides	वास्तविक/असली
Contra	के विरूद्ध
Cum	व
Data	आधार सामग्री/आँकड़े (सांख्यिकी)
De hors	बाहर असंबद्ध
De facto	वस्तुतः/वास्तविक
De jure	विधिवतः
De novo	नये सिरे से
Ditto	यथोपरि
Errata	शुद्धिपत्र
Ex-cadre	संवर्ग बाह्य
Ex-gratia (Payment)	अनुग्रहपूर्वक (अदायगी)
Ex-parte	एक पक्षीय
Ex-India	भारत के बाहर
Ex-factory	फैक्ट्री पर
Ex-officio	पदेन
Ex-post facto	कार्योत्तर
Ibid (Ibidem)	तत्रैव/वही
In timine	आरंभ में ही
In pari material	समविषय में
In posse	संभव
In presenti	समकालीन/तत्समय
In juria sine damno	बिना हानि के क्षति
In signia	लक्ष्य, अधिकार चिह्न
Inter alia	साथ-साथ
Intra vires	शक्ति के अधीन
In se	परस्पर/आपस में

In toto	संपूर्णतः/पूरी तरह से
Ipso facto	यथातथ्यतः/इसी बात से
Ipso jure	विधितः
Jus adrem	अपूर्ण अधिकार
Manifesto	घोषणा पत्र
Modus operandi	कार्य प्रणाली
Nexux	संबंध
Nota bene	विशेष ध्यान दीजिए
Onus	भार/दायित्व
Onus probandi	साबित करने का भार
Per annum	प्रतिवर्ष/वार्षिक
Per capita	प्रति व्यक्ति
Per diem/day	प्रति दिन
Per mensem	प्रतिमास/माहवार
Per se	स्वतः
Post script	पुनश्च
Prim facie	प्रत्यक्षतः/प्रथम दृष्टि में
Pro rata	अनुपाततः
Pro tanto	उस सीमा तक
Proximo	आगामी मास का
Quantum merit	जितना काम उताना दाम
Sine die	अनिश्चित काल के लिए
Sine qua non	अनिवार्य शर्त/अपरिहार्य शर्त
Status quo	यथापूर्व स्थिति
Sub judice	न्यायधीन
Suo moto	स्वतः/स्वयमेव/स्वप्रेरणा से
Tenure	अवधि/कार्यकाल
Ultra vires	शक्ति बाह्य
Veto	वीटो/निषेधाधिकार
Vis-a-Vis	के सामने/की तुलना में
Viva-voce	मौखिक

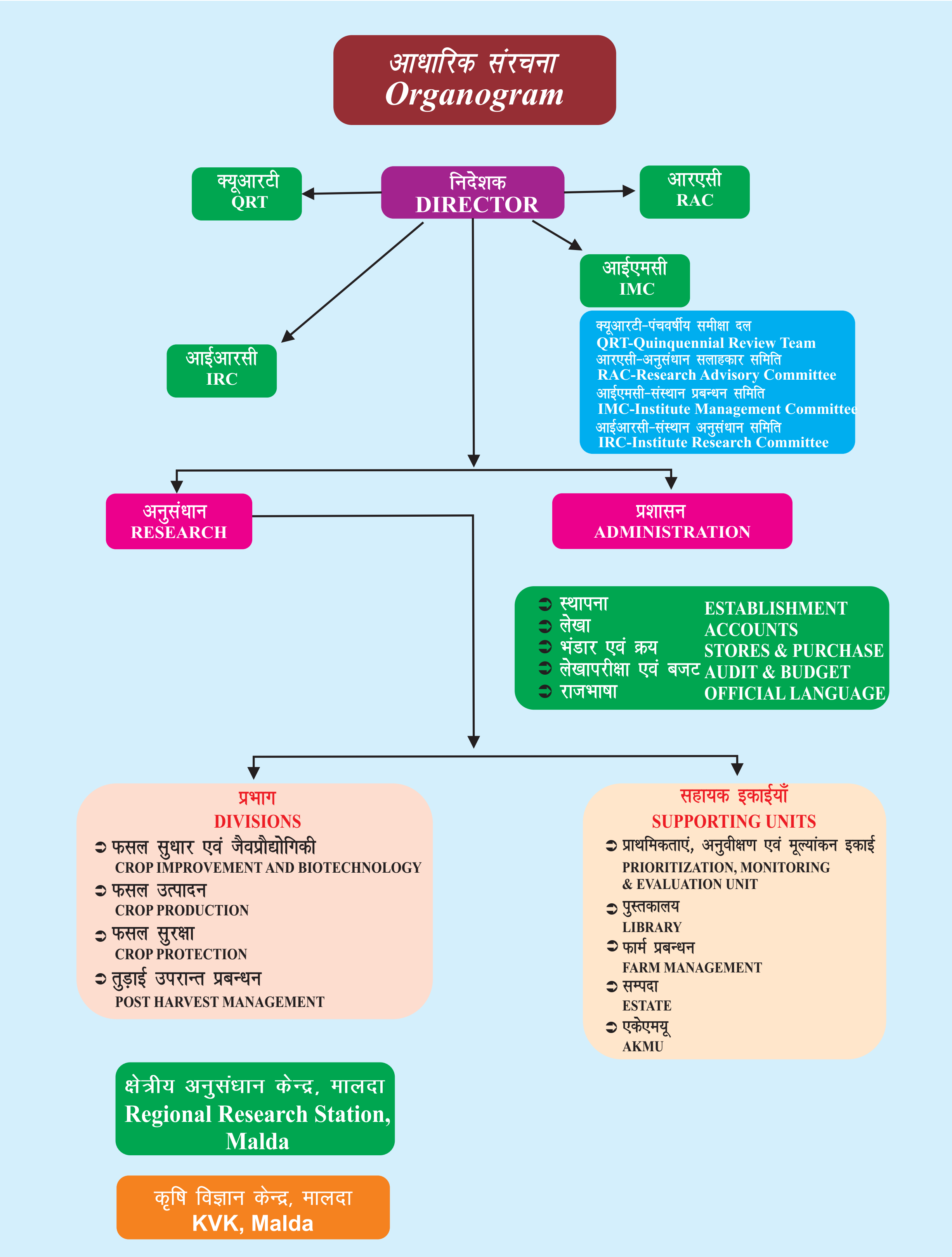
आधारिक संरचना
Organogram
निदेशक
DIRECTOR
क्यूआरटी
QRT
आरएसी
RAC
आईएमसी
IMC
आईआरसी
IRC
क्यूआरटी-पंचवर्षीय समीक्षा दल
QRT-Quinquennial Review Team
आरएसी-अनुसंधान सलाहकार समिति
RAC-Research Advisory Committee
आईएमसी-संस्थान प्रबन्धन समिति
IMC-Institute Management Committee
आईआरसी-संस्थान अनुसंधान समिति
IRC-Institute Research Committee
अनुसंधान
RESEARCH
प्रशासन
ADMINISTRATION
स्थापना ESTABLISHMENT
लेखा ACCOUNTS
भंडार एवं क्रय STORES & PURCHASE
लेखापरीक्षा एवं बजट AUDIT & BUDGET
राजभाषा OFFICIAL LANGUAGE
प्रभाग
DIVISIONS
फसल सुधार एवं जैवप्रौद्योगिकी
CROP IMPROVEMENT AND BIOTECHNOLOGY
फसल उत्पादन
CROP PRODUCTION
फसल सुरक्षा
CROP PROTECTION
तुड़ाई उपरान्त प्रबन्धन
POST HARVEST MANAGEMENT
सहायक इकाईयाँ
SUPPORTING UNITS
प्राथमिकताएं, अनुवीक्षण एवं मूल्यांकन इकाई
PRIORITIZATION, MONITORING & EVALUATION UNIT
पुस्तकालय
LIBRARY
फार्म प्रबन्धन
FARM MANAGEMENT
सम्पदा
ESTATE
एकेएमयू
AKMU
क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, मालदा
Regional Research Station, Malda
कृषि विज्ञान केन्द्र, मालदा
KVK, Malda

भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान
रहमानखेडा, पोस्ट-काकोरी, लखनऊ-226101

सतर्कता जागरूकता सप्ताह 2017

विषय-मेरा लक्ष्य : भ्रष्टाचार मुक्त भारत

सत्यनिष्ठा प्रतिज्ञा

मेरा विश्वास है कि हमारे देश की आर्थिक, राजनीतिक तथा सामाजिक प्रगति में भ्रष्टाचार एक बड़ी बाधा है। मेरा विश्वास है कि भ्रष्टाचार का उन्मूलन करने के लिए सभी संबंधित पक्षों जैसे सरकार, नागरिकों तथा निजी क्षेत्र को एक साथ मिलकर कार्य करने की आवश्यकता है।

मेरा विश्वास है कि प्रत्येक नागरिक को सतर्क होना चाहिए तथा उसे सदैव ईमानदारी तथा सत्यनिष्ठा के उच्चतम मानकों के प्रति वचनबद्ध होना चाहिए तथा भ्रष्टाचार के विरूद्ध संघर्ष में साथ देना चाहिए।

अत:, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि :

- जीवन के सभी क्षेत्रों में ईमानदारी तथा कानून के नियमों का पालन करूँगा;
- ना तो रिश्वत लूँगा और ना ही रिश्वत दूँगा;
- सभी कार्य ईमानदारी तथा पारदर्शी रीति से करूँगा;
- जनहित में कार्य करूँगा;
- अपने निजी आचरण में ईमानदारी दिखाकर उदाहरण प्रस्तुत करूँगा;
- भ्रष्टाचार की किसी भी घटना की रिपोर्ट उचित एजेन्सी को दूँगा।

स्वच्छ भारत अभियान-एक झलक

फार्मर्स फर्स्ट परियोजना का उद्घाटन

उत्तर प्रदेश के माननीय राज्यपाल श्री राम नाईक को पुष्प गुच्छ भेंट करते डॉ. शैलेन्द्र राजन, निदेशक

उत्तर प्रदेश के माननीय राज्यपाल श्री राम नाईक द्वारा सी.आई.एस.एच. समाचार का विमोचन